प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर
हिन्दी एवं मलयाळं व्याकरणों का विकास

DEVELOPMENT OF GRAMMAR IN HINDI AND MALAYALAM BASED ON CLASSICAL TEXTS

Thesis Submitted to

THE UNIVERSITY OF COCHIN

for the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

K. NARAYANAN NAMBISSAN

M. A. (Hindi), M. A. (Sanskrit), M. A. (Malayalam)

B.Ed, Vidwan, R. B. Paramgath and Sahityaratna

Supervisor

DR. N. RAMAN NAIR

M. A. (Hindi), M. A. (English)

M. A. (Malayalam), Ph. D.

Prof. and Head of the Department of Hindi

Dean. Faculty of Humanities

DEPARTMENT OF HINDI

UNIVERSITY OF COCHIN

COCHIN-682 022

1984

CERTIFICATE

This is to certify that this is a bonafied record of work carried out by Sri. 'K. Narayanan Nambisan' under my supervision for Ph.D, and no part of this has hither to been submitted for a degree in any University.

Dr. N. RAMAN NAIR.
(Supervising Teacher)

Department of Hindi,
University of Cochin,
Cochin- 68 20 22
March, 1. 1984.

Cochin University Library
Date
COCHIN - 22

प्राक्कथन

इस अध्ययन का विषय है '' प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर हिन्दी एवं मलयाळं व्याकरणों का विकास '' । पहले तो विषय लिया गया था कि संस्कृत - स्रोत के आधार पर हिन्दी एवं मलयाळं भाषाओं के वर्णों तथा शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन । डाक्टरल - समिति में देशी तथा विदेशी भाषाओं के प्रमुख पंडित एन. वी. कृष्णवारियर ने विषय - परिवर्तन का जो मत प्रकट किया उसे समिति ने स्वीकार किया ।

मैं ने उन्नीस सौ साठवें दशक के आद्य में केरळ विश्व विद्यालय से पी.एच. डी की रजिस्ट्री की प्रार्थना की थी । कालेज में अध्यापन न करने के कारण प्रार्थना अस्वीकृत हुई । कोचीन विश्वविद्यालय की स्थापना हुई, डा. श्री. रामन नायर हिन्दी विभाग में 'रीडर' नियुक्त किए गए । उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार की और पर्यवेक्षण करने का वादा किया । स्व. जोसफ मुण्डश्शेरी जब विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे तब उनकी कृपा से 1974 दिसंबर में मुझे रजिस्ट्री मिली । दौर्भाग्य से उन्नीस सौ सत्तरवें दशक का अपरार्द्ध शारीरिक एवं मानसिक पीडाओं से भरी रहा, वर्षों तक अन्धा रहा । जीवन दुःखमय हो गया । 1983 मार्च में दाहिनी आँख की शस्त्रक्रिया हुई, दृष्टि मिली, अपना कार्य जारी रखा, पूरा हुआ । प्रोफसर डा. रामन नायर की सहानुभूति एवं वात्सल्य तथा विश्वविद्यालय अधिकारियों के सहयोग ही इस इच्छा - पूर्ति की पृष्ठभूमि है ।

व्याकरण का क्षेत्र सामान्यतः शोध - विद्यार्थी दुर्गम मानते हैं । इस विषय के बा में एक महापंडित से विचार - विमर्श होने पर उन्होंने पूछा कि भिन्न परिवार की दो भाषाओं पर खोज करके आप क्या लाभ उठा सकते ? मैं ने विनम्रता से उत्तर दिया कि मेरा संकल्प है कि भाषाओं के भिन्न परिवार एक ही मूल - परिवार से आए हो । ऊपर से देखने पर भिन्नता देखी जाती, पर विश्लेषण करने पर कई समानताएँ देख सकते । भिन्नपरिवार की दो भाषाओं का विश्लेषण करते हुए उनकी समानताओं पर प्रकाश डाल सकूँ तो अच्छा है न ? उन्होंने आगे बढ़ने का प्रोत्साहन दिया ।

हिन्दी एवं मलयालम के आदिम व्याकरण - ग्रन्थ यूरोपियों की रचनाएँ है । मैं ने अनुभव किया कि उन रचनाओं की असली प्रतियाँ मिलना कठिन है । पर दो प्रधान ग्रन्थों ने इस कार्य में मेरी बड़ी सहायता की (1) आनन्द चौधरी का 'हिन्दी व्याकरण का इतिहास' जो बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना से 1972 में प्रकाशित और (2) डा. के. एन. एलुत्तच्छन का मलयालम व्याकरणिक सिद्धान्तों का इतिहास जो केरल विश्वविद्यालय की द्राविड - भाषा - समिति से 1975 में प्रकाशित । मैं भिन्न परिवार की इन दोनों भाषाओं की कई समानताएँ देख सका । दोनों भाषाओं ने अपने - अपने विकास के लिए कई भाषा - वैज्ञानिक - विभूतियों का आदान - प्रदान किया है । शब्द - निर्माण, समास - रचना, वाक्य - रचना आदि कार्यों में कई समानताएँ दिखायी गयी है । दोनों भाषाओं में प्रचलित कुछ मुहावरे, लोकोक्तियाँ एवं चातुर्य उदाहरण मात्र परिशिष्ट अन्त में दी गयी है । मुहावरे और लोकोक्तियाँ भाषाओं की पौराणिक - संपत्ति है । जब दो भाषाओं में इनकी समानता देखी जाय तब उन दोनों का प्राचीन संबन्ध स्पष्ट हो जाता है । व्याकरण के विकास के साथ दोनों भाषाओं का संबन्ध दिखाना भी इस अध्ययन का लक्ष्य है । दोनों भाषाओं की लिपि भी एक ही स्रोत की होती है । हिन्दी को संस्कृत से जो पैतृक - संपत्ति प्राप्त है मलयालम ने भी पुरस्कार के रूप में स्वीकृत की है । केरलपाणिनि ने अपने व्याकरण - ग्रन्थ 'केरलपाणिनीयं' में और भोलानाथ तिवारी ने अपने 'भाषा - विज्ञान' में यह दिखाया है कि आर्य भाषा - संस्कृत ने द्राविड - मूल भाषा से 'ट' वर्ग को स्वीकार किया है । तिवारी जी दिखाते है कि संस्कृत ने द्राविड - मूल - भाषा से कई शब्द स्वीकार किए है । ए - एस - रविवर्मा ने अपनी रचना 'आर्य द्राविड भाषाओं का परस्पर सम्बन्ध' में द्राविड और संस्कृत भाषाओं में प्रयुक्त समानार्थक सैकड़ों धातुओं की सूची दी है । ये सब आर्य - द्राविड भाषाओं के परस्पर - संबन्ध दिखानेवाले प्रमाण ही होते है ।

विषय सूची की रचना इस प्रकार है :- पहला अध्याय : भाषा की उत्पत्ति एवं व्याकरण की पृष्ठभूमि , दूसरा अध्याय : हिन्दी भाषा और उसके व्याकरण - ग्रन्थ , तीसरा अध्याय : मलयालम की उत्पत्ति एवं उसके व्याकरण - ग्रन्थ , चौथा अध्याय : ध्वनि, शब्द एवं

सन्धि - हिन्दी तथा मलयाळम में , पाँचवाँ अध्याय : हिन्दी और मलयाळम के संज्ञाशब्द, विशेषण, उपसर्ग, प्रत्यय, अव्यय और निपात , छठा अध्याय : वाक्यविचार, वाक्यरचना, क्रिया - नाम, वाक्य रचना एवं लिपि , सातवाँ अध्याय : उपसंहार जिसमें (1) आर्य - संस्कृति के पूर्व भारत में द्राविड - संस्कृति का अस्तित्व (2) भाषा के विकास में आर्य - द्राविड भाषाओं का आदान - प्रदान (3) व्याकरणिक ग्रन्थों के आधार पर दोनों भाषाओं के व्याकरणिक विकास (4) दोनों भाषाओं की लिपियाँ (5) दोनों भाषाओं की समानताएँ एवं असमानताएँ (6) दोनों भाषाओं का संबन्ध दिखानेवाले मुहावरे, लोकोक्तियाँ एवं धातुएँ । भिन्न - भाषाओं के नाम पर जो झगडा होता रहता है उसे आधार - रहित समझाने में यह कुछ न कुछ सहायक हो तो मैं कृतार्थ हूँ ।

कोचिन विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के प्रोफेसर एवं डीन, डा. भी. एन रामन - नायर जी में कितना आभारी हूँ वह शब्दों से प्रकट नहीं किया जा सकता । उनकी सहानुभूति एवं वात्सल्य ही इस शोध - प्रबन्ध की आधार - शिला है । कोचिन - विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग भूतपूर्व अध्यक्ष एवं प्रोफेसर डा. भी - एन. ई. विश्वनाथ अय्यर को मेरा हार्दिक - धन्यवाद जिन्होंने इस कार्य के लिए मुझे प्रेरणा दिया । भी.एन.वी. कृष्णवारियर तथा कालिकट विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के डा. भी. गोपिनाथन नायर को मेरा धन्यवाद जिन्होंने इस कार्य में आवश्यक उपदेश दिये हैं । कोचिन विश्वविद्यालय के अधिकारियों को मेरा धन्यवाद जिन्होंने इस कार्य में आवश्यक सहायता दी है । हिन्दी - विभाग के सभी अध्यापकों तथा अन्य अधिकारियों को भी मेरा हार्दिक धन्यवाद । इस कार्य में प्रेरक एवं सहायक सर्वश्री - टी.वी.एस नेदुमंगाड, के. श्रीकण्ठन और के. विमलाचार्य को मेरा हार्दिक धन्यवाद ।

कोचिन विश्व विद्यालय,
हिन्दी विभाग ,
कोचिन - 682022.

के. नारायण नंपीशन

मलयाळम शब्दों का उच्चारण

मलयाळम के सभी शब्द स्वरान्त या चिल्लन्त होते हैं जो स्वरान्त नहीं हैं ऐसे शब्दों के अन्त्यवर्ण के नीचे "हल्" चिह्न लगाया जाता है । संवृत-उकार भी स्वर है जिसे दिखाने के लिए चन्द्रबिंद ऊपर दी जाती है । हिन्दी में शब्दान्त तथा बीच के वर्णों में अकार का उच्चारण नहीं होता । पर मलयाळम में ऐसी बात नहीं है, जैसे लिखा जाता है वैसे ही पढ़ा जाता है । चिल्लों का उच्चारण "हल्" जैसे होता । मलयाळम में ए और ओ के ह्रस्व एवं दीर्घ दो रूप होते हैं । ह्रस्व को दिखाने के लिए ऊपर चन्द्रबिंदी का चिह्न दिया गया है, जैसे : ऍ-ह्रस्व ए-दीर्घ ऑ-ह्रस्व ओ-दीर्घ

मलयाळम में प्रचलित विशेषवर्णों का संकेत एवं ध्वनि नीचे दिखायी गयी है

वर्ण	ध्वनि	मलयाळम लिपि
ऩ	Name	ന
ऱऱ	Battery	ററ
न्ट	Cement	ന്റ
ण़	Name	ണ
ळ	Kerala	ള
ऴ	Zha	ഴ
अर्धस्वर चिह्न		
य़	Way	[illegible]
ऱ	Nap	[illegible]
व (व़)	Will	[illegible]
ण्	Orcya	[illegible]
ऴ	Well	[illegible]

विषय - सूची

पहला अध्याय: 1-18

प्रस्तावना- भाषा और उसका विकास-भाषा की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न मत- भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण-वेदभाषा-संस्कृत-पाली, प्राकृत और अपभ्रंश-द्राविड़ मूलभाषा संस्कृत से प्राचीन-संस्कृत-व्याकरण-पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि-अष्टाध्यायी की व्याख्याएँ-प्राकृत एवं अपभ्रंश और उनके व्याकरण-वररुचि का प्राकृतप्रकाश-चंड का प्राकृत लक्षण-हेमचन्द्र का हेमचन्द्रानुशासन-त्रिविक्रमदेव का प्राकृतशब्दानुशासन आदि-रिचर्ड पिशल का प्राकृत व्याकरणों का तुलनात्मक व्याकरण-बौद्धधर्म एवं पाली भाषा-अपभ्रंश की विशेषताएँ- अपभ्रंश के सर्वनाम- अपभ्रंश की संख्याएँ-अपभ्रंश की क्रियाएँ ।

दूसरा अध्याय:- 18 - 95

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और विकास- हिन्दी व्याकरण का सामान्य विवरण- हिन्दी में योरोपियों के प्रारंभिक व्याकरण ग्रन्थ - 1. जॉन जोशुआ केटलर का हिन्दुस्तानी भाषा §2§ बेंजामिनशुल्ज का हिन्दोस्तानी व्याकरण §3§ कासिनो बलीगत्ती का आलफाबेतम ब्रहमानिकुं- §4§ हीरासेन लेबडफ का ग्रामर आफ द पिउर एण्ड ईस्टइंडियन डायलेक्ट §5§ जॉन शेक्सपियर का हिन्दुस्तानी भाषा का व्याकरण §6§ विलियम प्रेस का हिन्दुस्तानी व्याकरण §7§ विलियम ईट्स का हिन्दुस्तानी भाषा प्रवेश §8§ फादर आदम का हिन्दी भाषा का व्याकरण §9§ जेस-आर-बालनटइन के §क§ हिन्दुस्तानी भाषा का व्याकरण §ख§ एलमेंट्स आफ द हिन्दी और ब्रजभाषा व्याकरण §ग§ हिन्दुस्तानी भाषा का व्याकरण विथ नोट्स आफ द ब्रज और सतेण्ड डायलेक्ट्स §10§ स्टाफोर्ड आरनालड का हिन्दुस्तानी टंग का न्यू सेल्फ इनस्ट्रक्टीव ग्रामर §11§ डामियन फोरबस का हिन्दी मान्वल §12§ एवरन्ट• डब्ल्यु•एतरिंगटन का स्टुडन्स ग्रामर आफ हिन्दी लांग्वेज §13§ एछ•केल का हिन्दी ग्रामर §14§ एडविन ग्रीव्स का हिन्दी ग्रामर ।

भारतीय वैयाकरण और उनके ग्रन्थ: §1§ पंडित• कामताप्रसाद गुरु का हिन्दी व्याकरण §2§ पंडित• किशोरीदास वाजपेयी का हिन्दी शब्दानुशासन §3§ रामदेव का व्याकरण प्रदीप §4§ वासुदेव नन्दन प्रसाद का आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना §5§ एस•आर•शास्त्री एवं बालचन्द्र आप्टे का हिन्दी व्याकरण ।

तीसरा अध्याय: 95 -

मलयाळं भाषा और उसका विकास- मलयाळं व्याकरण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मलयाळं व्याकरण का सामान्य विवरण-मलयाळं के योरोपीय वैयाकरण- §1§ रोबर्ट ड्रमं

भाषा तथा उसका विकास

भाषा वह माध्यम है जिससे मनुष्य अपने विचार दूसरों को समझा सकते हैं और दूसरों के विचार स्वयं समझ पाते हैं । पशु-पक्षी भी कुछ शब्द बनाकर अपने विचार प्रकट करते हैं, पर उनके शब्दों को हम भाषा नहीं कह सकते । गूंगे भी कुछ शब्द बनाते हैं और अभिनय करके अपने विचारों को स्पष्ट करने की चेष्टा करते हैं । वह भी भाषा नहीं होती। इससे यह स्पष्ट है कि विचारों को साफ़ समझने तथा समझाने का माध्यम ही भाषा है ।

भाषा का आधार मनुष्य है । मनुष्य की उत्पत्ति की कहानी जटिल होती है । बाइबिल में आदम को आदि मनुष्य दिखाया गया है । हिन्दू-पुराणों ने मनु को यह स्थान देकर उनकी संतानों को मनुष्य, मानव आदि शब्दों से व्यवहृत किया है । आदिम मनुष्य जंगलों में रहते थे । वे प्रकृति की गोदी में उससे मिल-जुलकर पशु-पक्षियों के जैसे स्वतन्त्र होकर जीवन बिताते थे । क्रमशः उन्होंने अपनी बुद्धि के बल पर कुछ प्रतिष्ठित सार्थक शब्दों को प्रयोग करके विचार-विनिमय कायम किया । सामूहिक जीवन में इन शब्दों का विकास व तथा नए शब्दों का विन्यास होता रहा । मूल भाषा में सीमित शब्द ही प्रयुक्त हुए होंगे । उनमें अधिक से अधिक शब्द अनुकरणात्मक, अनुरणनात्मक तथा भावोद्‌भिक होते थे । भाषा-शास्त्रियों के अनुसार भाषा की उत्पत्ति के कई सिद्धान्त होते हैं : 1) दैवी उत्पत्ति सिद्धान्त 2) अनुकरण सिद्धान्त 3) अनुरणन सिद्धांत 4) मनोभावाभिव्यक्ति सिद्धांत 5) इंगित सिद्धांत 6) संगीत सिद्धांत और 7) संपूर्क सिद्धांत । इन सिद्धान्तों से जो शब्दनिष्पत्ति हुई उसे मूलभाषा कहते हैं ।

मनुष्य अधिक काल तक एक ही स्थान पर रहे नहीं होंगे । विभिन्न स्थानों पर विभिन्न दलों में रहने के कारण मूलभाषा के शब्दों के साथ नए नए शब्द जुड़ गए और ये शब्द परस्पर अपरिचित होकर भिन्न भाषाओं का प्रादुर्भाव हुआ । जलवायु के कारण उच्चारण के भेदों से यह भिन्नता बढ़ गई होगी। हज़ारों सालों के बाद इन भाषाओं का

आर्यों के पहले किसी एक जाति के सभ्य लोग उत्तर भारत में रहते थे । सभ्यता का आधार भाषा है तो यह मानना होगा कि संस्कृत के पहले उत्तर भारत में एक विकसित भाषा प्रचलित थी । इन ठीकरों से जो लिपि मिली है वे द्राविड भाषाओं की लिपियों से मिलती है ।(1) ऐसी अवस्था में हम अनुमान कर सकते हैं कि आर्यों के पहले यहाँ द्राविड लोग रहते थे । भाषा परिवार में द्राविड़-कुल को भी प्रमुख स्थान दिया गया है ।

भारतीय पुराणों में महाप्रलय की कहानी प्रचलित है । यह केवल काल्पनिक नहीं होगी । सारा उत्तर भारत प्रलय जल में डूब गया होगा । बहुत से लोग मरे होंगे । प्रलय जल से रक्षा पाने केलिए लोग उत्तर और दक्षिण के पहाड़ी प्रदेशों में आए होंगे । इस प्रलय के कारण एक पुराना संस्कार भी नष्ट हुआ होगा । ऊपर दिखाये हुए ठीकरों को उस संस्कार का साक्षी मानने में कोई बाधा नहीं । आत्मरक्षा के लिए पहाड़ी प्रदेशों में आए हुए लोग इधर-उधर रहने लगे । उनमें से कुछ दक्षिण की ओर जाकर प्राचीन सभ्यता का पुनः जागरण प्राप्त करके चेर, चोल, पाण्ड्य देशों के अधिनायक बने होंगे । यहाँ द्राविड संस्कार का पुनरुद्धार हुआ होगा । उत्तर भारत में रहे हुए लोगों की दशा अनिर्वाच्य न हुई । प्रलय के पश्चात् उत्तर भारत में प्रविष्ट हुए आर्यों से इन लोगों ने हार खाई होगी और उन्हें जंगलों में आश्रय लेना पड़ा होगा । देवासुर युद्ध के रूप में इसे प्राचीन कृतियों में दिखाया गया है । उत्तर के गिरिजन शायद इस प्राचीन परम्परा के लोग होंगे ।

अब यह प्रश्न उठता है कि द्राविड कुल को आर्यावर्ती कुल से प्राचीन मान सकते हैं ? भारत में आर्यों के आने के पश्चात् ही संस्कृत की उत्पत्ति हुई ऐसा मानना ठीक नहीं । उनके मूल स्थान में किसी भाषा का प्रयोग ज़रूर हुआ होगा । उसी भाषा का विकसित रूप ही संस्कृत होगा । उस भाषा में वेदों की रचना हुई । जब लोग आपस में मिलते हैं, मित्रभाव से हो या शत्रुभाव से, तब भाषा का आदान-प्रदान होना संभव है । इस नीति के अनुसार प्राचीन द्राविड़-कुल और अर्वाचीन आर्यावर्ती-कुल में भाषा विनिमय

- -

(1) इसके संबन्ध में मतभेद है ।

हुआ होगा । यही नहीं, जिस मूलस्थान से द्राविड़ लोग आए उसी स्थान से सहस्रों वर्षों के पश्चात् आर्य लोग भी आए होंगे । एक ही परिवार से अलग होकर भिन्न परिस्थितियों में रहे हुए लोग कालांतर में अपना पूर्व संबन्ध विस्मृत कर गए होंगे । हजारों साल पुराने बरगद के एक पेड़ का सम्बन्ध तना जानना आसान नहीं । जीवात्मा परमात्मा का अंग है - यह वेदान्त - तत्व भी भूलना नहीं चाहिए । मानवजाति को एक ही मूलस्थान का और एक ही मूलभाषा को आदिम रूप समझने में सच्ची भलाई मालूम होती है ।

बोलचाल की भाषा साहित्यिक हो जाने पर उसकी दृढ़ता और सुरक्षा के लिए व्याकरण का आविर्भाव होता है । पर भाषा स्वतन्त्र रूप से आगे बढ़ती रहती है । व्याकरण से संस्कृत को दृढ़ बनाने पर जनसाधारण की भाषा स्वतन्त्रता से आगे बढ़कर प्राकृत अपभ्रंश आदि रूपों से आधुनिक उत्तर भारत की कई भाषाओं में परिवर्तित हुई । ऐसे ही दक्षिण की मूल भाषा द्राविड़, तमिल, कन्नड़, तेलुगु और मलयालम में परिणत हुई ।

संस्कृत - व्याकरणशास्त्र
===============

संस्कृत - व्याकरणशास्त्र की परम्परा बहुत पुरानी है । वेदों को साहित्य का पहला रूप माना जाता है । जो तपोनिधि - ब्रह्मचारि ऋषि वेद के दिव्य मन्त्रों के द्रष्टा थे, वे ही व्याकरण-शास्त्र के प्रवक्ता थे । व्याकरण-शास्त्र का उद्भव वैदिक युग के प्रारंभ में ही हो चुका था और आगे चलकर उसी के आधार पर पदपाठ, शिक्षा, प्रातिशाख्य निरुक्त एवं अन्य व्याकरणों की रचना हुई । वेद की भाषा वह मूलभाषा है जिससे आदिलौकिक भाषाओं का जन्म हुआ ।

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा ।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥

महाभाष्य का उपर्युक्त कथन यह दिखाता है कि संसार में जितना ज्ञान प्रवृत्त हुआ, उसका आदि मूल वेद है । कई प्राचीन आचार्यों ने अनेक वैदिक मन्त्रों की व्याकरण-शास्त्र परक व्याख्या की है । ऋक्तन्त्रकार के अनुसार सर्वप्रथम ब्रह्मा ने बृहस्पति को, बृहस्पति ने इन्द्र को, इन्द्र ने भारद्वाज को और भारद्वाज ने अन्य ऋषियों को शब्द-शास्त्र का ज्ञान प्रदान किया । भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार देशवासियों के [illegible]

की और इन्द्र ने उसे व्याकृत किया । महाभाष्य के अनुसार बृहस्पति ने इन्द्र को शब्द-शास्त्र की शिक्षा दी थी । रामायण में भी व्याकरण के पठन-पाठन की सूचना मिलती है । शब्द-शास्त्र केलिए व्याकरण शब्द का प्रयोग रामायण के किष्किन्धा काण्ड में मिलता है । यास्क, पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि आदि व्याकरण-शास्त्र का अध्ययन और अध्यापन करते थे । इस तरह हम देख सकते है कि भारतीय व्याकरण परम्परा का इतिहास बहुत प्राचीन है ।

प्राचीन काल में वेदों के सम्यक अध्ययन केलिए मन्त्रों के उच्चारण की शुद्धता अनिवार्य थी । मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण को सुरक्षित रखने केलिए मन्त्र-पाठ, पद-पाठ, क्रम-पाठ, जटा-पाठ तथा घन-पाठ बनाए गए । पद-पाठ के द्वारा पहले-पहल मन्त्रों को पदों में विभाजित करना संभव हो सका ।[1] व्याकरण निर्माण की प्रारंभिक प्रक्रिया पद-पाठ में हुई है । इसमें सन्धि-विच्छेद, समास-विग्रह तथा धातु उपसर्ग के नियमों का उपयोग हुआ है । पद-पाठ के बाद शिक्षा का स्थान आता है । शिक्षा का सम्बन्ध ध्वनियों के अध्ययन से है । ध्वनियों का वर्गीकरण, मात्रा, स्वर, बलाघात आदि के नियमों का निर्धारण शिक्षा के प्रमुख कार्य है । प्रातिशाख्यों में मन्त्रों की ध्वनि और पद के विवेचन तथा पदों के विश्लेषण एवं वर्गीकरण किए गए है । वैदिक शब्दों के अर्थ-तत्व एवं रचना तत्व का विश्लेषण कर वैदिक मंत्रों के शुद्धार्थ को सुरक्षित रखना निरुक्त का लक्ष्य है ।

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौचापरौ वर्णविकारनाशौ ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पंचविधं निरुक्तम् ।।

यास्क ने अपने निरुक्त में वैदिक संस्कृत तथा तत्कालीन लौकिक संस्कृत का भेद दिखाया है । इसलिए यह सिद्ध है कि वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत के संक्रान्ति काल में वैदिक संस्कृत की रक्षा केलिए व्याकरण शास्त्र का निर्माण हुआ ।

पाणिनि से पूर्व का कोई व्याकरण उपलब्ध नहीं है । इसका अर्थ यह नहीं कि पाणिनि के पहले कोई वैयाकरण नहीं हुआ था । अष्टाध्यायी में उन्होंने स्वयं पूर्ववर्ती आचार्यों के मत उद्धृत किए है । ब्रह्मा, शिव, बृहस्पति, इन्द्र, वायु, भारद्वाज, पौष्करसादि चारायण काशकृत्स्न, शन्तनु, शौनकि, गौतम आदि का नाम प्रातिशाख्यों में देख सकते है । अष्टाध्यायी में आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, सेनक,

- -

(1) डा. बाबू राम सक्सेना : सामान्य भाषा विज्ञान पृष्ठ 139 -

स्फोटायन नाम के दस वैयाकरणों के नाम उद्धृत है ।

आचार्य पाणिनि सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण के रूप में प्रसिद्ध है । पणिन का अपत्य होने के कारण इनका नाम पाणिनि हो गया । कात्यायन एवं पतंजलि ने इसी नाम का प्रयोग किया है । पाणिनि का जन्म गान्धार में हुआ । उनका काल ई.पू.पाँच सौ के आसपास माना गया है । अष्टाध्यायी पाणिनि की अमर रचना है । इसमें आठ अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय चार-चार पादों में विभक्त है । कुल सूत्रों की संख्या 3995 है, जिसमें 14 माहेश्वर सूत्र भी सम्मिलित हैं ।

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारम् ।
उद्धर्तुकामः सनकादि सिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ।।

' अ, इ, उ, ण् ' से लेकर चौदह शिवसूत्र प्रत्याहार नाम से प्रसिद्ध हैं । इन चौदह सूत्रों में संस्कृत का वर्णविचार किया गया है । पाणिनि की अष्टाध्यायी माहेश्वर सम्प्रदाय का विकसित रूप है । ' वृद्धिरादैच् ' सूत्र से अष्टाध्यायी शुरू होती है । इसमें वैदिक और लौकिक संस्कृत दोनों की व्याकृति एक साथ की गई है ।(1) यास्क ने नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात के रूपों में पदों के चार वर्ग माने हैं । किन्तु पाणिनि ने उन्हें सुबन्त और तिङन्त दो वर्गों में ही समाहित किया । सुबन्त में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, संख्यावाचक, अव्यय होते और तिङन्त में क्रिया । कारक एवं समास-प्रकरण के द्वारा उन्होंने वाक्य एवं अर्थविज्ञान को स्पष्ट किया । स्वराघात, बलाघात नियमों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने भाषा में उनके महत्त्व को दर्शाया । इस प्रकार ध्वनि, पद, वाक्य और अर्थ सभी अष्टाध्यायी में पूर्ण रूप से विवेचित हुए हैं । वार्तिककार, कात्यायन एवं महाभाष्यकार पतंजलि ने अपने - अपने ग्रन्थ के अन्त में पाणिनि के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके लिए ' भगवान ' पद का प्रयोग किया है । कात्यायन का अन्तिम वार्तिक है : 'भगवतः पाणिनेः सिद्धम्' और महाभाष्य का अंतिम वाक्य है : '' भगवतः पाणिनेराचार्यस्य सिद्धम् ।''

कात्यायन अष्टाध्यायी के लोकविश्रुत वार्तिककार हैं । उनका समय ई.पू.350 के आसपास है । पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिक रचकर उन्होंने सूत्रों की पृष्ठ भूमि का समुचित

---

1. ' चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्च ' निरुक्त प्रथमाध्याय

परिचय दिया एवं उस संबन्ध में होनेवाले अनेक विचार-विमर्शों की समीक्षा की। उन्होंने सूत्रों पर नए विचारों की उद्भावना की, कालांतर में जहाँ नए प्रयोग उत्पन्न हो गए थे वहाँ पाणिनि के सूत्रों के साथ उन्हें मिलाकर व्याकरण - संबन्धी सिद्धांतों के मतान्तरों पर शास्त्रार्थ चलाया। उनके वार्तिकों की संख्या लगभग 4263 है। कात्यायन के वार्तिक पाणिनीय-शास्त्र के पूरक हैं।

अष्टाध्यायी के सूत्रों पर पहले वार्तिक फिर भाष्य लिखे गए। पतंजलि-कृत महाभाष्य विस्तृत, श्रेष्ठ एवं प्रामाणिक है। पतंजलि का काल ई.पू. दूसरी सदी माना जाता है। अष्टाध्यायी की तरह महाभाष्य में भी आठ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद, जो आह्निकों में विभक्त हैं। इसमें अष्टाध्यायी के सूत्रों पर लिखे गए वार्तिकों का परीक्षण भी किया गया है। पाणिनि के समस्त सूत्रों के अर्थ, औचित्य, व्याप्ति और वैज्ञानिकता का दिग्दर्शन हुआ है। विद्वानों ने महाभाष्य को पाणिनि-शास्त्र के इतिहास की सबसे बड़ी घटना कही है। पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि संस्कृत - व्याकरण के 'मुनित्रय' नाम से विख्यात हैं।

संस्कृत में व्याकरण - ग्रन्थों की टीकाओं की व्यापक परम्परा मिलती है। टीकाओं पर टीकाएँ लिखी गई हैं। सबसे पहले पाणिनि ने ही अपने सूत्रों की वृत्तियाँ लिखी हैं। आगे चलकर श्वोभूति, व्याडि, कुणि, माथुर, वररुचि आदि ने टीकाएँ लिखीं। वामन तथा जयादित्य की लिखी हुई काशिकावृत्ति, धर्मकीर्ति का रूपावतार, रामचन्द्राचार्य की प्रक्रिया-कौमुदी, भोज का सरस्वतीकण्ठाभरण, भट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्त-कौमुदी तथा प्रौढमनोरमा टीका, वासुदेव वाजपेयी की बाल मनोरमा, नारायण भट्टतिरि का प्रक्रियासर्वस्व, वरदराज की लघुकौमुदी तथा मध्यकौमुदी आदि बहुत विख्यात हैं। भर्तृहरि के वाक्यपदीय और महाभाष्य की टीका भी इस विषय के श्रेष्ठ ग्रन्थ हैं।

पाणिनीय - सम्प्रदाय के अलावा और कई सम्प्रदाय प्रचलित हुए। इनमें कुछ ये कातन्त्र - संप्रदाय, चान्द्र - संप्रदाय, जैनेन्द्र - संप्रदाय, शाकटायन - संप्रदाय आदि। इस तरह देखने पर संस्कृत के व्याकरण तथा उससे संबन्धित ग्रन्थों की संख्या विपुल होती है। अप्रकाशित ग्रन्थों की संख्या भी कम नहीं। विदेशियों ने भी इस क्षेत्र में काम किए हैं। मायव मुल्लर का वैदिकी-व्याकरण, डा. कील हार्न और कोलब्रुक की वार्तिक टीकाएँ इस दिशा में आती हैं। श्री रामकृष्ण भण्डारकर की देन भी अविस्मरणीय है।

बनारस, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के विश्वविद्यालयों ने संस्कृत-व्याकरण के क्षेत्र में कार्य किए हैं । स्वतन्त्रता - संग्राम के काल में भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार के रूप में संस्कृत भाषा तथा उसके विभिन्न अंगों पर भारतीयों का ध्यान आकृष्ट हुआ । स्वामि-दयानन्द सरस्वति, मालवीय आदि ने इस कार्य का नेतृत्व किया । पूना की अनेक महापाठशा तथा भारत के विभिन्न प्रदेशों में स्थापित संस्कृत महा-पाठशालाओं ने अन्य विषयों के साथ व्याकरण के पठन-पाठन में योगदान दिया । स्वतन्त्रता के बाद देशीय - भाषाओं के साथ संस्कृत के उद्धार के कार्य होने लगे । प्रो. कुन्हनराजा का पतंजलि - परिचय(1) एक विस्तृत रचना है । इस पुस्तक में पतंजलि - भाष्य की अंग्रेजी-टीका प्रोफेसर जी ने लिखी है । मद्रास की शिक्षा-समिति के तत्वावधान में संस्कृत व्याकरण नवीन शैली में, अंग्रेजी टीका के पांच भाग प्रकाशित हुए हैं ।(2) अध्ययन की परम्परागत शैली के स्थान पर सरल और नयी शैलियां आ गई हैं । इसकी पूर्ति के लिए नयी- नयी रचनाएं प्रकाशित हो रही हैं ।

जब तक संस्कृत बोलचाल की भाषा रही तब तक व्याकरण का विकास होता रहा । आचार्यों ने यथाकाल पूर्ववृत्तियों की कमियों की पूर्ति की तथा कालांतर में अप्रचलित बातें छोड़ दीं । बोलचाल की भाषा में हमेशा प्रवाह और परिवर्तन होते हैं । जब संस्कृत केवल साहित्यिक भाषा हुई तब उसका विकास भी रुक गया । इस नवीन युग में संस्कृत के पठन - पाठन में जागृति होती रहती है । छात्रों की सुविधा के लिए व्याकरण की सरल व्याख्याएं प्रकाशित होती हैं । विभिन्न भाषाओं में संस्कृत व्याकरण की व्याख्याएं तथा टीकाएं लिखी गई हैं । हिन्दी में पाणिनीय, वार्तिक तथा पतंजलि महाभाष्य की व्याख्याएं प्रकाशित हैं । काशिकावृत्ति तथा सिद्धान्तकौमुदी पर हिन्दी टीकाएं आ गई हैं । मलयालम में ए.सी.शास्त्री का ' पाणिनीय प्रदीप ' तथा पु. कुन्नप्पिल्ला का ' प्रक्रिया-भाष्य ' सुविदित है । संस्कृत व्याकरण को केरलीय पंडितों की देन प्रशंसनीय है ।

- -

1. एन इन्ट्रोडक्शन टू पतंजलि ।

2. न्यू मैथड संस्कृत ग्रामर ।

प्रचलित हुई। प्राकृत शौरसेनी अपभ्रंश, अर्धमागधी अपभ्रंश, मागधी अपभ्रंश तथा महाराष्ट्री अपभ्रंश में रूपान्तरित हुए। इन में शौरसेनी अपभ्रंश सबसे प्रधान हुआ जिसे नागर अपभ्रंश भी कहते हैं।

प्राकृत के व्याकरण : प्राकृत का उपयोग साहित्य सृजन हेतु भी होने लगा तब अनेक आचार्यों ने संस्कृत व्याकरण की पद्धति का अनुसरण करते हुए प्राकृत व्याकरणों की रचना की। आदिकवि वाल्मीकि, आचार्य पाणिनि और आचार्य भरत को प्राकृत के आदि वैयाकरण कहते हैं। पर इनकी व्याकरणरचना का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। प्राकृत के उपलब्ध स्वतन्त्र और व्यवस्थित व्याकरणों में वररुचि-कृत 'प्राकृत प्रकाश' सर्वाधिक प्राचीन है। प्राकृत प्रकाश में 12 परिच्छेद हैं। पहले नौ परिच्छेदों में महाराष्ट्री का, दसवें पैशाची का, ग्यारहवें मागधी का तथा बारहवें में शौरसेनी व्याकरणों का विवरण दिया है। प्राकृत प्रकाश के टीकाकारों में भामह सर्वाधिक प्राचीन माने जाते हैं। प्राकृत का दूसरा व्याकरण 'प्राकृतलक्षण' चण्ड का लिखा हुआ है। बारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध जैन-आचार्य हेमचन्द्र सबसे प्रसिद्ध प्राकृत-व्याकरणकार हैं। वे संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश तीन भाषाओं में ही प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने अपने 'सिद्ध-हेमशब्दानुशासन में तीनों भाषाओं के व्याकरण लिखे हैं। हेमचन्द्र का 'प्राकृत-व्याकरण' चार पादों में विभक्त है। पहले दो पादों में ध्वनि-विवेचन, तीसरे पाद में शब्द-रूप विवेचन तथा चौथे पाद में महाराष्ट्री, शौरसेनी, पैशाची, चूलिका-पैशाची तथा अपभ्रंश के नियमों का विवेचन है। त्रिविक्रमदेव के 'प्राकृतशब्दानुशासन', अप्पय्यदीक्षित के 'प्राकृतमणिदीप', मार्कण्डेय के प्राकृतसर्वस्व, रामतर्क वागीश के 'प्राकृतकल्पतरु' इस विभाग की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं।

रिचार्ड पिशल ने प्राकृत भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण जर्मन भाषा में लिखा। उन्होंने भारतीय भाषाओं का अध्ययन किया और कई विश्वविद्यालयों में भारतीय-भाषा के रीडर रहे। 1900 में उन्होंने अपना व्याकरण पूरा किया। अंग्रेजी में इसकी परिभाषा प्रकाशित हुई। हिन्दी में सुभद्र झा ने इसे अनूदित किया है।

प्राकृत सर्वस्व की यह कारिका प्रसिद्ध है :

'प्राकृतस्य तु सर्वं एवं संस्कृतयोनिः
संस्कृतात् प्राकृतं इष्टम् ततोऽपभ्रंश भाषणम्'।

प्राकृतों के भाषा, विभाषा एवं अपभ्रंश तीन वर्ग होते हैं। भाषा के अन्तर्गत महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, अवन्ती और प्राच्या है, विभाषा में शाकारी, शाबरी, चाण्डाली, आभीरी और ढक्की तथा अपभ्रंश में नागर ब्राचड और उपनागर हैं।

प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाएं और उनका व्याकरण

=========================

मानवता के विकास का पहला लक्षण है भाषा। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि मूलभाषा वही है जिसने सबसे पहले साहित्यिक रूप स्वीकार किया हो। हम वेदों को पहली साहित्यिक सृष्टि समझ लेते हैं। तो मूलभाषा को वैदिक भाषा स्वीकार करनी पड़ती है। भाषा का प्रवाह अनियन्त्रित होता है, जब मूलभाषा साहित्यिक रूप धारण करती और अपने को अभिजात समझती तब उसकी गति रुक जाती है। अथवा यह प्रतिष्ठित भाषा जनभाषा के साथ आगे बढ़ने लगती तो व्याकरण आदि कर्मों से इसे रोकने की चेष्टा करते, पर सामान्य भाषा तो पीछे मुड़े बिना आगे बढ़ती। इस तरह एक ही मूलभाषा कई रूप प्राप्त करती जैसे साधारण भाषा, शिष्ट भाषा, एवं साहित्यिक भाषा। मूलभाषा के दो रूप हो गए : वेदों की संस्कृत भाषा और लोकव्यवहार की साधारण ' प्राकृत भाषा '।

संस्कृत भाषा में भी धीरे - धीरे थोड़ा बहुत परिवर्तन हुआ। वैदिकी भाषा से भिन्न है ब्राह्मणों तथा उपनिषदों की भाषा, उनसे भी कुछ भिन्न है वाल्मीकि की रामायण तथा व्यास मुनि के पुराणों की भाषा। विद्वान पाणिनि ने व्याकरण लिखकर साहित्यिक भाषा की व्यवस्था की। पर प्राकृत में देशकाल के अनुसार परिवर्तन होता रहा। वह जनसाधारण की भाषा थी, स्वतन्त्रता से आगे बढ़ी। उसमें नयी शैलियां आने लगीं तथा शब्दों का रूपान्तर होता रहा। सामाजिक जीवन के विकास के आधार पर जब लोग भिन्न - भिन्न स्थानों में जाकर नया जीवन स्वीकार करते तब उनकी भाषा में भी भिन्नता आती। यह प्रवृत्ति बहुत धीरे होते हुए भी कालान्तर में साफ दिखायी पड़ती। इस तरह पहली प्राकृत, दूसरी - प्राकृत, तथा तीसरी प्राकृत का आविर्भाव हुआ।

सभी भाषाओं में ग्राम्यगीत प्रचलित हैं। सभी जनपदों में अपनी अपनी बोली के ग्राम्यगीत लोगों के कंठ में रहते। इन ग्राम्यगीतों में जो रूप-भेद होते उनके आधार पर भाषा - भेद समझ पाते। क्रमशः विभिन्न प्राकृत भाषाओं में साहित्यिक रचनाएं आविर्भूत हुईं। पूर्व में मागधी, पश्चिम में शौरसेनी तथा बीच में अर्ध-मागधी प्राकृत का प्रचार हुआ। महाराष्ट्री प्राकृत में भी साहित्यिक रचनाएं हुईं। जब इन भाषाओं में व्याकरण की रचना हुई और उनका रूप परिनिष्ठित किया गया तब भी जनभाषा स्वतन्त्र होकर आगे

प्रचलित हुई । प्राकृत शौरसेनी अपभ्रंश, अर्धमागधी अपभ्रंश, मागधी अपभ्रंश तथा मराठी अपभ्रंश में परिवर्तित हुए । इन में शौरसेनी अपभ्रंश सबसे प्रधान हुआ जिसे नागर अपभ्रंश भी कहते हैं

प्राकृत के व्याकरण : प्राकृत का उपयोग साहित्य सृजन के लिए भी होने लगा तब अनेक आचार्यों ने संस्कृत व्याकरण की पद्धति का अनुसरण करते हुए प्राकृत व्याकरणों की रचना की। आदिकवि-वाल्मीकि, आचार्य पाणिनि और आचार्य भरत को प्राकृत के आदि वैयाकरण कहते हैं । पर इनकी व्याकरणरचना का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता । प्राकृत के उपलब्ध स्वतन्त्र और व्यवस्थित व्याकरणों में वररुचि-कृत 'प्राकृत प्रकाश' सर्वाधिक प्राचीन है । प्राकृत प्रकाश में 12 परिच्छेद हैं । पहले नौ परिच्छेदों में महाराष्ट्री का, दसवें पैशाची का, ग्यारहवें मागधी का तथा बारहवें में शौरसेनी व्याकरणों का विवरण दिया है । प्राकृत प्रकाश के टीकाकारों में भामह सर्वाधिक प्राचीन माने जाते हैं । प्राकृत का दूसरा व्याकरण 'प्राकृतलक्षण' चण्ड का लिखा हुआ है । बारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध जैन-आचार्य हेमचन्द्र सबसे प्रसिद्ध प्राकृत-व्याकरणकार हैं । वे संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश तीन भाषाओं में वे प्रकाण्ड पंडित थे । उन्होंने अपने 'सिद्ध-हेमशब्दानुशासन' में तीनों भाषाओं के व्याकरण लिखे हैं । हेमचन्द्र का 'प्राकृत-व्याकरण' चार पादों में विभक्त है । पहले दो पादों में ध्वनि-विवेचन, तीसरे पाद में शब्द-रूप विवेचन तथा चौथे पाद में महाराष्ट्री, शौरसेनी, पैशाची, चूलिका-पैशाची तथा अपभ्रंश के नियमों का विवेचन है । त्रिविक्रमदेव के 'प्राकृतशब्दानुशासन', अप्पय्यदीक्षित के 'प्राकृतमणिदीप' मार्कण्डेय के प्राकृतसर्वस्व, रामतर्क वागीश के 'प्राकृतकल्पतरु' इस विभाग की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं ।

रिचार्ड पिशल ने प्राकृत भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण जर्मन भाषा में लिखा । उन्होंने भारतीय भाषाओं का अध्ययन किया और कई विश्वविद्यालयों में भारतीय-भाषा के रीडर रहे । 1900 में उन्होंने अपना व्याकरण पूरा किया । अंग्रेज़ी में इसकी परिभाषा प्रकाशित हुई । हिन्दी में सुभद्र झा ने इसे अनूदित किया है ।

प्राकृत सर्वस्व की यह कारिका प्रसिद्ध है :

'प्राकृतस्य तु सर्वं एवं संस्कृतयोनिः

संस्कृतात् प्राकृतं इष्टम् ततोऽपभ्रंश भाषणम्' ।

प्राकृतों के भाषा, विभाषा एवं अपभ्रंश तीन वर्ग होते हैं । भाषा के अन्तर्गत महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, अवन्ती और प्राच्या हैं, विभाषा में शाकारी, शाबरी, चाण्डाली, आभीरी और ढक्की तथा अपभ्रंश में नागर व्राचड और उपनागर हैं ।

प्राकृत के अनुसार उत्तम तथा मध्यमपुरुष सर्वनाम :

उ. पु एकवचन : अहम् > अहकं > अहउ > हँ

बहुवचन : उ अहे > अम्ह

म. पु एकवचन : त्वम् > तुम् > तँ

बहुवचन : तुम्ह

संख्या शब्दों का रूप भेद दिखाया है ।

संस्कृत की लिंग व्यवस्था प्राकृत ने स्वीकार नहीं की है । सभी प्राकृत भाषाओं में दो ही वचन होते हैं एकवचन तथा बहुवचन ।

कारक : सभी प्राकृत भाषाओं के कर्ताकारक तथा कर्मकारक के अन्त में 'ओ' लगाते हैं: कलाओं, महिलाओं । स्त्रीलिंग कर्ताकारक एवं कर्मकारक में ओ या उओ लगाते हैं ।

भगवान बुद्ध ने लोगों को उपदेश देने के लिए जनसाधारण की भाषा स्वीकार की। इस भाषा को 'पाली' कहते हैं । विद्वानों की राय है कि यह पहला प्राकृत-मागधी है ।

अपभ्रंश : डा. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' ने अपभ्रंश भाषा का व्याकरण और साहित्य से नीति की बातें स्वीकार की है ।

अपभ्रंश एक भाषा भेद है । आचार्य भामह ने अपभ्रंश शब्द काव्य विशेष को दिया है[1]। पतंजलि और भर्तृहरि ने अपभ्रंश पर प्रकाश डाला है । दण्डी ने अपभ्रंश नाम वाङ्मय के लिए दिया है । नवीं शताब्दी के रूद्रट ने

" संस्कृत- प्राकृत -मागध-पिशाच भाषाश्च शौरसेनी च ।
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देश विशेषात् अपभ्रंश : "।

अपभ्रंश का उद्भव एवं विकास मूलतः जनभाषा परंपरा में दिखाया गया है । साहित्यिक - रचना, संस्कृत, प्राकृत, पाली भाषाओं में हुई । कालान्तर में यह साहित्यिक भाषा हुई । अपभ्रंश, जनभाषा अपभ्रंश तथा साहित्यिक भाषा अपभ्रंश भी है । भाषावैज्ञानिकों ने अपभ्रंश के शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री तथा पैशाची पांच भेद दिखाये हैं । डा. नामवर

- -

संस्कृत प्राकृत चाऽन्यद्
अपभ्रंश इति त्रिधा - भामह ।

कहते है ' अपभ्रंश काल में पंजाब, राजस्थान, गुजरात, शूरसेन तथा उत्तरी महाराष्ट्र की भाषाओं में व्याकरण का कोई भेद न था। ध्वनिपाक को छोड़कर भाषा का ढांचा सर्वत्र एक ही था।

शौरसेनी अपभ्रंश ही मूल अपभ्रंश है जिसमें सातवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक दक्षिण भारत से समस्त उत्तर भारत तक साहित्य रचना होती रही। अपभ्रंश ने परिनिष्ठित होने का जो व्याकरणिक मार्ग स्वीकार किया था उसमें उसका प्रयोग जनसंपर्क में अधिक उपयोगी न हुआ। फलतः बंगला, मराठी आदि कई जनभाषाएं उभरते चली आई।

अपभ्रंश ने शब्द प्रयोग की सरलतम् पद्धति स्वीकार की। संज्ञा, क्रिया आदि के रूपों को कम कर दिया, लिंग - वचन - विभक्ति और काल की जटिलताओं को दूर किया। देशी बोलियों के अनेक रूप स्वीकार किये गए अपभ्रंश की कुछ विशेषताएं ये है न>ण, ऐ>आई, अल्पप्राण > महाप्राण होना, दन्त्य व्यंजन का मूर्धन्य होना, य > ज संयुक्त 'ह' का समीकरण होना आदि। संस्कृत परसर्ग उसने स्वीकार किये : तृतीया - सह, तण, चतुर्थी - के हि, रे सि, पंचमी - हो न्त उ, हो था, थि, उ, के; षष्ठी - के, र, कर, काज, सप्तमी - मंचउ (ह्रस्व ए और ओ भी) व्याकरण : अपभ्रंश ने दस स्वर को स्वीकार किया है। हेमचन्द्र ने ऋ की भी उपस्थिति दिखाई है। तृण, सुकृदु आदि उदाहरण दिये है। उच्चारण स्थान संस्कृत के अनुसार ही दिखाया है। स्वरध्वनियों के अन्तर्गत 'य' और 'व' का आगम होता है : सकल > सअल > सयल; नगर > नअर > नयर। अनुस्वार और अनुनासिक में ध्वनि भेद होता है। अनुस्वार की 'अ' ध्वनि होती और अनुनासिक की नासिक। अनुस्वार केलिए बिन्दी तथा अनुनासिक केलिए अर्धचन्द्र बिन्दी दी जाती है। सभी वर्ग के पंचम वर्ण अनुस्वार होते हैं। विसर्ग अपभ्रंश में लुप्त हो गया है। व्यंजन : स्पर्शों के ङ, ञ, न को अनुस्वार का रूप देकर छोड़ दिया है। ण और य को स्वीकार किया है। य र ल व स को भी स्वीकार किया है। 'व' की दो ध्वनियां होती : एक शब्द और दूसरा अनुनासिक : कवलु कमलु, नाव नाय। 'न' की ध्वनि ण और य की ज होती है। श और ष को स प्रयुक्त होते। स्वर और अलिबद्ध क्रमशः मृदु और घोष की ध्वनि लेते जब वे शब्द के बीच में आते हैं। शब्दान्त के व्यंजन लुप्त जाने या स्वरान्त बनते है। म्ह, ल्ह आदि संयुक्त ध्वनियां अपभ्रंश में प्रयुक्त है। 'क्ष' ख बनता है। कई स्थानों में

ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाते : य, र, व अथवा ऊष्म से बननेवाले संयुक्त व्यंजन साधारण व्यंजन में बदल जाता : विश्वास > विसास । कभी कभी दीर्घीकरण भी होता : जिह्वा > जीह । यदि स्वर के पूर्वस्वर पर स्वराघात हो तो दीर्घस्वर ह्रस्व हो जाता : विरूप > विरूप । यदि अनुस्वार युक्त ह्रस्व स्वर के पश्चात् र, स, श या ष आते तो ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है : सिंह > सीह , विंशति > वीस । कभी कभी अन्त्यस्वर का दीर्घीकरण हो जाता : श्यामल > शामल । कभी कभी मात्रामेल केलिए दीर्घस्वर ह्रस्व बनाया जाता । संयुक्त व्यंजन के पहले जो दीर्घस्वर आता है वह भी ह्रस्व हो जाता है : ए इ , ओ उ । इसी प्रकार आकारान्त या ईकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं से आ तथा ई ह्रस्व हो जाते हैं। रमणी > रमणि । कहीं कहीं ह्रस्वस्वर दीर्घ न होकर अनुस्वार हो जाता है : दर्शन > दंसण , अश्रु > अंसु । अपभ्रंश भाषा में दो व्यंजनों के मध्य स्वराघात की प्रवृत्ति मिलती है : दीर्घ > दीरह, श्मशान > समसान , स्वप्न > सविण ।

अपभ्रंश भाषा में स्वराघात की प्रवृत्ति एक सामान्य विशेषता है । कुछ विशेष परिस्थितियों में आदि, मध्य और अन्त्य स्वरों का लोप हो जाता है । आदि स्वर में उच्चारण का अधिक बल होने पर आदिस्वर का लोप होता : अरण्य > रण्ण , अवलगा > वलगा । निपात की स्थिति में भी आदि स्वर का लोप होता : अपि > वि , इव > व । मध्यस्वर का लोप : दो अव्यवहित स्वर संकोच प्राप्त होते और एक पूरे अक्षर का लोप हो जाता : भविष्यत् > भविसत् , एवमेव > एमेव । अन्त्यस्वर का लोप : तृतीया एकवचन 'एन' अपभ्रंश में 'ए' हो जाने पर अन्त के 'अ' का लोप होता , 'अ' का यह लोप कहीं कहीं पूर्णरूप से और कहीं कहीं अपूर्णरूप से होता है : रामेण > रामें , एवं > एउ , ध्रुवं > ध्रुउ ।

व्यंजनों के परिवर्तन - (1) स्वरीकरण : एक ही शब्द में दो स्वरों के अन्तर्गत प्रायः क, ग, च, ज, त, द, प, ब, य, व व्यंजनों का लोप होता है : याति > जाइ, गत > गअ , नकुल > णउल । (2) महाप्राणीकरण : कहीं कहीं ख, घ, थ, ध, फ, भ, 'ह' होता है : शाखा > साहा , पृथुल > पिहुल , अधर > अहर । कहीं कहीं क, त, प - ग, द, ब होते : मण्डप > मण्डव, मदकल : मदयल । त, द-ड होते : भारत भारह भारह । दन्त्य व्यंजन का मूर्धन्य होता : पतित पडिड , स-ह बनता है : संपदन पंडदए । व्यंजन के द्वित्व की प्रवृत्ति मिलती है: स्फुटति फुट्टइ । छन्द की पूर्ति केलिए दीर्घस्वर ह्रस्व करके व्यंजन को द्वित्व बनाते : पूजा पुज्ज ।
(3) व्यत्यय : सहस्र से सहस फिर सहिस । अंतस्थ व्यंजनों के संप्रसारण होती है : तिर्यक्>तिरि
ख

संस्कृत के आरंभ संयुक्तव्यंजन अतिवाद, या अन्तस्थ हो तो दूसरे व्यंजन का लोप होता है : व्यामोह > वामोह, स्वर > सर, त्रीप > दीप । संयुक्तव्यंजन प्रायः समीकरण हो जाता है, वर्ग का दूसरा अक्षर आता: स्कन्ध > खन्ध, आगामी समीकरण के अनुसार अन्तिम संयुक्ताक्षर का वर्ग परिवर्तन होता है : रक्त > रत्त, खड्ग > खग्ग । अनुगामी समीकरण के अनुसार अनु ध्वनियाँ सामान्य व्यंजन के द्वित्व में बदल जाती है : अग्नि अग्गि, आत्मन > अप्प । इस प्र अपभ्रंश भाषा में स्वर और व्यंजन ध्वनियों की अनेक विशेषताएँ प्राकृत से मिलती हैं ।

पदरचना : संज्ञा और सर्वनाम : अपभ्रंश ने इस विभाग में संस्कृत - प्राकृत परम्परा को स्वीक किया है । संज्ञा, आख्यात, उपसर्ग और निपात ।

संज्ञा पदरचना : संज्ञा शब्दों की पदरचना में विभक्ति, उपसर्ग, लिंग और वचन का प्रयोग है । इस में दो ही वचन होते हैं । विभक्ति कम किया है : प्रथमा, षष्ठी तथा सप्तमी होती है । कर्ता और कर्म परस्पर मिले है । करण अधिकरण में और अपादान संबन्ध कार मिले । कहीं कहीं कर्ता और कर्म कारकों केलिए प्रयुक्त शब्दों के एकवचन में 'उ' जोड़ते है करण तथा अधिकरण के बहुवचन में हि या हिं का प्रयोग होता । अधिकरण कारक केलिए वचन में मज्झे या मज्झ परसर्ग मिलाते । करण, संप्रदान और संबन्ध में त, ण परसर्ग होते

लिंग : अपभ्रंश में लिंगनिर्णय काफी कठिन है । नपुंसक पुल्लिंग या स्त्रीलिंग में मिलाए गये आ, ई, ऊ कारान्त शब्द स्त्रीलिंग होते । नपुंसक में 'उ' मिलाकर पुल्लिंग बनाने की रीति फल फलु अम्ब अम्बु ।

सर्वनाम : अपभ्रंश में नौ सर्वनाम ही है ।

(1) पुरुषवाचक - हउं, तुहुं और सो (2) निश्चयवाचक : जो, आय, एह ।

(3) संबन्ध वाचक : जो, सो, (4) प्रश्नवाचक : क, कवण, काइ (5) अनिश्चयवाचक : क

(6) निजवाचक : अप्प, (7) अन्यप्रयोग : अण्णु (अन्यत्) (8) इयर (इतर) (9) सा

सभी सर्वनामों के एकवचन, बहुवचन रूप, तथा कारक की तालिका दी गयी है ।

विशेषण और अव्यय : अपभ्रंश में विशेषण विशेष्य के लिंग-वचन-विभक्ति का अनुसरण नहीं का विशेषण संख्यावाचक एवं सार्वनामिक होते है । संख्यावाचक पूर्णांक तथा अपूर्णांक होते है । एक केलिए एक्का, एक, एग विशेषण जुड़ते है जो दोनों लिंगों में आते है । एक्क, एक्कु, एक्कलिय रूप भी प्रयोग में आते है । दो दु या बे दो रूप होते : द्वि का वकार होकर 'दु' और 'द' कार के लोप से बे बने है । तीन > तिण्णि, तिन्नि, तिण्ण, चार >

चयारि , पांच > पांच > पांच, पण्ण, पण , छः > छ , सात > सात, सत्ता , आठ > अट्ट, अट्ठाआ, अट्ठाई , नौ > णव , दस > दस, दह , सौ > सय, सआ, सह , हजार > सहस , लाख > लक्ख , करोड > कोटि ।

अपूर्णांक : आधा > अध्द, अद्ध , पौन > पाउण , सवा > सवाय, सवाक्ख ।

क्रमवाचक : पढमु, बिआ, तीअ, चउथ, पंचम, छठ, सत्तवं, अट्ठवं, नववं, दसवं ।

आवृत्ति दूणा, तिगुणा आदि ।

समुदायवाचक : एक्कई, दुक्कई, तिअ, चउक्क - - - -।

सार्वनामिक : उत्तमपुरुष एकवचन महार, महारू ।
बहुवचन अम्हारब ।

मध्यमपुरुष : एकवचन : तुहार । बहुवचन तोहर ।

अन्यपुरुष एकवचन ताहर । बहुवचन तुहारह ।

संस्कृत के यादृश, तादृश, यादृक, तादृक आदि जइस, तइस, जेहु, केह, हो जाते है ।

परिमाण सूचक कित्तिला, जित्तिड के प्रयोग होते है ।

अव्यय : (1) क्रियाविशेषण अव्यय (2) भाववाचक अव्यय (3) संबन्ध सूचक अव्यय तथा (4) संयोजक ।

धातुपरिचय : क्रिया रूप : क्रिया के मूलरूप को धातु कहते है । धातु में प्रत्यय जुडकर क्रिया बनती है । संस्कृत में धातुओं का संग्रह दस गणों में किया है । इन धातुओं में कुछ आत्मनेपदी, कुछ परस्मैपदी तथा कुछ उभयपदी होते है । काल आदि के ज्ञान केलिए दस लकारों का प्रयोग भी होता है । पर अपभ्रंश में ऐसी जटिलता नहीं है । अपभ्रंश में लट् (वर्तमान) लृट् (भविष्य) लिट (भूत) तथा लोट (विधायक) ही होते है । भूतकाल के लिए कृदंत का प्रयोग होता है । अपभ्रंश के धातुभेद तत्सम, तद्भव, देशी तथा शब्दानुकरणात्मक और नामधातु होते है । धातुओं की प्रकृति प्राकृत का अनुसरण करती है । उसके दो रूप होते है । वर्तमान कर्तृवाच्य और वर्तमान कर्मवाच्य । कर्तृवाच्य की प्रकृति : चलति > चलइ , पठति > पठइ होती, कर्मवाच्य की प्रकृति, मूलधातु के साथ 'य' जोडकर कथ्यते > कहिज्जइ होती है ।

तद्भव धातुओं का निर्माण ध्वनिपरिवर्तन, गणपरिवर्तन, कालपरिवर्तन आदि से होता है। त्रुट् से टुट पत् से पड लग से लग प्रयुक्त होते। मध्यप्रत्यययुक्त एप को भी धातु-भाव लिया गया है : जुगुप्सति > जगजव, जागाति > जागव। संस्कृत के ण्यन्तगण को अपभ्रंश ने स्वीकार किया है : रुह् > रोह, जाप् > याव। संस्कृत भविष्य से अपभ्रंश में प्रत्यय मिलाते : प्रयाति > दव्वव। कृत् प्रत्यय और उपसर्ग के योग से : च्युत् > चुक उपविष्ट > बइठ। अपभ्रंश में कई स्वतन्त्र धातुएँ हैं।

काल : (1) सरलकाल (2) संयुक्तकाल, वर्तमान काल के इ, हिं, सि, ह, उं,उं,हुं प्रत्यय होते। प्रथम पुरुष एकवचन करइ बहुवचन करहि, मध्यमपुरुष एकवचन करहि ब. व करहु। उ.पु : एक : करउं बहु : करहुं। भविष्यत् काल में स,ह,सहि,सइ, कृदंत भूत में अ,इय,य,इव आते हैं। विधि अर्थ में इ,उ,ए आते हैं। निषेध में तो।

अकर्मक धातुओं में भूतकालिक क्रिया कर्ता के लिंग-वचन के अनुसार आती है। सकर्मक धातुओं में कर्मवाच्य के अनुसार कर्ता करण कारक में और क्रिया कर्मानुसार प्रयुक्त होती है। हेतुहेतुमद्भूत में क्त का प्रयोग होता है।

वाच्य : अपभ्रंश में कर्तवाच्य की प्रधानता है। कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं। प्रेरणार्थक क्रिया, वर्तमानकालिक कृदन्त प्रत्यय और पूर्वकालिक प्रत्यय भी हम देख सकते हैं।

प्रत्यय परिचय : संस्कृत में तद्धित तथा कृदन्त प्रत्ययों से शब्द रचना होती है। संज्ञा, सर्वनाम, तथा विशेषण से तद्धित प्रत्यय लगाकर अन्य संज्ञाएं बनायी जाती है। कृदन्त, धातु-प्रकृति से बनाये जाते। अपभ्रंश में भी ये दोनों प्रचलित हैं। तद्धित पांच प्रकार के होते हैं। संज्ञा से अ,डड, डुल्ल, अल्ल, इल्ल, इय,क, उ, ए प्रत्यय लगाते हैं। इन्हें स्वार्थिक प्रत्यय कहते हैं (2) दो प्रत्यय साथ साथ आकर संयुक्त प्रत्यय प्रयुक्त कर : डल्ल+ अ, अल्ल + ड, डल्ल + ड + अ, अड + अ। (3) भाववाचक : त्व, पण, त, तण, त्या प्रत्यय मिलाकर (4) कर्ता का बोध करानेवाले : अ,आर,इर,अण,हार,इल्ल,आल,आल प्रत्यय जोड़कर (5) मत,इ,ई,उ,मन्त,मई,वाल,आलु,इय आदि संबंध सूचक प्रत्यय जोड़कर।

स्त्री प्रत्यय : आ, इ, ई होते हैं।

कृदन्त : संस्कृत में क्त्वा और क्त प्रत्यय होते, अपभ्रंश में 'क्त' विकसित होकर इ, आ, या प्रत्यय हो जाते हैं। संस्कृत के शतृ और शानच् अत् और मान होते हैं। अत् अंत भी हो जाता है। तव्यप्रत्यय एव्व या एवा हो जाता है।

इस ग्रन्थ का तृतीय तथा चतुर्थ खण्ड साहित्य के संबन्ध में है।

समीक्षा :

ई. पूर्व हजारों वर्षों से पहले ही उत्तर भारत में संस्कृत का प्रचार हुआ। संस्कृत व्याकरणों से नियन्त्रित हो जाने पर सामान्य जनता की बोली प्राकृत प्रचलित होकर विकसित हुई। प्राकृत-भाषा का प्रभाव संस्कृत नाटकों में देख सकते हैं। सदियों तक इसका प्रभाव साहित्य में एवं कलाओं में प्रचलित हुआ। संस्कृत नाटकों में प्राकृत का प्रयोग इसका साक्षी है। स्त्री-पात्र, विदूषक आदि प्राकृत भाषा ही बोलते हैं। उस काल में प्रचलित प्राकृत-भाषा को नाटककार छोड़ न सके। सामान्य-जन-बोली को साहित्यकार कैसे छोड़ सके? कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं जिनसे प्राकृत-भाषा का विकास हम देख सकते हैं।

कालिदास की शकुन्तला से : (1)

नटी : अज्जउत्त। इयं म्हि (आर्यपुत्र, इयमस्मि) -- सुविहिदप्पओआदाए अज्जस्स ण किं वि परिहाइस्सदि। (सुविहित प्रयोगतयार्यस्य न किमपि परिहास्यते)

शूद्रक की मृच्छकटिका : (2)

नटी : अज्ज, इयम्हि। (आर्य इयमस्मि)

सूत्रधार : अज्जे, साअदं दे। (आर्ये स्वागतं ते) य का अ एवं संयुक्ताक्षरों के प्रयोग में होनेवाली विशेषताएं इन उदाहरणों से स्पष्ट हैं। स का ह, व्यंजन वर्णों का लोप, संयुक्त-वर्णों में होनेवाला लोप एवं स्वरागम आदि परिवर्तन इन उदाहरणों में साफ़ देख सकते। सूत्रधार भी प्राकृत बोलता है।

---

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम् : प्रथमोऽङ्कः
2. मृच्छकटिकं : प्रथमोऽङ्कः
3. केरल में प्रचलित अभिनय कला।

प्राकृत की स्वाधीनता उसकाल में इतनी अधिक थी कि साहित्यकार उसे रोक न सके। कथा के संबन्ध में भी यही बात है। उदाहरण हेतु केरल में प्रचलित 'कूटियाट्टम' ही इसका साक्षी है। इस कला में प्राकृत की प्रधानता होती। जैसे ऊपर बताया गया वैसे शिलालेख आदि का भाषण प्राकृत में ही प्रचलित है।

प्राकृत का भी विकास हुआ, पहली प्राकृत, दूसरी प्राकृत एवं तीसरी प्राकृत के संबन्ध में ऊपर बताया गया है। इन सभी प्राकृतों में साहित्यिक विकास हुआ, व्याकरण लिखे गये। पर सामान्य जनता की बोली आगे बढ़ी। क्रमशः उत्तर - भारत की वर्तमान भाषाओं की उत्पत्ति हुई।

दूसरा अध्याय

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और विकास :

वैदिकी भाषा, व्याकरण से संकुचित होकर परिनिष्ठित हो गयी। पर जनभाषा स्वतन्त्र होकर आगे बढ़ी, वह पहली प्राकृत, दूसरी प्राकृत तथा तीसरी प्राकृत शाखाओं में परिपुष्ट हुई। तीसरी प्राकृत को अपभ्रंश का नाम दिया गया। पर अपभ्रंश शब्द किसी भाषा को कहना युक्ति - युक्त नहीं। किशोरीदास वाजपेयी (1) के अनुसार अपभ्रंश कहना ठीक नहीं, उनके मत में उन्हें तीसरी प्राकृत कहना ही युक्त है। शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी प्राकृतों के बारे में पहले सूचित किया है। व्रजभाषा तथा राजस्थानी शौरसेनी प्राकृत के रूपान्तर उत्तरप्रदेश के मुरादाबाद से लेकर पंजाब के अंबाला जिले तक की लंबी पट्टी में जो प्राकृत बोली जाती थी उसका कोई नाम नहीं दिया गया है। इसे 'भाषा' ही कहा करते थे। तुलसीदास ने रामचरित मानस को 'भाषाबद्ध' बताया है। नागरी लिपी में लिखने के कारण इसे नागरी प्राकृत भी कहते हैं। इसके कई नाम प्रचलित हुए : हिंदवी, हिन्दुस्तानी, खड़ीबोली आदि। 'हिन्दी' नाम बहुत पुराना नहीं है। हिंदवी नाम विदेशियों का दिया हुआ है। फारसीवाले भारत को हिन्द कहते थे, हिन्द की भाषा हिंदवी हो गई होगी। मुसलमानों के शासन के पहले भारत हिन्दुओं का स्थान था।

- - - - - -

1 हिन्दी शब्दानुशासन - 19

हिन्दुओं का स्थान हिन्दुस्थान और वहाँ की भाषा हिन्दुस्थानी या हिन्दुस्तानी हुई होगी। 'खड़ीबोली' नाम के बारे में आचार्य किशोरी दास वाजपेयी का मत है कुरुजन पद की बोली को खड़ीबोली कहते है। संस्कृत के पुल्लिंग एकवचन में जो विसर्ग का प्रयोग होता वह हिन्दी में खड़ीपाई का रूप धारण करता। संस्कृत का बालक : हिन्दी में लड़का होता। विदेशी शब्द ज्यादह ज्यादा होता। इस खड़ी पाई के आधार पर इसे खड़ी बोली कहते है[1]। ये सभी नाम एक ही भाषा के होते हैं जिसे तीसरी प्राकृत या अपभ्रंश कहते हैं। शौरसेनी का दूसरा नाम ब्रजभाषा और मागधी का अवधि सचमुच एक ही भाषा की दो बोलियां होती है। पूर्वी हिन्दी, पश्चिमी-हिन्दी, राजस्थानी सब एक ही भाषा होती है। कुछ लोग उर्दू को अलग भाषा समझते है। अंशतः यह ठीक है उर्दू का भी मूल हिन्दी ही है। लिपि भेद के कारण भी इसे लोग अलग भाषा समझने लगे। मुसलमान राजाओं की दरबारी भाषा होने से मध्यकाल में इसका विकास एवं प्रचार हुआ।

ऊपर की बातों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है कि तीसरी प्राकृत से ही हिन्दी की उत्पत्ति हुई है और सिन्धु - गंगासमतल के विस्तृत भाग में यह भाषा बोली जाती है और लघु एवं भेद के होते हुए भी इनका मूल एक ही है।

पं. कामता प्रसाद गुरु ने हिन्दी की उत्पत्ति की जो तालिका दिखा दी है वह नीचे दी जाती है[2]...

प्राचीन संस्कृत

लौकिक संस्कृत .... पहली प्राकृत

दूसरी प्राकृत (पाली)

शौरसेनी .... अर्धमागधी .... मागधी

नागर अपभ्रंश .... अर्ध मागधी अपभ्रंश

पश्चिमी हिन्दी .... पूर्वी हिन्दी

वर्तमान हिन्दी या हिन्दुस्तानी

---

1. हिन्दी शब्दानुशासन पृ : 15

2. हिन्दी व्याकरण : नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन तेरहवाँ प्रकाशन : पृ 12.

फ्रांसीसी पादरी कुर्दो, और अंग्रेज विद्वान सर विलियम जोन्स के नाम सर्वाधिक विख्यात हैं। सर. विलियम जोन्स कलकत्ता हाई कोर्ट के न्यायाधीश थे। उन्होंने संस्कृत का अध्ययन करके उसकी ग्रीक तथा लैटिन से तुलना की। उनका कथन है कि इन तीनों भाषाओं के धातुओं एवं व्याकरणिक तत्वों में इतनी अधिक समता है, इसलिए इनका विकास किसी एक ही स्रोत से हुआ है। संस्कृत का भाषा - गठन ग्रीक तथा लैटिन से पूर्ण एवं परिष्कृत है।

यूरोपवालों की दृष्टि व्यापार से राष्ट्रीयता पर पड़ गयी। मिशनरी लोग धर्म-प्रचारार्थ भारत में आने लगे। इस परिस्थिति में भारतीय भाषाओं का ज्ञान उन्हें अत्यन्तापेक्षित हुआ। इस क्षेत्र में कई भाषाशास्त्रियों ने अपना ध्यान लगाया और भिन्न भिन्न भाषा क्षेत्र में अपनी गवेषणा जारी रखी। हिन्दी क्षेत्र में जॉन जोशुआ केटलेर, बेंजामिन शुल्ज आदि की रचनाओं की सूचना ऊपर दी गयी है। इस क्षेत्र में देशी भाषा शास्त्रियों का ध्यान भी गया। जब शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी को स्थान मिला तब इसके अध्यापन के लिए व्याकरण ग्रन्थों की आवश्यकता हुई। अयोध्या-प्रसाद-खत्री का 'हिन्दी व्याकरण' 1874 में प्रकाशित हुआ। केशव प्रसाद, वंशीलाल, गोविन्ददेव शास्त्री आदि कई भाषा पंडितों ने उपयोगी व्याकरण रचे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी इस क्षेत्र में योगदान दिया। उनका 'प्रथम हिन्दी व्याकरण' 1884 में प्रकाशित हुआ। बाबू रामचरण सिंह का 'भाषा प्रभाकर' हुए हिन्दी का एक प्रामाणिक व्याकरण है। उन्नीसवीं सदी के अन्त तथा बीसवीं सदी के आरंभ में सैकड़ों व्याकरण ग्रन्थों की रचना हुई है। हिन्दी में तथा अंग्रेजी में इनका प्रणयन हुआ। श्यामसुन्दर दास का 'एन एलिमेन्टरी ग्रामर ऑफ हिन्दी ऐण्ड उर्दू' 1906 में प्रकाशित हुआ। पं. अम्बिका-प्रसाद वाजपेयी की 'हिन्दी कौमुदी' में वर्ण, शब्द, और वाक्यरचना पर विचार हुआ है। परिशिष्ट में विराम प्रकरण भी दिया है। पूर्ववर्ती व्याकरण ग्रन्थों में यह सुसम्मत होता है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती के सम्पादक होने के पश्चात् अनुभव किया कि हिन्दी भाषा में अस्थिरता आ गई है। द्विवेदी जी ने भाषा में एकरूपता तथा

- -

1. हिन्दी व्याकरण का इतिहास : डा. अनन्त चौधरी : पृ : 124

दूसरी तालिका में आदमी का बहुवचन 'आदमियों' दिया है । संबन्ध कारक में आदमी का, के दिखाया है । स्त्रीलिंग में बेटी का बहुवचन बेटीआ तथा तीसरी तालिका में आड़ू का बहुवचन आड़ूओं दिए है । इस तरह ई और ऊ का रूप बहुवचन में उस काम का प्रयोग समझा जाता है । चौथी तालिका में 'बाब' का बहुवचन 'बाबे' और आँख का बहुवचन आँखें दिए है ।

सर्वनाम :- यह चार प्रकार के होते है - पुरुषवाचक, निश्चयवाचक, संबन्धवाचक और निजवाचक।

पुरुषवाचक सर्वनाम :- मै, तू, वह । इनकी रूपरचना इस प्रकार है :-

कारक	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	मै	हम	तू	तोम(तुम)	वह	इन्ने
संबन्ध	मेरे	अपे	तेरे	तोम्मारे	इसेका	इन्नेका
सम्प्रदान	मुकों	हमकों	तेरेकों	तोमकों	इसेकों	इन्नेकों
कर्म	मेरा	हमारे	तेरा	तोम्मारे	वह	इन्नेका
सम्बोधन	ए मै	ए हम	ए तू	ए तोम	ए वह	ए इन्ने
अपादान	मेसे	हमसे	तूसे	तोमसे	इससे	इन्नेसे

क्या, क्यों और कोन प्रश्नवाचक सर्वनाम है । संबन्ध कारक सर्वनाम विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने पर लिंग - वचन - व्यवस्था निम्न रूप में दी गई है :- मेरा बाब, तोम्मारे भाई, मेरी मा । एकवचन के रूप में 'हम' का प्रयोग होता है । निषेध केलिए न, नई और मत प्रयुक्त है ।

शब्द निर्माण :- विशेषणों में 'ई' लगाकर संज्ञाएं बनायी जाती है : खूब>खूबी, अंधेर>अंधेरी तुलना के लिए विशेषण के पूर्व 'इससे' का प्रयोग होता है - इससे काला । बोलचाल में 'सु' या 'से' प्रयुक्त होते । संज्ञाओं से 'गार' या 'दार' जोड़कर संबन्ध द्योतित विशेषण पदों का निर्माण करते है । गुनाह> गुनाहगार , चौकी >चौकीदार । कई शब्दों में 'ची' 'वाला,' 'दाज' जोड़कर पदनिर्माण होता - तोप> तोपची , लकड़ी>लकड़ीवाला , तीर>तीरंदाज ।

स्त्रीलिंग शब्दों के अन्त में अनुनासिक ध्वनि होती है । जब उनके अन्त में पुल्लिंगवाचक 'ई' ध्वनि होती है तब स्त्रीलिंग रूप 'इन' में होता है । धोबी >धोबिन ।

इसी का प्रयोग ज्यादा या होता है। किसी के संबंध में कुछ स्पष्ट नहीं जानते, वहाँ 'फला' का प्रयोग किया जाता है।

कालरचना :- आठ काल होते है :- वर्तमान, अपूर्णभूत, सामान्य भूत, भविष्य, दूसरा भविष्य, विधि, भावार्थक और पूर्णभूत। तीन पुरुष और दो वचन सब प्रकार होता।

क्रिया करना

1) वर्तमान काल		2) अपूर्णभूत	
एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
मै करता	हम करते	मै करता था	हम करते थे
तू करता	तोम करते	तू करता था	तोम करते थे
वह करता	सभी करते	वह करता था	सभी करते थे

3) सामान्य भूत		4) दूसरा भूत	
एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
मै कराचुका	हम कराचुके	मै किया	हम किये
तू कराचुका	तोम कराचुके	तू किया	तो किये
वह कराचुका	सभी कराचुके	वह किया	सभी किये

5) पूर्णभूत		6) भविष्य-काल	
एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
मै किया था	हम किये थे	मै करेगा	हम करेंगे
तू किया था	तोम किये थे	तू करेगा	तोम करेंगे
वह किया था	सभी किये थे	वह करेगा	सभी करेंगे

7) दूसरा भविष्य		8) विधि	
एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन

कालरचना की कई सारणियाँ दिखाई गई है । कर्मणि प्रयोग तथा संदिग्ध भूत भी दिए गए है ।

कर्मणि प्रयोग : एकवचन - मुझे सिखते । बहुवचन - हमको सिखते ।

संदिग्ध भूत एकवचन - जद मै सिखाया हुआ । बहुवचन - जद हम सिखाया हुआ ।

' दस नियम ' हिन्दी में अनूदित करके दिए है ।

2. हिन्दुस्तानी व्याकरण - बेंजामिन शूल्ज

- - - - - - - - - - - - - - - - -

इस ग्रन्थ का प्रकाशन 1745 जनवरी 30 को हुआ । बेंजामिन ने कई वर्षों तक हिन्दुस्तान में रहकर भारतीय भाषाओं का अनुशीलन किया । उनका वक्तव्य है कि यह व्याकरण वहाँ आनेवाले किसी भी मिशनरी की सहायता कर सकता है । इसमें छः अध्याय हैं । पहले अध्याय में वर्ण, दूसरे में संज्ञा और विशेषण, तृतीय में सर्वनाम, चतुर्थ में क्रिया पंचम में अव्यय और षष्ठ में वाक्य रचना दिखाए गए है । सिन्धु नदी के पूरब में रहनेवाले हिन्दुस्तानी है । इसलिए उनकी भाषा भी हिन्दुस्तानी है । हिन्दुस्तानी और ट्यूटनिक भाषाओं में शब्दों और उच्चारण में समानता है । हाथ हान्ड, लाब लाब । वर्णमाला भी विश्ववर्णमाला से मिलती-जुलती है वर्णमाला में अभी प्राप्त सभी वर्णों को दिखाया गया है । 'ऊ' केलिए 'उ' दिखाया है । इ, ई और ओ, औ को आधुनिक रूप दिया है । 'ञ' स्वीकृत नहीं । 'ख' का आधुनिक रूप होता है

संज्ञा तथा विशेषण के संबन्ध में उनका विचार नीचे दिया जाता है :-

- -

हिन्दुस्तानी में संज्ञाओं एवं कारकों की रचना सरल है । संज्ञाओं के तीन रूप होते है - कर्ता, संबंध तथा कर्म । अन्य कारक इनसे मिलते है । संबंध कारक का रूप 'का' और कर्मकारक का रूप 'कु' परसर्ग जोड़कर बनाये जाते है । कर्ताकारक बहुवचन 'ए' या 'आं' में समाप्त होता है । अकारान्त एकवचन बहुवचन में एकारान्त हो जाता है । कर्ता कारक ए, ई, ओ, ऊ, ऐ, औ या व्यंजनान्त है तो बहुवचन का रूप आंकारान्त होता है । हिन्दुस्तानी में दो ही लिंग होते - पुल्लिंग और स्त्रीलिंग । कुछ शब्दों के

कारक रूप भी दिए गए हैं । साथ, नज़दीक, अन्दर, नीचे जोड़कर भी विभक्तियों का प्रयोग होता है - घर के अन्दर, साथ के नीचे । हिन्दुस्तानी में संज्ञाएँ कई प्रकार से संपन्न होती हैं ।

1. पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाकर - बेटा बेटी
2. संज्ञाओं से बे संयोजित करके - ईमान बेईमान
3. संज्ञाओं से कम जोड़कर - ज़ोर कमज़ोर
4. संज्ञाओं से ला, ना, बा जोड़कर - तकसीर लातकसीर, रज़मंद नारज़मंद, ख़बर बाख़बर
5. संज्ञाओं से वाला या वाली जोड़कर - नज़ीब नज़ीब वाला, नज़ीब वाली
6. संज्ञाओं से मंद जोड़कर - बड़ा बड़ामंद
7. संज्ञाओं से गैर जोड़कर - [illegible]नसाफ़ ।

कतिपय संज्ञाओं के बहुवचन के रूप इस प्रकार होते हैं - देव देवा, पाव पावा ।

संज्ञा के समान विशेषणों में लिंग और वचन के अनुसार परिवर्तन होते हैं - अच्छा बाप, अच्छी माँ ।

हिन्दुस्तानी में विशेषण कई प्रकार से संपन्न होते हैं ।

1) कृदंत से - दौड़ता घोड़ा ।
2) निम्नलिखित रूप से - मेहनत करनेवाला ।
3) भूतकालिक कृदंत से - नेकी करता हुआ सोउन ।
4) अरबी भाषा के समान संज्ञाओं से - खुदरत सु है सो अल्ला । दैनिक प्रयोग में आनेवाले विशेषणों की सूची दी गई है । सौ तक संख्यायें अक्षरों में दी गई हैं । हज़ार, लाख और करोड़ भी दिए गए हैं । क्रमवाचक में हकार को छोड़ दिया है - पहला पैला, ग्यारहवा गेरवा आदि । व के ऊपर चिह्न नहीं दिखाया गया है ।

सर्वनाम :- संज्ञाओं के समान कारक रचना इनमें प्रयुक्त होती है । मैं का आधुनिक रूप है । कारकों में भी आधुनिकता आ गई है ।

कर्ता - कौन, संबन्ध - कौनका, कौनकी, सम्प्रदान - कौनकु, कर्म - कौनकु,
अधिकरण - कौन में, कौन के बीच में ।

क्रिया :- हिन्दुस्तानी में क्रिया के तीन ही काल होते हैं । वर्तमान, भूत और भविष्य ।

वर्तमान

एकवचन		बहुवचन	
पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्री लिंग
मैं ही रहता हूं	रहती हूं	हमे रहते है	रहतीआ है
तू रहता है		तुमे रहते है	
उन रहता है ।		उनी रहता है	

भूत

मैं ही था	थी	हमे थे	थीआ
तू था		तुमे थे	
उन था		उनी थे	

भविष्य

मैं ही रहुंगा	रहुंगी	हमे रहेंगे	रहेंगीआ
तू रहेगा	रहेगी	तुमे रहेंगे	
उन रहेगा		उनी रहेंगे	

विधि

	रह	रहो
भावार्थक संज्ञा	रहना	
वर्तमान कृदंत	रहो	
भविष्य कृदंत	रहने का	
क्रियार्थक संज्ञा	रहने कु रहने से, रहने देओ, रहने के वास्ते	
संभावनार्थक	न रह सकाँ	
सामान्य वर्तमान	रहा रहे	

इसी प्रकार होना, करना आदि क्रियाओं का रूप दिया गया है। अध्याय के अन्त में 75 क्रियार्थक संज्ञाओं तथा वर्तमान, भूत, भविष्य काल के रूपों को दिखाया गया है।

अव्यय : अव्यय से यहाँ परसर्ग, क्रियाविशेषण, समुच्चय बोधक एवं विस्मयादिबोधक शब्दों से तात्पर्य है। जिन शब्दों को लाटिन में उपसर्ग कहते हैं उन्हें भारतीय भाषाओं में परसर्ग कहते हैं क्यों कि ये शब्द संज्ञाओं, सर्वनामों और क्रियाओं के बाद संयुक्त किये जाते हैं। अति - प्रयुक्त परसर्ग ये हैं - में, से, पु, तो, पर, ऊपर, नीचे, आगे, पीछे, कने, अन्दर, नजदीक, साथ, संगत, शामिल, बी, यहाँ, वास्ते आदि।

क्रियाविशेषण :- आज, अजहु, हमेशा, रात में आदि। कुछ क्रिया - विशेषण कई शब्दों से संयुक्त हैं - हर वक्त, अभी नहीं, फिलहाल आदि। स्थलवाचक क्रियाविशेषण - जहाँ, यहाँ कहाँ आदि।

गुणवाचक क्रियाविशेषण - ज्यादा, पूरा, बहुत, अधिक आदि।

विस्मयादिबोधक - ए अल्ला, ए बाबा, छि, रे, भला आदि।

समुच्चयबोधक :- भी, क्यों, वास्ते, नहीं तो, यह न होवे, पर, तो, तोभी, आगे, पीछे, कि, आदि। प्रत्येक का उदाहरण भी दिया गया है। परिशिष्ट में कुछ प्रार्थनाओं का उदाहरण है।

३. अल्फाबेटुम ब्रह्मानिकुम - कैसियानो बेलिगत्ती

कैसियानो बेलिगत्ती इटली का रहनेवाला था। उन्होंने काशी पहुँचकर हिन्दी वर्णमाला का अध्ययन करके उसे क्रम से लिख डाला। पटना के आसपास के प्रदेशों में बोली जानेवाली भाषा नागरी कही जाती है। हिन्दुस्तानी भाषा नागरी लिपि में लिखी जाती है। यह भाषा विदेशियों, व्यापारियों और तीर्थाटकों से बोली जाती है। इसे भारत की राष्ट्रभाषा कही जा सकती।

पहले अध्याय में स्वरों को दिखाया है। स्वरों की संख्या सोलह करने के लिए 'अं, अः' भी गिनाए गए हैं। 'ऊ' को आधुनिक रूप दिया है।

दूसरे अध्याय में व्यंजनों का वर्णन है । कुल 34 व्यंजनों तथा उनके कठोर, महाप्राण, मृदु और अनुनासिक उच्चारण चिह्न बताए गए हैं ।

तीसरे अध्याय में व्यंजनों के उच्चारण का विशेष विवरण दिया गया है । प्रत्येक वर्ण को लैटिन के समानार्थ लिखकर उनका उच्चारण स्पष्ट किया गया है ।

चौथे अध्याय में स्वरचिह्नों का रूप - निर्देशन है ।

पाँचवें में स्वर संयुक्त व्यंजन का परिचय है ।

छठे अध्याय में संयुक्ताक्षर और उनके नाम दिए गए हैं ।

सातवें अध्याय में युग्माक्षरों की तालिका दिखाई गई है ।

आठवें अध्याय में यह दिखाया गया है कि किसप्रकार हिन्दुस्तानी में जिन अक्षरों की कमी है उनको पूर्ण करने के उपाय बताए गए हैं । इसमें F, Q, X, Y, Z के लिए कोई वर्ण नहीं । प्रत्येक के लिए लिपि - विन्यास भी दिखाया गया है ।

नवें अध्याय में बंगला की वर्णमाला का वर्णन है ।

दसवें में लैटिन वर्णमाला के अनुसार हिन्दुस्तानी वर्णमाला दिखाई गई है ।

ग्यारहवें अध्याय में हिन्दुस्तानी संख्याएं अंकों और अक्षरों में दी गई हैं ।

बारहवें अध्याय में अध्येताओं के लिए अभ्यास दिए गए हैं ।

परिशिष्ट में भिन्न लिपियाँ और संख्याएँ दी गई हैं ।

4. हेरासिम लेबेडफ : इनका लिखा हुआ व्याकरण है ग्रामर आफ् दि प्योर एंड मिक्स्ड ईस्टइण्डियन डायलेक्टस । लेबेडफ की दुनियाँ देखने की इच्छा हुई और वे देशाटन के लिए निकले । 1785 ई. में वे मद्रास पहुँचे । दो साल के बाद वे कलकत्ता गये । अपनी संगीत कला से उन्होंने अंग्रेजों के बीच प्रतिष्ठा पायी । उन्होंने बंगला, संस्कृत, हिन्दुस्तानी आदि भाषाओं का अध्ययन किया । उन्होंने कई अंग्रेजी कामेडियों को बंगला में अनूदित करके उनका अभिनय भी कराया । सहकारियों के कुचक्र में पड़ने से उन्हें भारत छोड़ना पड़ा । लंदन पहुँचकर 1801 ई. में उन्होंने अपना यह ग्रामर प्रकाशित किया । व्याकरण की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । यह ग्रामर डा. महादेव साहा द्वारा सम्पादित होकर हाल में ही प्रकाशित हुआ है ।

केलॉग ने एकवचन ... का बहुवचन रूप निम्न प्रकार से दिखाये हैं : एक आदमी
आदमी का कारक रूप इस प्रकार दिया है : कर्ता आदमी
सब आदमी या सब लोग), संप्रदान आद... को, कर्म आदमी को , संबोधन हे आदमी,
संबंध आदमी का ...), ...मी का पास अपादान ... आदि कई रूप दिए गए हैं ।

अपादान : ...

		एकवचन	बहुवचन
सर्वनाम	उत्तम पु.	म, मैं, मैं, हम ।	मैं सब, हम ।
		तू, तुम ।	तै सब, तुम लो
	मध्य	वो, ऊ, वह ।	ऊ सब, वह सब, वह लोग

रूप दिखाये गये हैं : विकृत मिश्रित बोली, नियमित मिश्रित बोली, शिष्ट - मिश्रितबोली

कर्ता	तू , तु	तू	तुम
संबंध	तोर, तेरे, तेरी	तार, तारा	तुम्हारा, तु
संप्रदान	तुम को	ताको	तुम को
कर्म	तुम को	ताको	तुम को
संबोधन	हे तू या रे तू	रती	हे तुम
अपादान	तेरे पास	तारा पास	तुम्हारा
	तुमसे, तेरेवासे	तेसे, तारावासे	तुम्हारे

बोलचाल की भाषा का कुछ नमूना दिया है : खुदा पैदा करनेवाला है - - - -
आदि - किसी संबंध की बातचीत   क्या चीज़ है तुम्हारे दुकान में ?
मेहरबान क्या आप मांगते हो ?

5. जॉन शेक्सपियर : इनका ' ए ग्रामर आफ द हिन्दुस्तानी लाग्वेज ' 1813 में प्रकाशित हुआ ।
6. विलियम प्राइस : इनका व्याकरण लंदन से 1827 ई. में प्रकाशित हुआ
7. विलियम येटस इनकी पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टू द हिन्दुस्तानी लाग्वेज' कलकत्ता से प्रकाशित हुई ।

8. पादरी आदम : ~~इनकी किसी व्याकरण ग्रंथ से उल्लेखनीय कोई खास कार्य नहीं है।~~ लेकिन इनकी 'हिन्दी भाषा का व्याकरण' 1827 में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। यह विचारणीय ग्रंथ है। यह एक विदेशी का हिन्दी में लिखा हुआ पहला व्याकरण है। इन्होंने भाषा का नाम 'हिन्दी' दिया है। आदम ने एक हिन्दी कोश भी प्रकाशित किया। यह व्याकरण प्रश्नोत्तर के रूप में लिखा गया है।

पहला खंड :

प्रश्न : हिन्दी भाषा की वर्णमाला के प्रकार से विभाग किये गये हैं ?

उत्तर में सोलह स्वर बताए गए हैं। चौंतीस अक्षरों को व्यंजन की सूची में धर दिया गया है। ह्रस्व स्वर दीर्घ स्वर तथा स्वरचिह्न (मात्राओं का रूप) दिखाये हैं। अक्षरों का उच्चारण स्थान बतलाया गया है। चंद्रबिन्दु और अनुस्वार दोनों को अनुनासिक कहते हैं : चाँदि, हंस।

प्र : स्वरों का और अक्षरों के साथ मेल होने से कैसा आकार होता है ?

उ : क्र, प्र, र्कि, क्, ल्ल, द्र, में ऐसा संयोग होता है।

प्र : व्यंजनों में संयुक्त अक्षर सब पूर्ण कितने हैं ?

उ : क्क, ख्ख, ग्ग, घ्घ, ङ, ङ्
च्च, छ्छ, ज्ज, ञ । ट्ट, ठ्ठ, ड्ड, ढ्ढ, ण्ण
त्त, थ्थ, द्द, ध्ध, न्न । प्प, फ्फ, ब्ब, भ्भ, म्म
य्य, र्र, ल्ल, व्व - श्श, ष्ष, स्स, ह्ह ये चौंतीस अक्षर संयुक्त हैं।

दूसरा खंड :

संज्ञा के विषय में :

वस्तु के नाम मात्र को संज्ञा कहते हैं।

प्र : संज्ञा कितने प्रकारों से भेद किये जाते हैं ?

उ : व्यक्ति नाम वाचक, जातिवाचक, भाववाचक और क्रिया वाचक इन चार प्रकारों से संज्ञा भेद किये जाते हैं।

त्येक मनुष्य के नाम व नगर व देश व नदी का पर्वत इत्यादि के नाम का प्रकृत नाम वाचक कहते है, जैसे राम, मोहन, पटना ।

गुणवाचक शब्द के पे (त्व) और ता ये दो प्रत्यय होने से उसको भाववाचक कहते है ।

उत्तमत्व , उत्तमता ।

तात्पर्य मात्र को क्रियावाचक कहते है : करना, सोना, जाना ।

संज्ञा के प्राणिवाचक तथा अप्राणिवाचक दो भेद है ।

लिंग प्र : संज्ञा का विभाग कितने लिंगों में किया गया है ?

उ : पुलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग इन तीन लिंगों में किया जाता है : नर, नारी, ज्ञान

प्र : आई, नी, ति ये प्रत्यय जिन शब्दों के अन्त में होय तो स्त्रीलिंग है या नहीं ?

उ : हाँ है । जैसे माता, चातुरी, सुजनी, सम्मति ।

प्र : कोई अकारान्त या हलन्त स्त्रीलिंग शब्द है क्या नहीं ?

उ : हाँ जैसे बात, घास, धाम, जगत्, संपत् आदि ।

प्र : दीर्घ ईकारान्त शब्द से नी प्रत्यय होने से पूर्व को ह्रस्व करके स्त्रीलिंग हो या नहीं ?

उ : हाँ, होता । जैसे स्वामी - स्वामिनी, हस्ती - हस्तिनी, ज्ञानी - ज्ञानिनी, मानी - मानिनी

प्र : नपुंसक लिंग किसको कहते हैं ?

उ : संस्कृत की रीति से स्त्रीलिंग पुलिंग भिन्न जो शब्द उसको नपुंसकलिंग कहते है । जैसे जल, फल, धन, वन इत्यादि । परन्तु हिन्दी भाषा में नपुंसक का बोधक कोई प्रत्यय नहीं है।

कारक : कारकों को आधुनिक रूप में आठ दिखाया है : कर्ता, कर्म आदि । करण कारक का प्रत्यय करके तथा अधिकरण में 'में' का अलावा के विषय को दिखाया है । बहुवचन रूप बालके तथा बालकन् होते ।

सर्वनाम : इसके छै भेद दिखाये है : नामवाचक, संबन्धवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, अधिकार और गौरव सहित, प्रश्नवाचक ।

मैं का रूप ऐसा दिया है, बहुवचन रूप हम, कर्मकारक के दो रूप मुझे, मुझको आदि दिखाये है । जो - सो संबन्धवाचक सर्वनाम है । आप और अपना अधिकार और गौरव-सहित सर्वनाम है । बहुवचन रूप आपलोग, अपने लोग ।

क्रिया : प्र : क्रिया किस प्रकार से जानी है ?

उ : संज्ञा अथवा सर्वनाम के उत्तरवर्ती होके यथार्थ ज्ञान को जन्मावें वही क्रिया होती है । क्रिया चार प्रकार की होती : अकर्मक, कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और प्रेरणार्थक । जिन सब क्रियान में कर्ता का भाव वा रीति वा गुण प्रकाशित हो वे वही अकर्मक क्रिया कही जाती है, जैसे रोना, जागना, बैठना । जो क्रिया अपने पीछे कर्मकारक को रखे वही कर्तृवाच्य कही जाती : ईश्वर साधु लोगों को प्यार करता है परन्तु पापियों को दण्ड देता है । कर्ता हुए को जो प्रेरणा करता (करती) वही प्रेरणार्थक कही जाती है : तुम सब काम कराओ । जो क्रिया कर्म पावेन को बतलाती है वही कर्मणि वाच्य कही जाती : काम किया जाता है ।

क्रिया के नियम पांच है : स्वार्थ, अनुमत्यर्थ, शक्त्यर्थ, आशंसार्थ और भावमात्रवाचन । अकर्मक क्रिया होना स्वार्थ नियम के अनुसार है । इस में वर्तमानकाल, अपूर्ण-भूतकाल, अद्यतन भूतकाल, अनद्यतन भूत, भविष्यत् भूतकाल दो प्रकार के दिए गए हैं ।

वर्तमान काल		अपूर्ण भूतकाल	
मैं हूँ	हम हैं	था	थे
तू है	तुम हो	था	थे
वह है	वे हैं	था	थे

अद्यतन भूतकाल		अनद्यतन भूतकाल	
मैं हुआ हूँ	हम हुवे हैं	हुवे	थे
तू हुआ है	तुम हुवे हो	हुवे	थे
वह हुआ है	वे हुवे हैं	हुवे	थे

भविष्यत् काल (एक)	बहुवचन
मैं हूंगा या होऊंगा	होंगे या होवेंगे
तू होगा या होवेगा	होंगे या होवेंगे
वह होगा या होवेगा	होंगे या होवेंगे

भविष्यत् भूतकाल	बहुवचन
मैं हो चुकूँगा	हम हो चुकेंगे
तू हो चुकेगा	तुम हो चुकोगे
वह हो चुकेगा	वे हो चुकेंगे

अनुमत्यर्थ नियम : उससे केवल आज्ञा और विनती समझी जाती है जैसा कि ईश्वर की आज्ञा का पालन करो, हे प्रियबन्धु लोगो, तुम मेरे बुरे व्यवहारों को त्याग करो । एकवचन होऊं, हो, हूजियो (आप) होवे तथा बहुवचन में होवें होवो, हूजिए (आप लोग) होवें रूप चलते हैं ।

शक्यर्थ नियम : उससे सामर्थ्य या शक्ति समझी जाती है जैसे हम सब वहाँ आज पहुँच सकें या आज हम नहीं पहुँचने सकते । इसमें 'सक' के रूप चलते हैं । आशीरर्थ नियम : उससे अनुमान मिलापपन इत्यादि अन्तर्गत समझा जाता है, जैसा जो ऐसा होय कि तुम सत् उपदेश को स्वीकार करो, तो सब मनुष्य तुमको भला जानेंगे ।

वर्तमान काल		अपूर्ण भूतकाल	
जो मैं होऊं	जो हम होवें या होय	जो मैं होता	जो हम होते
जो तू होय	जो तुम होवो	जो तू होता	जो तुम होते
जो वह होय	जो वे होवें या हो	जो वह होता	जो वे होते

भावमात्र वाचक नियम : उससे एकवचन या बहुवचन और कर्ता का गुण इनको छोड़ के केवल धातु का अर्थ समझा जाता है ।

असमापिका क्रिया : जो क्रिया असमापिका क्रिया की वाचना करे उसी को असमापिका क्रिया कहते हैं और वह इसी प्रकार से कही जाती है । क्रिया विशेषण, होके, होकर, होके, हो करके, वर्तमान होता या हुआ । एकवचन और होते या होते हुये, बहुवचन ।

भूत हुआ (एकवचन) और हुये (बहुवचन)

सहायिक क्रिया, कर्ता होना, कर्म होने को इत्यादि सब कारक जानने ।

पाँचवा खंड :

प्र: क्रिया विशेषण किसको कहते हैं ?

उ : वाक्यों के विषय के एक गुण या समय या स्थान का रीति समझी जाय, जैसा कि बालक

ने वाक्यों की रचना किये है ।

प्र: क्रिया विशेषण किस प्रकार से जाना जाता है ?

उ: कैसा, कितना, कब, कहाँ इस भाँति के सब प्रश्न का उत्तर साधारणरीति से क्रिया विशेषण होता है जैसा कि कैसा है ? भला ।

शब्दांशों के विषय में : ये उपसर्ग और प्रत्यय दो प्रकार की है । उपसर्ग कम होते है । तले, साथ कारण, लग, हेतु आदि परसर्ग होते है । आक्षेपोक्ति : अहो, ओहो, अरे, अजाहो, ओ, भी आदि आक्षेपोक्ति होती है । दूरवर्ती के लिए पूर्व में और समीपवर्ती के लिए आगे इसका प्रयोग होता : अहो देवदत्त, भाई है ।

देना, सिखाना, जैसी क्रियाएँ द्विकर्मक होते है ।

के लिए, कारण, निमित्त के अर्थ में साधिक क्रिया प्रयुक्त करते है ।

समास : कर्मधारय : गुणवाचक शब्द में संज्ञा का योग : महाराज, महाबल ।

तत्पुरुष : कारक गम्यमान पद के साथ पद के मिलाप : वृक्षपतित, वनगत ।

अव्ययी भाव : क्रिया विशेषण के साथ शब्द का मेल

चवर्ग का अक्षर तवर्ग के दूसरे अथवा तीसरे अक्षर में मिलने से संधि होय ।

- - - - x - - - -

9. जेम्स आर. बैलन्टाइन :

इनकी तीन व्याकरण पुस्तकें होती है (1) ग्रामर आफ द हिन्दुस्तानी लाग्वेज विथ ग्रैमाटिकल एक्सरसाइसेज - 1838 (2) एलिमेन्ट्स आफ हिन्दी एन्ड ब्रजभाषा ग्रामर - 1839 (3) ए ग्रामर आफ द हिन्दुस्तानी लाग्वेज विथ नोटिसेज आफ द ब्रज एन्ड दक्खिनी डायलेक्टस - 1842

बैलंटाइन का हिन्दुस्तानी व्याकरण शुद्ध हिन्दी का व्याकरण है । ब्रजभाषा, उर्दू तथा दक्खिनी के व्याकरण भिन्न भिन्न अध्यायों में दिखाये है । उससे कुछ उद्धरण नीचे दिए जाते है -

ब्रजभाषा के सर्वनाम : मेरो>मेरा, मोको मोहि > मुझको, मुझे, हमारो, हमनको > हमारा, हम को, तै > तू, तेरो > तेरा, तोको तोहि > तुझको तिहारो > तुम्हारा, तुमनिको, तुम्हें > तुम को, यह, याहि > इसको, आपनसों > अपने से, आप्यो > अपना, को > कौन, काहि > किसे,

कहा > क्या , जाहि > जिसे , जे > पे जो , कोऊ > कोई , काहूसो > किसी से , कछु > कुछ , काहू सो > किसी से ।

क्रिया : हो, भयो > मैं था, है, भये > है हुए , हो > मैं हूँ , होउ > हो सकते , ह्वे हो > मैं होऊँगा , ह्वे है > वे होवेंगे । चलिहौं > तुम चलोगी ।

10. सेंटफोर्ड आर्नट : इनका व्याकरण ' ए न्यूसेल्फ - इनस्ट्रटिंग ग्रामर आफ द हिन्दुस्तानी टंग 1831 में प्रकाशित हुआ । इन्होंने भाषा संबन्धी कई पुस्तकें लिखी हैं ।

11. डंकन फार्ब्स : इनका 'हिन्दी मानुअल' 1845 में प्रकाशित हुआ । इन्होंने एक कोश भी तैयार किया जो 1848 में प्रकाशित हुआ ।

12. रैवरन्ट विलियम एथरिंगटन : इनका 'द स्टूडन्ट्स ग्रामर आफ द हिन्दी लेंग्वेज'; 1870 में प्रकाशित हुआ । हिन्दी का कोई अच्छा व्याकरण इसके पहले अंग्रेजी में नहीं निकाला था । इसमें बैबिल, महाभारत, रामायण आदि से कई भाग हिन्दी में अनूदित करके दिया है । इस ग्रन्थ के आधार पर उन्होंने भाषाभास्कर नामक हिन्दी व्याकरण लिखा

इस पुस्तक में 12 अध्याय हैं (1) वर्णविचार (2) संधिप्रकरण (3) शब्द-साधन (4) सर्वनाम (5) क्रिया (6) कृदंत (7) कारक (8) तद्धित (9) समास (10) अव्यय (11) वाक्य रचना (12) छंद निरूपण । इस ग्रंथ से कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं - अक्षर वह है जिसका विभाग नहीं हो सकता, इनके चिह्न को भी अक्षर कहते हैं । अनुस्वार और विसर्ग भी एक प्रकार के व्यंजन हैं ।

अक्षर और आकार के संयोग से संधि होती है (संधि का एक चक्र दिखाया है)

सर्वनाम संज्ञा का एक भेद है । सर्वनाम, और संज्ञाओं के बदले में आते हैं ।

कारक उसे कहते हैं जिसके द्वारा वाक्य में क्रिया अथवा दूसरे शब्दों के संग संज्ञा का संबन्ध ठीक ठीक प्रकाशित होता है ।

अपादान : क्रिया के विभाग की अवधि को अपादान कहते हैं, उसका चिह्न 'से' है ।

संबोधन : किसी को चिताकर अथवा पुकारकर अपने सम्मुख करना है उसके चिह्न हे, हो, अरे इत्यादि ।

क्रिया : क्रिया उसे कहते हैं जिसका मुख्य अर्थ 'करना है', वह काल, पुरुष, और वचन से

संबन्ध रखती है । क्रिया कर्तृप्रधान, कर्मप्रधान और भावप्रधान होती है ।
धातु से :
संभाव्य भविष्यत् : उ, ए, और एँ इन स्वरों के लगाने से तीनों पुरुषों की क्रिया दोनों वचनों में हो जाती है । जो धातु स्वरांत हो तो ऊँ ओ को छोड़ शेष प्रत्ययों के आगे व विकल्प से लगाते है । जैसे हलन्त धातु, बोल से बोलूं बोले आदि होते है और स्वरांत धातु खा से खाऊं, खाए या खावे आदि होते है ।
बोलूं - बोले - बोलो पर खाए (खावे) खाओ - खयें - खावें । संस्कृत के जाने के अर्थ दिखाने दो धातु होते या और गम् । इनमें से या > जा बनकर जाता रूप और गम् से भूतकालरूप गया आ गए । आकांक्षा, योग्यता, आसक्ति :

वाक्य रचना में ये तीन बातें मुख्य है । एक पद की दूसरे पद के साथ अन्वय के लिए जो चाह रहती है उसे आकांक्षा कहते है । परस्पर अन्वित होने में अर्थ बोध के औचित्य को योग्यता कहते हैं । जिस पद का अन्वय जिस शब्द के साथ अपेक्षित हो उनके बीच में बहुत से काल का व्यवधान न पड़ने पावे ।

- - - x - - -

13. रेवरेन्ड एस. एच. केलाग :

केलाग अमेरिका ओरियन्टल सोसेटी के प्रमुख सदस्य है । मिशनरी होकर उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र हिन्दी प्रदेश स्वीकार किया । उन्होंने हिन्दी का एक विस्तृत व्याकरण 1875 में लिखकर प्रकाशित कराया । उसमें पूर्ण विस्तार से उच्च हिन्दी (खड़ीबोली) ब्रजभाषा तथा अवधि का विशद विवेचन किया है । उन्होंने चौदह बोलियों की शब्द रूपावली और और धातु रूपावली दी गई है ।

केलाग ने हिन्दी - उर्दू के सूक्ष्म अंतर को समझने के विवेक का परिचय दिया और हिन्दी के अन्य जनपदी रूपों के ज्ञान की आवश्यकता तथा उपयोगिता को भी अनुभव किया । इसलिए उन्होंने बंगाल के पश्चिम तथा गुजरात - सिंध के पूर्व विस्तृत हिन्दी क्षेत्र की बोलियों का सामान्य रूप दिखाया गया है । उदाहरणों को चुनने में देशी लेखकों की लिखी पुस्तकों का भी सहारा लिया गया है । केलाग का हिन्दी ग्रामर अपने समय का उत्कृष्ट व्याकरण है ।

केलाग ने ग्रियेरसन आदि के जैसे ए और ओ का ह्रस्व रूप भी दिखाया है। हिन्दी क्षेत्र में प्रचलित चार लिपियों को भी अंकित किया है नागरी, कैथी, महाजनी और बनियौटी। उच्च हिन्दी, खड़ीबोली का नामान्तर है। राजव्यवस्था और दैनिक व्यवहार संबन्धी सैकड़ों अरबी शब्द मध्यकाल में हिन्दी की सभी बोलियों में घुलमिलकर एक हो गए हैं। तत्सम शब्द संस्कृत शब्द का कर्ता एकवचन रूप विभक्तिहीन प्रयुक्त होते हैं। तत्सम क्रियाएँ हिन्दी में नहीं है। लिंग व्यवस्था जटिल है, लिंग निर्णय के लिए जो नियम बताए गये हैं उनके अपवाद भी होते है। यह नियमशास्त्रीय नहीं बताया जा सकता। उत्तम तथा मध्यम-पुरुष सर्वनाम के संबन्ध का चिह्न 'रा' है, निजवाचक 'आप' 'ना' प्रत्यय कारके अपना हो जाता है। य, व, ज, स, क, ही सार्वनामिक मूल समझते हैं। यहाँ, वहाँ आदि भी सर्वनाम होते हैं, इ, उ, जि, कि में 'तना' जोड़कर इतना, उतना आदि सार्वनामिक विशेषण बनाते हैं। इन अक्षरों के वृद्धि रूप में 'सा' मिलाकर सार्वनामिक विशेषण बना सकते हैं (वैसा, ऐसा आदि)।

क्रिया :

केलाग के अनुसार क्रिया के कुल पन्द्रह काल-भेद हैं। तीन कालभेद धातु से और बाकी बारह प्रयोगों के योग से बनते हैं। क्रिया के सामान्य रूप में 'ना' जुड़ता है। ता और आ अपूर्ण कालिक एवं पूर्णकालिक प्रत्यय होते हैं। धातुएँ स्वरान्त और व्यंजनान्त दो होती है। ला, खा, दे आदि स्वरान्त और चल, पढ़, गिर आदि व्यंजनान्त होती। आकारान्त, ईकारान्त और ओकारान्त धातुओं में 'आ' जुड़ने के पूर्व 'य' का आगम होता है ला > लाया, पी > पिया, बो > बोया (ई, इ हो जाता है) 'आ' जोड़ने में सात धातुएँ विशेषरूप में परिवर्तित होती : हो > हुआ, मर > मुआ, कर > किया, दे > दिया, ले > लिया, जा > गया, और ठान > ठया। (मुआ और ठया अब नहीं चलता मरा और ठाना प्रयुक्त है)

केलाग ने पन्द्रह कालों का नाम अंग्रेजी में तथा हिन्दी में दिखाया है :

1. धातु से बने काल : संभाव्य भविष्य, सामान्य भविष्य और विधि।
2. अपूर्ण प्रत्यय से बने काल : सामान्य संकेतार्थ हेतु हेतुमद भूत, सामान्य वर्तमान, अपूर्ण-भूत, संभाव्य वर्तमान, संदिग्धवर्तमान और अपूर्ण संकेतार्थ।

3. पूर्णप्रत्ययों से बने काल : सामान्यभूत, आसन्नभूत, पूर्णभूत, संभाव्यभूत, संदिग्धभूत और पूर्ण संकेतार्थ।

यह व्यवस्था और नामकरण गंभीर दार्शनिक सिद्धान्तों पर अवलंबित है। क्रिया पर चाहे वह वास्तविक हो या संभावित, प्रगति की दृष्टि से तीन प्रकार से विचार हो किया जा सकता (1) अभी आरंभ नहीं हुआ है (2) आरंभ हुआ है पर पूर्ण नहीं हुआ है और (3) पूर्ण हो चुका है। कैलाग का व्याकरण प्रशंसनीय और गौरव पूर्ण है।

14. एडविन ग्रीव्ज :

ग्रीव्ज का जन्म 1854 को लंदन में हुआ। 1881 में वे भारत आए और मिर्जापुर में पादरी रहे। आपने ईसाई धर्म संबन्धी कई पुस्तकें लिखी। 1896 में आपने ग्रामर आफ मोडर्न हिन्दी नामक एक व्याकरण रचा जो हिन्दी सीखनेवालों के लिए उपयोगी है। 1919 में 'हिन्दी ग्रामर' लिखा। इस पुस्तक को लोकप्रियता मिली। इस पुस्तक में अंग्रेज़ी शब्दों के साथ हिन्दी व्याकरण में स्वीकृत पारिभाषिक शब्द भी दिए हैं। वर्णविचार - आर्थोग्राफी, वाक्य विचार, सिन्टैक्स आदि।

क्रिया - विवेचन : इस व्याकरण में ग्रीव्ज ने अन्य तत्वों के विवेचन - प्रतिपादन में कोई विशेषता या मौलिकता नहीं दिखाई पर क्रिया विवेचन करते समय अवश्य ही नई सूझ - बूझ दिखायी है। क्रिया का वर्गीकरण दो आधारों पर किया है : (1) अर्थ और प्रयोग (2) रूप।

अर्थ और प्रयोग के आधार पर सकर्मक, अकर्मक, शक्ति, निषेध शक्ति, भावप्रधान क्रिया, कर्मवाच्य क्रिया, प्रेरणार्थक और संयुक्त। अकर्मक क्रिया किसी अवस्था या कार्य का बोध देती है। इसके दो भेद है (1) कर्ता की चेष्टा लक्षित करनेवाली और (2) निश्चेष्ट अवस्था में रहनेवाली। वह उठता है - चेष्टा; उसका सिर फिरोता है - निश्चेष्ट। जब क्रिया कर्ता से होकर किसी वस्तु तक जाता है वहाँ सकर्मक है। निश्चेष्ट अवस्था के अकर्मक को न्यूटर का नाम दिया है।

" पेड़ हिलाया जाता है" हिलाना क्रिया किसके द्वारा हुई इसका पता नहीं। ऐसी क्रिया को वे पासिव मानते है। ' पेड़ हिल जाता है" पेड़ का हिलना अकारण नहीं हुआ।

पर इसके किसी कारण का संकेत नहीं किया है । ऐसी क्रिया को पासिव्फ्यूटर कहते हैं ।

ग्रिम ने अकर्मक, निश्चेष्ट शक्ति, कर्मवाच्य तथा कर्तृवाच्य रूपों का भी विचार किया है :

अकर्मक	निश्चेष्ट शक्ति	कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
उखड़ना	उखड़ जाना	उखाड़ना	उखाड़ा जाना
कटना	कट जाना	काटना	काटा जाना

अकर्मक में जाना जुड़ने से निश्चेष्ट शक्ति बनता है । कर्तृवाच्य में जा जुड़ने से कर्मवाच्य बनता है । हिन्दी व्याकरण में अकर्मक को सकर्मक बनाने की विधि : उखड़ना अकर्मक उखाड़ना सकर्मक । रूप की दृष्टि में भाववाच्य तथा कर्मवाच्य एक ही है, दोनों अवस्थाओं में पूर्वभूत का 'आ' आता है : चला जाना, खाया जाना आदि । भाववाच्य में कर्ता नहीं रहता, क्रिया अन्यपुरुष एकवचन में रहती है ।

विरामचिह्न और अनुच्छेद का प्रयोग :

हिन्दी में अपना विराम चिह्न दो ही है । और ।। इसलिए हिन्दी ने अंग्रेजी विराम चिह्नों को स्वीकार किया । प्रेमसागर में इन चिह्नों का प्रयोग सबसे पहले हुआ । इनके अलावा और भी कई यूरोपियों ने इस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा दिखायी । शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी की प्रतिष्ठा हो जाने पर अंग्रेजी अधिकारियों की आज्ञा से देशी विद्वानों ने इस क्षेत्र में योगदान दिया । पं. मंसाराम, श्री अम्बिकादत्त व्यास, श्री शीतल प्रसाद आदि इसके सूत्रधार है ।

निष्कर्ष :

हिन्दुस्तान में यूरोपियों को व्यापारिक तथा राष्ट्रीय कार्यों के लिए सामान्य जनता की भाषा जानना आवश्यक हुआ । ईसाई धर्म के प्रचार के लिए जनसाधारण की भाषा का ज्ञान अनिवार्य हो गया । इन दोनों लक्ष्यों को सफल बनाने के लिए पश्चिमी विद्वानों ने बड़े परिश्रम के साथ हिन्दी पर प्रकाश डाला । अधिक लाभ उठाने के लिए उन्होंने भारतीय भाषाएं सीखी और अपने देश के लोगों को पढ़ाई । पादरियों ने धार्मिक ग्रन्थों को भारतीय भाषाओं में अनूदित करके ईसाई धर्म का प्रचार शुरू किया । भारतीय भाषाओं के विकास में

इसमें परोक्ष रूप से बड़ी सहायता ही। विदेशियों ने बोलचाल की भाषा के आधार पर ही अधिक से अधिक व्याकरण लिखे। वे भारतीय भाषा न जानते और भारतीय पंडित विदेशी भाषा न समझ सके, इस तरह भाषा के आदान - प्रदान में काफी कठिनाई हो गयी होगी। फलतः कई त्रुटियाँ उनकी रचनाओं में आ गयी हैं। पर भाषा के क्षेत्र में उन लोगों ने जो प्रकाश डाला वह सर्वथा श्लाघनीय है।

जब हिन्दी ने शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिष्ठा पायी तब देशी पंडितों को व्याकरण लिखने की प्रेरणा एवं आवश्यकता पड़ी। उन्होंने विदेशी रचनाओं के आधार पर व्याकरण की रचना सरलता से की। छात्रोपयोगी रचनाओं में श्रीलाल का 'भाषा चन्द्रोदय' व्रजन पंडित की 'भाषा तत्वबोधिनी' इस क्षेत्र के प्रथम तथा प्रधान व्याकरण हैं। बाबू नवीन चन्द्र राय ने 1868 में नवीन चन्द्रोदय नामक व्याकरण की रचना की जो उक्त परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में स्वीकृत किया गया। राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने हिन्दी और उर्दू को निकट लाने के लिए बनारस में 'हिन्दी व्याकरण' का प्रकाश कराया। बाबू अयोध्या सिंह खत्री का 'हिन्दी-व्याकरण' भी इसी समय में लिखा हुआ है। हिन्दी - उर्दू को एक भाषा माननेवालों का व्याकरण अंग्रेजी पद्धति का अनुसरण करते थे। हिन्दी को स्वतंत्र भाषा माननेवाले संस्कृत व्याकरण पद्धति के अनुसार व्याकरण की रचना करने लगे। इस तरह हिन्दी व्याकरण निर्माण की दो परम्पराएँ बनीं। 1885 में बाबू रामचरण सिंह ने शुद्ध हिन्दी का 'भाषा-भास्कर' प्रकाशित किया। 1906 में बाबू श्यामसुन्दर दास ने हिन्दी और उर्दू का एक प्रारंभिक व्याकरण प्रकाशित किया। उसका नाम है 'एन एलिमेंटरी ग्रामर आफ हिन्दी एंड उर्दू'। कई अन्य पंडितों ने छात्रोपयोगी व्याकरणों की रचना अपने ढंग से की। केशवराम भट्ट का 'हिन्दी व्याकरण' विशेष लोकप्रिय हुआ।

इसी काल में सरस्वती के सम्पादक के पद पर महावीर प्रसाद का प्रवेश साहित्य क्षेत्र में हुआ और प्रामाणिक व्याकरण ग्रन्थों की रचना का संविधान हो गया जिसका विवरण इसके पूर्व दिखाया गया है। केटलर का व्याकरण 'हिन्दुस्तानी भाषा' संक्षिप्त है। किन्तु इसमें हिन्दी सीखनेवालों के लिए प्रायः सभी आवश्यक बातें होती हैं। क्रियाओं की रूपरेखा कालरचना - सारिणी सहित इसमें समाविष्ट है। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा

वाक्यरचना की तालिकाएं दी गयी है। वर्णों में ऋ लृ के स्थान में रि, लि दिये गये है। 'ने' प्रत्यय का कोई निशान नहीं देख पाते हैं। बेंजामिन ने अपने व्याकरण में अव्ययों का भी विशेषविवरण दिया है। कर्ता, सम्बन्ध, संप्रदान, कर्म, सम्बोधन और अपादान कारक भी दिखाए हैं। संबोधन, सर्वनामों में भी आदि यूरोपीय वैयाकरणों ने दिखाया है।

पादरी आदम का 'हिन्दी भाषा का व्याकरण' व्याकरणित दृष्टि से नियमित तथा स्पष्ट होता है। इसे आधुनिक व्याकरण की आधार - शिला माना जा सकता। यह हिन्दी में लिखा हुआ पहला व्याकरण है। यह प्रश्न और उत्तर के रूप में लिखा गया है। रेवरेन्ट विलियम एथरिंगटन का स्टूडेन्टस ग्रामर भी हिन्दी का एक अच्छा व्याकरण है। 'भाषा भास्कर' इसका अनूदित रूप है। सालों तक यह शिक्षा के क्षेत्र में प्रचलित रहा। व्याकरण के सभी नियमों को 12 पाठों में विभाजित करके वर्णित है। सन्धि, समास, कृदंत, तध्दित आदि सभी बातें इसके अन्तर्गत है। केलाग ने हिन्दी के अन्य जनपदी रूपों के ज्ञान की आवश्यकता और उपयोगिता का अनुभव किया। उन्होंने अपने व्याकरण में भिन्न बोलियों पर विवेकपूर्ण विवेचना करके उनका परस्पर बन्ध दिखाया। उन्होंने अपने ग्रन्थ में दिखाया है कि हिन्दी और उर्दू लगभग एक ही है। लिंग विषय में केलाग ने अपना मत स्पष्ट किया कि पर्वत शब्द पुल्लिंग होने से उनका नाम पुल्लिंग, नदी, मृत्तिका, मक्खिका आदि स्त्रीलिंग है क्यों कि ई या आ स्त्री प्रत्यय है। सर्वनामों के बारे में भी उन्होंने दिखाया कि उत्तम तथा मध्यम पुरुष के संबन्ध चिह्न 'र' है, इसके पूर्व मैं और तुम में कुछ विकार होता है। निजवाचक 'आप' 'म्रे' 'ना' 'आत्मन': का प्रभाव होता है। निश्चयवाचक, संबन्ध - वाचकवाचक एवं प्रश्नवाचक सर्वनामों के विकारों का सिध्दान्त भी केलाग ने ही सबसे पहले दिखाया है। य, व, ज, स, क को केलाग सार्वनामिक मूल मानते है। केलाग ने ही काल विवेचन का तीन रूप, यानी धातु से बने हुए, वर्तमानकालिक कृदंत से बने हुए तथा भूत-कालिक कृदंत से बने हुए कालों का सिध्दान्त निकाला। केलाग का व्याकरण पूर्ववर्ती व्याकरणों से प्रौढ, विध्दत्तापूर्ण एवं शास्त्रीय होता है।

एडविन ग्रीव्स का हिन्दी ग्रामर सुबोधता और स्पष्टता के कारण लोकप्रिय हो गया था। क्रिया के वर्गीकरण में ग्रीव्स ने नए सिध्दान्त दिखा दिये। यूरोपीय वैयाकरणों ने देशी वैयाकरणों को व्याकरण लिखने की प्रेरणा दी।

हिन्दी व्याकरण
- - - - - - -

पं. कामता प्रसाद गुरु का 'हिन्दी व्याकरण' एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। काशी-नागरी प्रचारिणी सभा के निर्देशानुसार उन्होंने यह महान कार्य किया। 1920 में इसका प्रकाशन हुआ पर इसकी पूर्णता पर शंका करके एक परिवर्तित तथा परिवर्धित संस्करण तैयार किया जो 1950 में पुन: प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी का आधिकारिक व्याकरण हुआ। इस ग्रन्थ के तीन भाग होते है। प्रत्येक कई अनुच्छेदों में विभाजित किया गया है।

पीठिका में आर्यभाषा संस्कृत से प्राकृतों का आविर्भाव फिर उनसे हिन्दी की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला गया है। हिन्दी और उर्दू का संबन्ध बताते हुए हिन्दी के तत्सम, तद्भव देशज और विदेशी शब्दों का प्रभाव दिखाया है। पहले भाग में वर्णविचार है। इसमें वर्णमाला, लिपि, वर्णों का वर्गीकरण स्वराघात एवं सन्धि का विवरण है। दूसरे भाग में शब्द विचार है। शब्दों को अंग्रेजी व्याकरण - पध्दति के अनुसार आठ रूप दिया है। लिंग, वचन, कारक, क्रिया, अव्यय, उपसर्ग, और समास का विवरण भी इस विभाग में दिया है। तीसरे भाग में वाक्य विचार है। परिशिष्ट में काव्य भाषा पर विचार है।

उनके अनुसार हिन्दी के विकास को तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है। आदिकाल- ई.1500 तक, इस काल में प्राकृत तथा अपभ्रंश का [illegible]। मध्यकाल-1500से 1800 तक, इस काल में अपभ्रंश का रूप नष्ट हो गया और खड़ीबोली, ब्रज और अवधि अपने पैरों पर स्वतन्त्रता पूर्वक खड़ी हो गयी। 1800 ई.से आधुनिक काल शुरु हुआ। राजनैतिक परिवर्तन, भाषा परिवर्तन का कारण होता, ब्रिटीश शासन काल में हिन्दी का विकास हुआ। हिन्दी और उर्दू मूल में एक ही है।

वर्णविचार : गुरु ने ग्यारह स्वरों को स्वीकार किया है : ह्रस्व ऋ को स्वीकार किया अं और अ: को छोड दिया। अनुनासिकों के साथ अनुस्वार को और 'ह' के साथ विसर्ग को मिलाया है। उच्चारण और वर्गीकरण में संस्कृत पध्दति को स्वीकार किया है। स्वरों को मूलस्वर, दीर्घस्वर एवं सन्धिस्वर दिखाये है। व्यजनों के अभ्यन्तर तथा बाह्यन्तर प्रयत्न, अल्पप्राण महाप्राण आदि भेद दिखाये है। विसर्ग और ह के उच्चारण में रंचभेद है।

अनुस्वार और अनुनासिक चिह्नों तथा उच्चारण में भेद है । तुम्हारा, उन्हें आदि शब्दों में 'ह' उच्चरित नहीं होता । दो महाप्राणों का उच्चारण एक साथ नहीं होता, ऐसी अवस्था में पूर्ववर्ण अल्पप्राण होता है । यथा, अच्छा [redacted] । उर्दू के प्रभाव से ज और फ के दो उच्चारण होते । ज़ दन्ततालव्य और फ़ दन्त्योष्ट होते, नीचे की बिंदी इस भेद को दिखाती है । ज्ञ का उच्चारण 'ग्यां' जैसे होता है । उच्चारण में अक्षरों पर जो ज़ोर लगाता उसे स्वराघात कहते हैं । इसका कोई चिह्न नहीं । अपूर्ण अकार के पूर्व, संयुक्त वर्ण के पूर्ववर्ती अक्षर, विसर्गयुक्त अक्षर तथा यौगिक शब्दों के मूलखण्ड पर स्वराघात होता है । ह, ज, य के पूर्ववर्ती स्वर का कुछ दीर्घोच्चारण होता है ।

सन्धि : स्वरसन्धि, व्यंजन सन्धि और विसर्गसन्धि । स्वर + स्वर = स्वरसन्धि, व्यंजन + स्वर या व्यंजन = व्यंजन सन्धि और विसर्ग + स्वर या व्यंजन = विसर्गसन्धि । पाणिनीय सूत्रों के आधार पर उदाहरण दिये गये हैं । संस्कृत में शब्दों को प्रातिपदिक, धातु और अव्यय तीन भी एप दिये हैं । पर गुरुजी ने अंग्रेज़ी पद्धति के अनुसार आठ विभाग दिये हैं । विकारी शब्द : संज्ञा : वस्तु के नाम को संज्ञा कहते हैं । इसके दो भेद होते हैं : पदार्थ वाचक और भाववाचक । पदार्थ वाचक के दो भेद हैं व्यक्तिवाचक एवं जातिवाचक । व्यक्तिवाचक संज्ञाएं बहुधा अर्थहीन होती, पर कुछ अर्थवान भी होती, ईश्वर, ब्रह्मांड प्रकृति आदि । पदार्थ में पाए जानेवाले धर्म दिखानेवाली भाववाचक संज्ञा होती है । लंबाई, चतुराई, बुढ़ापा आदि । जिस प्रकार जातिवाचक संज्ञाएं अर्थवान होती है उसी प्रकार भाववाचक संज्ञाएं भी अर्थवान होती है । जब व्यक्तिवाचक संज्ञा का प्रयोग एक ही नाम के अनेक व्यक्तियों का बोध कराती तब जातिवाचक संज्ञा हो जाती है : कलियुग के भीम, यशोदा हमारे घर की लक्ष्मी है । कुछ जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के समान होता : पुरी > जगन्नाथपुरी, देवी > दुर्गा । कुछ भाववाचक का प्रयोग जातिवाचक के समान होता है : उसके आगे सब रूपवती स्त्रियां निरादर है - निरादर का अर्थ है निरादर योग्य स्त्री । सर्वनाम का प्रयोग संज्ञा के स्थान में होता है 'मै' (सारथी) रास चलाता हूं । विशेषण कभी कभी संज्ञा के स्थान में आता 'जिसका भीतर-बाहर एक सा हो' । विस्मयादि बोधक शब्द भी कभी कभी संज्ञा के समान प्रयुक्त होता 'वहां' हायहाय मची है । कोई भी शब्द या अक्षर केवल उसी शब्द या अक्षर के अर्थ में संज्ञा के समान उपयोग में आ सकता ।

तुम्हारे लेख में कई बार 'फिर' आया है, 'का' में 'आ' की मात्रा मिली है।

सर्वनाम :

सर्वनाम उस विकारी शब्द को कहते है जो पूर्वापर संबन्ध से किसी संज्ञा के बदले आते है। कई वैयाकरणों ने सर्वनाम को संज्ञा का एक भेद माना है। संज्ञा तो एक वस्तु का बोध दिलाती पर सर्वनाम से ऐसी बात नहीं है, परस्पर संबन्ध से वस्तु भेद होता है। इसलिए अलग भेद माना गया है। हिन्दी में ग्यारह सर्वनाम होते है : मैं, तू, आप, वह, यह, सो, जो, कोई, कुछ, कौन और क्या। प्रयोग के अनुसार सर्वनाम के छे भेद है :

1. पुरुषवाचक सर्वनाम : मैं, तू, आप।
2. निजवाचक आप।
3. निश्चय वाचक यह, वह, सो।
4. संबन्ध वाचक सो।
5. प्रश्न वाचक कौन, क्या।
6. अनिश्चय वाचक कोई, कुछ।

सर्वनामों के तीनों पुरुषों के उदाहरण ये है : उत्तम पुरुष - मैं, मध्यमपुरुष : तू, अन्यपुरुष : वह, यह, आप, सो, जो, कौन, क्या, कोई, कुछ। आदरसूचक 'आप' मध्यमपुरुष और अन्यपुरुष में आता है। 'हम' (उत्तम-पुरुष-बहुवचन) बहुवचन से अलग एकवचन में भी प्रयुक्त होते है। तू के स्थान पर 'तुम' प्रयुक्त होते। बहुवचन दिखानेकेलिए हम एवं तुम के साथ 'लोग' शब्द मिलाते है। आदर के लिए 'तुम' के स्थान पर आप आता है। अन्य पुरुष बहुवचन 'वे' है। कोई का प्रयोग दोनों वचनों में आता, कुछ एकवचन में ही, जो दोनों वचनों में, कौन का प्रयोग प्राणियों के लिए- विशेष कर- मनुष्यों के लिए और क्या क्षुद्र-प्राणियों के लिए होता है। कई वैयाकरणों ने सो, कोई, क्या और कुछ सर्वनाम न माने है।

सर्वनामों की व्युत्पत्ति :

सर्वनाम	रूप	परिमाणवाचक	गुणवाचक विशेषण
यह	इस	इतना	ऐसा
वह	उस	उतना	वैसा
सो	तिस	तितना	तैसा
जो	जिस	जितना	जैसा
कौन	किस	कितना	कैसा

हिन्दी के सर्वनाम प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकले है, जैसे

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
अहम्	अम्ह	मै, हम
त्वम्	तुम्ह	तू, तुम
एषः	एव	यह, ये
सः	सो	सो, वह, वे
यः	जो	जो
कः	को	कौन
किम्	किं	क्या
कोऽपि	कोवि	कोई
आत्मन्	अप्प	आप
किंचित्	किंचि	कुछ

विशेषण :

जिस विकारी शब्द से संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित होती है उसे विशेषण कहते हैं। विशेषण भी सर्वनाम जैसे संज्ञा का भेद है। संज्ञा के बिना इसका उपयोग नहीं होता। किसी व्यक्तिमात्र या वस्तुमात्र की विशेषता बतानेवाला शब्द समानाधिकरण विशेषण है। विशेष्य - विशेषण विशेष्य के पूर्व प्रयुक्त होते और विधेय - विशेषण विशेष्य के पश्चात् क्रिया के पूर्व आते हैं। दोनों समानाधिकरण होते हैं। विशेषण के मुख्य तीन भेद हैं : सार्वनामिक विशेषण, गुणवाचक विशेषण और संख्या - वाचक विशेषण।

सार्वनामिक विशेषण : पुरुषवाचक और निजवाचक सर्वनाम को छोड़कर सर्वनामों का प्रयोग विशेषण के समान में होता है। जब ये शब्द अकेले आते है तब सर्वनाम और संज्ञा के साथ आने पर विशेषण होते हैं। सार्वनामिक - विशेषण व्युत्पत्ति के अनुसार दो तरह के होते हैं : वह घर, कुछ काम। यौगिक सर्वनाम जो मूल सर्वनाम से प्रत्यय लगाने से बनते हैं : ऐसा - आदमी, 'जैसा देश वैसा भेष'। कौन और कोई, प्राणी या पदार्थ के नाम के साथ आते हैं। क्या आश्चर्य में प्रयुक्त होता है। प्रश्न में 'क्या' बहुधा भाववाचक संज्ञाओं के साथ आता :

क्या काम ? 'कुछ' संख्या, परिमाण और अनिश्चय का बोधक है ।
सार्वनामिक विशेषणों के दो भेद हैं : मूल एवं यौगिक । आप, क्या और कुछ को छोड़कर मूल सार्वनामिक विशेषणों के पश्चात् विभक्त्यंत या संबन्धसूचकांत संज्ञा के आने पर उनके दोनों वचनों में विकृत रूप आता है : मुझ दीन को, किस देश में । 'कोई' शब्द के विकृत रूप की द्विनरुक्ति से बहुवचन का बोध आता है । पर उसके साथ बहुधा एकवचन- संज्ञा आती है : किसी किसी तपस्वी ने ।
यौगिक - सार्वनामिक - विशेषण आकारान्त होते हैं : ऐसा, वैसा, इतना, उतना आदि । ये विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार आते हैं । ऐसा मनुष्य, ऐसी लड़की । कौन, जो और कोई जब 'सा' प्रत्यय के साथ प्रयोग में आते तब ऐसा विकार होता है । कौन-सी लड़की, कौन से लड़के । गुणवाचक विशेषणों में केवल आकारान्त विशेषण ही विशेष्यनिष्ठ होते हैं । पुल्लिंग विशेष्य बहुवचन में विभक्त्यन्त या संबन्धसूचकान्त होतो विशेषण का अन्त्य 'आ' 'ए' बन जाता है । स्त्रीलिंग विशेष्य के साथ विशेषण के अन्त्य 'आ' के स्थान में 'ई' होती है । संख्यावाचक विशेषणों में क्रमवाचक, आवृत्तिवाचक और आकारान्त परिमाण वाचक विशेषणों का रूपान्तर नहीं होता । पर सवाया और पौना सवाए और पौने का रूप लेते हैं । (यह विशेषण के पूर्व आना) सर्वनाम : संज्ञाओं के समान सर्वनामों में वचन और कारक है, परन्तु लिंग के कारण इसका रूप नहीं बदलता । विभक्ति के योग से अधिकांश सर्वनाम दोनों वचनों में विकृत रूप में आते हैं । पर कोई और निजवाचक आप की कारक रचना केवल एकवचन में होती है । क्या और कुछ का कोई रूपान्तर नहीं होता, उनका प्रयोग केवल विभक्ति रहित कर्ता या कर्म में होता है । पुरुषवाचक सर्वनामों में संबन्ध कारक की 'का, के, की विभक्तियों के बदले रा, रे, री आती है और निजवाचक सर्वनाम में ना, ने, नी लगाई जाती है सर्वनामों में संबोधन कारक नहीं होता । कभी-कभी 'अपना' और 'आप' संबन्ध कारक को छोड़ शेष कारकों में मिलाकर आते हैं : अपने आप । आप शब्द का एक रूप 'आपस' है जो संबन्ध और अधिकरण के एकवचन में आता है : लड़के आपस में लड़ते हैं । निज लोगों के अर्थ में अपना प्रयुक्त होता है । प्रत्येकता के अर्थ में 'अपना' शब्द की द्विनरुक्ति होती है । अपने के अर्थ में निज का प्रयोग भी होता है ।

निश्चयवाचक सर्वनामों के दोनों वचनों की कारक रचना में विकृत रूप आता है यह, वह, सो इस, उस, तिस एकवचन में और इन, उन, तिन बहुवचन में होते है । यौगिक - सार्वनामि विशेषणों के साथ जब विशेष्य नहीं रहता तब उनका प्रयोग संज्ञाओं के समान होता है : 'जैसा करोगे वैसा पाओगे' । ऐसा और इतना का प्रयोग कभी - कभी यहाँ के समान होता है । ' 'वैसा' तिरस्कार के अर्थ में और जैसा - वैसा समान के अर्थ में भी आते है । 'कितने ही ' प्रयोग 'कई' अर्थ में होता है । 'निज' और 'पराया' भी सार्वनामिक विशेषण है । यौगिक सर्वनाम - विशेषण कभी - कभी क्रियाविशेषण होते है : इतने में ऐसा हुआ ।

गुणवाचक विशेषण : इसकी संख्या बहुत अधिक होती है । काल, स्थान, आकार, रंग, दशा , नाम या नामक, सदृश, समान, योग्य आदि अर्थों में बहुत से गुणवाचक विशेषण ~~विशेषण~~ होते गुणवाचक विशेषण के बदले बहुधा संज्ञा का संबन्ध कारक आता है : जंगली जानवर, बनारसी स जब गुणवाचक विशेषणों का विशेष्य लुप्त होता है तब उनका प्रयोग संज्ञाओं के समान होता है : दीनों को मत सताओ ।

संख्यावाचक विशेषण : यह निश्चित संख्यावाचक, अनिश्चित संख्यावाचक और परिमाण बोधक तीन के होते है । निश्चित संख्यावाचक पाँच प्रकार के होते है : गणना वाचक, क्रमवाचक, आवृत्ति समुदायवाचक और प्रत्येकवाचक । गणनावाचक विशेषण दो तरह के होते है : पूर्णांकबोधक : एक, दो, पचास , अपूर्णांकबोधक : पाव, आधा, पौना । पूर्णांकबोधक शब्दों में या अंकों में दिखाया जाता है । बड़ी - बड़ी संख्याएँ शब्दों में लिखी जाती है ।

एक से सौ तक संख्याएँ शब्दों तथा अंकों में दिखायी गयी है । 'दहाई' की संख्याओं में एक से लेकर आठ तक अंकों का उच्चारण दहाइयों के पूर्व होता है : चौ - दह, चौ - बीस, पैं-तीस उ दहाई की संख्या सूचित करने में इकाई और दहाई के अंकों का उच्चारण कुछ बदल जाता है ।

एक > इक	दस > रह
दो > बा, ब	बीस > ईस
तीन > ते, तिर, ति	तीस > तीस
चार > चौ, चौ	चालीस > तालीस
पाँच > पै, पंद, पच, पंच	पचास > बन, पन
छः > सो, छ	साठ > सठ
सात > सत, सैं, सड	सत्तर > हत्तर

आठ > अठ, अड   अस्सी > आसी
                                        नब्बे > नव

बीस से लेकर अस्सी तक प्रत्येक दशाई के नाम के पहले की संख्या सूचित करने केलिए उस दशाई के नाम के पहले 'उन' शब्द का प्रयोग करते । नवासी और निन्यानवे में क्रमशः नव और 'निन्ना' जोडते है । संस्कृत में नवा नवाशीति तथा नवनवति होते है । नवि की संख्याओं केलिए अलग अलग नाम है ।

1000 > हज़ार, 100 हज़ार > लाख, 100 लाख > करोड, 100 करोड > अर्ब, 100अर्ब > खर्ब । खर्ब से उत्तरोत्तर सौ - सौ-गुनी संख्याओं केलिए क्रमशः नील, पद्म, शंख, आदि शब्दों का प्रयोग होते है । पाव, आधा, पौन, सवा, डेढ, ढाई, पौने दो, साढे तीन, अपूर्णांक बोधक विशेषण है । पौने और साढे शब्द कभी अकेले नहीं आते है । सवा अकेला । $\frac{1}{4}$ केलि आता है । दो पूर्णांक विशेषण साथ साथ मिलकर अनिश्चयता दिखाते : दो - चार, दस - बीस क्रमवाचक विशेषण पूर्णांक विशेषण से बनते है : एक > पहला, दो > दूसरा, तीन > तीसरा, चार > चौथा ·, पाँच से वाँ लगाते है : पाँच > पाँचवाँ बीसवाँ आदि । 'सौ' से अधिक संख्या में पिछले शब्द के अन्त में 'वाँ' लगाते है : दो सौ आठवाँ । कभी कभी संस्कृत - शब्द प्रथम, द्वितीय आदि का भी प्रयोग होता है । द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ को दूज, तीज, चौथ का प्रयोग होता है । द्वितीय पूर्णांक > बोधक विशेषण के साथ 'गुना' लगाकर आवृत्तिवाचक विशेषण बनाते है : दो > दुगुना, तीन > तिगुना । पहाडों में आवृत्तिवाचक और अपूर्णांक विशेषणों में रूप भेद होता : दूने, तिया, चौक, पंचे, छक, सत्ते, अट्ठे, नवाँ, दहाम । पूर्णांक बोधक विशेषणों के आगे 'ओं' जोडने से समुदायवाचक विशेषण बनते है : चारों, दसों । समुदाय के अर्थ में कुछ संज्ञाएं भी आती है : दो > जोडा, जोडी, दस > दहाई, सौ > सैकड़ । प्रत्येक बोधक में 'हर' या 'फी' आता, ये दोनों उर्दू शब्द है ।

गणना - वाचक विशेषण की द्विनरुक्ति से यही अर्थ निकलता है : एक - एक, आधा आधा । अनिश्चय संख्या वाचक विशेषण : एक - दूसरा, अन्य, सब आदि पूर्णांक - विशेषण होने पर भी इनका प्रयोग अनिश्चित बोधक केलिए होता है । दूसरा, प्राणी या पदार्थ से भिन्न के अर्थ में, 'और' अधिकसंख्या के अर्थ में प्रयुक्त होते । बहुत, थोडा, अनेक, कम, ज्यादा आदि भी अनिश्चय - संख्यावाचक - विशेषण है ।

रिमाण बोधक विशेषण : किसी वस्तु की नाप या तौल बत विशेषण दिखाता है । निश्चय रिमाण बताने केलिए संख्या वाचक विशेषण के साथ परिमाण बोधक संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता ारगज कपड़ा, दो सेरघी । परिमाण वाचक संज्ञाओं में 'ओं' जोड़कर अनिश्चयपरिमाणवाचक शेषण बनाते है : मनों घी, गाड़ियों फल । 'एक' के साथ 'भर' एवं 'बहुत', 'थोड़ा' ादि से 'सा' जोड़कर परिमाण सूचित करते है । संख्यावाचक विशेषणों की व्युत्पत्ति दिखायी है स्कृत प्राकृत हिन्दी के रूप दिए है ।

्रिया : जिस विकारी शब्द से किसी वस्तु के विषय में कुछ विधान करते है उसे क्रिया कहते है । ्रशब्द को धातु कहते, उसके साथ 'ना' जोड़कर क्रिया का साधारण रूप बनाते है । इसे ्रियार्थक या भाववाचक संज्ञा के रूप में प्रयोग करते है । जहाँ कर्ता अकेले आशय-पूर्ति नहीं कर कता वहाँ कोई संज्ञा या विशेषण प्रयुक्त होता है : लड़का चतुर है, साधु चोर निकला । ई सकर्मक धातुओं के साथ दो-दो कर्म रहते, एक प्रधान कर्म दूसरा गौण कर्म । 'गुरु ने िष्य को पोथी दी', पोथी प्रधान एवं शिष्य को गौण । सकर्मक क्रियाओं से पूर्ति केलिए जो ंज्ञा या विशेषण जोड़ते उसे कर्मपूर्ति कहते है ।

ौगिक धातु : व्युत्पत्ति के अनुसार धातुओं के दो रूप होते है : मूलधातु और यौगिक धातु । ूलधातु वे है जो दूसरे शब्द से न बने हो : करना, बैठना, चलना आदि । दूसरे शब्द से नीधातु यौगिक होती : चलाना, चिकनाना आदि । ये तीन प्रकार से बनते है (1) धातु से त्यय (2) शब्दों में प्रत्यय जोड़कर नामधातु बनाकर और (3) दो धातु जोड़कर संयुक्तधातु नती है ।

रणार्थ क्रिया : क्रिया के व्यापार में कर्ता पर किसी की प्रेरणा समझी जाती तो उसे प्रेरणार्थक हते है : बाप लड़के से चिट्ठी लिखवाता है । सब प्रेरणार्थ क्रियाएँ सकर्मक होती है । रणार्थक में पहला प्रेरणार्थक एवं दूसरा प्रेरणार्थक होते : उठना उठाना उठवाना । कुछ ातुओं के अन्त में 'लाना' 'लवाना' लगाते है : खाना खिलाना खिलवाना ।

ामधातु : धातु को छोड़कर दूसरे शब्दों में प्रत्यय जोड़ने से नामधातु बनते है : स्वीकार ्वीकारना, गुज़र गुज़रना । कृदंतों की सहायता से संयुक्त धातु बनायी जाती है ।

दूसरा खंड - अव्यय

क्रिया विशेषण : जिस अव्यय से क्रिया की कोई विशेषता जानी जाती उसे क्रिया विशेषण कहते हैं। विशेषता, स्थान, काल, रीति और परिमाण से होती है। विशेषण और क्रिया-विशेषण की विशेषता बतानेवाले शब्द भी क्रिया विशेषण होते हैं। ये अधिकतः परिमाणवाचक होते हैं। क्रिया विशेषण प्रयोग, रूप और अर्थ के अनुसार तीन वर्ग होते हैं। प्रयोग के अनुसार साधारण, संयोजक और अनुबद्ध होते। वाक्य में स्वतन्त्र रूप से रहनेवाला साधारण, उपवाक्य के साथ ~~प्रयुक्त होनेवाला~~ रहनेवाला संयोजक, अवधारण हेतु किसी भी शब्द भेद के साथ प्रयुक्त होनेवाला अनुबद्ध होते है। रूप के अनुसार मूल, यौगिक तथा स्थानीय तीन प्रकार के होते हैं। मूल रूप के क्रियाविशेषण मूल, दूसरे शब्दों में प्रत्यय लगाकर बननेवाले यौगिक और बिना किसी रूपान्तर के दूसरे शब्द क्रिया विशेषण के समान प्रयुक्त होनेवाले स्थानीय होते हैं। अर्थ के अनुसार स्थानवाचक, कालवाचक, परिमाण वाचक और रीतिवाचक चार प्रकार के होते हैं। स्थानवाचक, स्थितिवाचक और दिशा-वाचक दो प्रकार के होते हैं। परिमाणवाचक अनिश्चित संख्या का बोध कराता है। रीतिवाचक क्रियाविशेषणों की संख्या गुणवाचक विशेषणों जैसे अनेक हैं। संस्कृत, हिन्दी और उर्दू के कई क्रिया-विशेषण सोदाहरण दिखाये हैं। अव्ययीभाव समास और मिश्रित अव्ययीभाव समास क्रियाविशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं। विशेष अर्थों और प्रयोगों में क्रियाविशेषणों का प्रयोग होता है।

संबन्ध सूचक : जो अव्यय संज्ञा के बहुधा पीछे आकर उसका संबन्ध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ मिलाता है उसे संबन्ध वाचक कहते हैं। प्रयोग के अनुसार संबन्ध सूचक दो प्रकार के होते हैं। संबद्ध और अनुबद्ध। विभक्तियों के पीछे आनेवाले संबद्ध और संज्ञा के विकृत-रूप के साथ आनेवाले अनुबद्ध होते हैं: धन के बिना, साथियों सहित क्रमशः दोनों का उदाहरण है। संबन्ध बोधक काल, स्थान, दिशा, हेतु आदि को दिखानेवाले होते हैं। व्युत्पत्ति के अनुसार यह मूल और यौगिक होते: बिना, पर्यंत, नाई, पूर्वक आदि मूल हैं। संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण और क्रिया से बनाए संबन्धसूचक यौगिक होते है: पलटे, अपेक्षा, समान, उठा आदि यौगिक होते हैं।

समुच्चयबोधक : समुच्चय बोधक भिन्न भिन्न व्याकरणों में भिन्न प्रकार के पाये जाते हैं। यह एक वाक्य का संबन्ध दूसरे वाक्य से मिलाता है, वाक्य के शब्दों को भी जोडते हैं। ये समानाधिकरण

एवं व्यधिकरण दो तरह के होते हैं। मुख्यवाक्यों को जोड़नेवाले समानाधिकरण और मिश्रवाक्य के उपवाक्यों को जोड़नेवाले व्यधिकरण कहते हैं। कई वैयाकरणों ने समुच्चयबोधक के संयोजक एवं विभाजक दो भेद दिखाये हैं।

विस्मयादिबोधक : हर्ष, शोक आदि भाव सूचित करनेवाले अव्यय विस्मयादिबोधक होते हैं। व्याकरण में इन शब्दों का विशेष महत्व नहीं। वाक्य के विधान में इसका कोई स्थान नहीं है, अर्थ का भाव ही दिखाते हैं। हर्ष, आश्चर्य, अनुमोदन, तिरस्कार आदि के रूप में इसका प्रयोग होता है

दूसरा भाग - शब्दसाधन

- - - - - - - - - - - - - -

लिंग : सृष्टि की संपूर्ण वस्तुओं की दो जातियाँ होती हैं - चेतन और जड़। जीवधारियों में पुरुष और स्त्री जाति का भेद होता है। जड़ पदार्थों में यह भेद नहीं होता, इसलिए संपूर्ण वस्तुओं की एकत्र करके तीन जातियाँ होती हैं : पुरुष, स्त्री और जड़। व्याकरण में उनके वाचक शब्दों को तीन लिंगों में बाँट दिये गये हैं : पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग। अन्य भाषाओं में तीन लिंग होते हैं परन्तु हिन्दी में नपुंसकलिंग नहीं है। जड़ पदार्थों में पुरुषत्व या स्त्रीत्व की कल्पना करते हैं। लड़का, बैल आदि पुरुषत्व सूचित करते हैं, पेड़, नगर आदि में पुरुषत्व कल्पित है। जिन पदार्थों में कठोरता, बल, श्रेष्ठता आदि गुण देखते हैं उनमें पुरुषत्व की कल्पना करते हैं और जिन में नम्रता, कोमलता, सुन्दरता आदि गुण दिखायी देते हैं उनमें स्त्रीत्व की कल्पना करते हैं। हिन्दी में लिंग - निर्णय करना कठिन है। इसलिए व्यापक और पूरे नियम बना नहीं सकते। कई नियम दिए गए जिनके अपवाद भी होते हैं। लेखक ने नियमों को दिखाकर बहुत से उदाहरण दिये हैं। हिन्दी, उर्दू, संस्कृत आदि भाषाओं के पुं - स्त्री रूप अलग अलग दिखाये हैं।

वचन : विकारी शब्द के जिस रूप में संख्या का बोध होता उसे वचन कहते हैं। हिन्दी में एकवचन, बहुवचन दो ही वचन होते हैं। आदर केलिये भी बहुवचन आता है। हिन्दी के बहुत से शब्दों में संस्कृत जैसे बहुवचन प्रत्यय विभक्तियों के साथ लगाए जाते : रंगों में, टोपियों को आदि। विभक्ति रहित बहुवचन बनाने के नियम: आकारान्त पुल्लिंग शब्दों के अन्त्य 'आ' को 'ए' बनाकर : लड़का > लड़के। संस्कृत की ऋकारान्त एवं नकारान्त संज्ञाएँ हिन्दी में आकारान्त हो जाती : पितृ > पिता, राजन् > राजा। इन का 'आ' 'ए' नहीं बनती। आकारान्त

को छोड़कर बाकी सभी पुल्लिंग शब्द दोनों वचनों में एकरूप रहते हैं । हिन्दी में अकारान्त संज्ञा नहीं । अकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अन्त्य अकार एँ करके बहुवचन रूप बनाते हैं : बहन > बहनें इकारान्त एवं ईकारान्त संज्ञाओं में 'ई' को ह्रस्व करके अन्त्य स्वर के पश्चात् 'याँ' जोड़ते हैं : टोपी > टोपियाँ, रीति > रीतियाँ । याकारान्त संज्ञाओं के अन्त में केवल अनुस्वार लगाया जाता है : चिड़िया > चिड़ियाँ । शेष स्त्रीलिंग शब्दों में अन्त्यस्वर के परे 'एँ' लगाते हैं : लता > लता उर्दू शब्दों में बहुधा हिन्दी प्रत्यय लगाकर बहुवचन रूप बनाते हैं : शाहजादा > शाहजादे, कौम > कौमें । फ़ारसी प्राणिवाचक संज्ञाओं का बहुवचन 'आन' लगाकर बनाते हैं : साहब > साहबान । अप्राणिवाचक में 'हा' लगाते हैं : बार > बारहा । अरबी के नियमित बहुवचन का प्रत्यय 'आत' होता : अख्तियार > अख्तियारात । अनियमित बहुवचन बनाने के लिए शब्द के आदि, मध्य, अन्त में रूपान्तर होता है : हुक्म > अहकाम, खबर > अखबार । लोग, गण, जन, वर्ग आदि बहुवचन को संकेतित करते हैं ।

कारक : संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसका संबन्ध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ प्रकाशित होता है उस रूप को कारक कहते हैं । कारक सूचित करने के लिए संज्ञा या सर्वनाम के परे जो प्रत्यय लगाये जाते हैं उन्हें विभक्तियाँ कहते हैं । विभक्ति के योग से बने हुए रूप विभक्त्यन्त शब्द या पद कहलाते हैं । संस्कृत में सात विभक्तियाँ और छः कारक होते हैं । षष्ठी विभक्ति को संस्कृत वैयाकरण कारक नहीं मानते क्यों कि उसका संबन्ध क्रिया से नहीं । हिन्दी में विभक्ति और कारक का सूक्ष्मान्तर जानने में बड़ी कठिनाई है । इससे हिन्दी व्याकरण की क्लिष्टता बढ़ती है और जब तक उसका समाधान न हो तब तक केवल वाद-विवाद के लिए उन्हें व्याकरण में रखने से कोई लाभ नहीं है । इसलिए कारक और विभक्ति शब्दों का प्रयोग हिन्दी व्याकरण के अनुकूल अर्थ में किया गया है ।

	कारक	विभक्तिप्रत्यय		कारक	विभक्तिप्रत्यय
(1)	कर्ता	ने	(2)	कर्म	को
(3)	करण	से	(4)	संप्रदान	को
(5)	अपादान	से	(6)	संबन्ध	का, के, की
(7)	अधिकरण	में, पर	(8)	संबोधन	हे, ओ, अजी ।

लेखक ने विभक्ति और कारक के संबन्ध में संक्षिप्त विवरण दिया है । संज्ञा तथा सर्वनाम के साथ विभक्ति प्रत्यय मिलाकर उदाहरण भी दिये हैं । विशेषण : हिन्दी में आकारान्त विशेषणों को

छोड़ दूसरे विशेषणों में कोई विकार नहीं होता । विशेषणों का प्रयोग संज्ञाओं के समान होता है यानी विशेषणों में परोक्ष रूप से लिंग, वचन एवं कारक होते हैं । विशेषणों के तीन मुख्य-भेद किये गये हैं : सार्वनामिक विशेषण, गुणवाचक विशेषण और संख्यावाचक विशेषण । इनके विभक्तिसहित बहुवचन कर्ता के अन्त्य 'न' में विकल्प से 'हो' जोड़ा जाता है । और कर्म तथा संप्रदान कारकों के बहुवचन 'ए' के बदले 'न' में 'हा' मिलाया जाता है । सर्वनामों की रूप - रचना दिखायी गई है । अनिश्चय वाचक कुछ व क्या विभक्ति रहित कर्ता और कर्म के एकवचन में आता है । कुछ के साथ संबन्ध कारक की विभक्ति आती है : 'कुछ का कुछ' ।

क्रिया : क्रिया में वाच्य, काल, अर्थ, पुरुष, लिंग और वचन के कारण विकार होता है । जिस क्रिया में विकार पाए जाते है एवं जिसके द्वारा विधान किया जा सकता है उसे समापिका क्रिया कहते है : 'लड़का पढ़ता है' । वाच्य का उद्देश्य क्रिया का कर्ता हो जाने पर कर्तृवाच्य होता है । क्रिया के उस रूप को कर्मवाच्य कहते है जिससे जाना जाता है कि वाच्य का उद्देश क्रिया का कर्म है : 'कपड़ा सिया जाता है' । क्रिया के जिस रूप से यह जाना जाता है कि वाक्य का उद्देश्य क्रिया का कर्ता या कर्म नहीं है उस रूप को भाववाच्य कहते हैं : 'धूप में चला नहीं जाता' ।

काल : क्रिया के उस रूपान्तर को काल कहते हैं जिससे क्रिया के व्यापार का समय तथा उसकी पूर्ण वा अपूर्ण अवस्था का बोध होता है : 'मैं जाता हूं' (वर्तमान) 'मैं जाता था' (अपूर्णभूत) 'मैं जाऊंगा' (भविष्य) । काल अनादि और अनन्त है । तथापि वक्ता या लेखक की दृष्टि से तीन काल कल्पित है : वर्तमान, भूत तथा भविष्यत् ।

काल	सामान्य	अपूर्ण	पूर्ण
वर्तमान	वह चलता है	वह चल रहा है	वह चला है
भूत	वह चला	वह चल रहा था / वह चलता था	वह चला था
भविष्यत्	वह चलेगा	---	---

सामान्य वर्तमान काल से जाना जाता है कि व्यापार का आरंभ बोलने के समय हुआ है, अपूर्णवर्तमान काल से जाना जाता है कि व्यापार हो रहा है और पूर्णवर्तमान काल से जाना है कि व्यापार

वर्तमान काल में पूर्ण हुआ है । क्रिया के रूपों से निश्चय, संदेह, संभावना, आज्ञा, संकेत आदि का भी बोध होता है । इनके आधार पर कालों के भेद ये है : (1) सामान्य वर्तमान (2) पूर्णवर्तमान (3) सामान्य भूत (4) अपूर्ण भूत (5) पूर्ण भूत (6) सामान्य भविष्यत् (7) संभाव्य भविष्यत् (8) संभाव्य भूत (9) सामान्य भविष्यत् (10) संदिग्ध वर्तमान (11) संदिग्ध भूत (12) प्रत्यक्ष विधि (13) परोक्ष विधि (14) सामान्य संकेतार्थ (15) अपूर्ण संकेतार्थ (16) पूर्ण संकेतार्थ ।

हिन्दी क्रियाओं में तीन पुरुष, दो लिंग, और दो वचन होते है । कर्ता के अनुसार क्रिया का रूपान्तर होनेवाला प्रयोग कर्तरि प्रयोग और कर्म के अनुसार होनेवाला कर्मणि प्रयोग होते है । 'पुकारना' कर्तरि प्रयोग में ही आता है । इसी तरह बोलना, भूलना, बकना, लाना आदि भी कर्तरि प्रयोग में आते हैं ।

कृदंत : क्रिया के भिन रूपों को दूसरे शब्द - भेदों के समान होता है उन्हें कृदंत कहते है । चलना - संज्ञा, चलता - विशेषण, चलकर - क्रिया विशेषण, मारे, लिए - संबन्ध सूचक इसके उदाहरण है । कृदंतों का उपयोग कालरचना तथा संयुक्तक्रियाओं में होता है और ये सब धातुओं से बनते है । कृदंत दो प्रकार के होते : विकारी और अविकारी । विकारी कृदंत चार प्रकार के होते है (1) क्रियार्थक संज्ञा (2) कर्तृवाचक (3) वर्तमान कालिक कृदंत और (4) भूतकालिक कृदंत । धातुओं के अन्त में 'ना' जोडकर क्रियार्थक संज्ञा बनाते है । क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप में 'वाला' लगाने से कर्तृवाचक संज्ञा बनती है । धातु के अन्त में 'ता' लगाकर वर्तमानकालिक कृदंत और 'आ' लगाकर भूतकालिक कृदंत बनाते है । जिन भूतकालिक कृदंतों के अन्त में 'आ' के पूर्व 'य' का आगम होता उनमें 'ए' और 'ई' प्रत्ययों के पूर्व विकल्प से 'य' का लोप होता है : लाये या लाए : लायी या लाई । यदि 'य' प्रत्यय के पहले 'ई' हो तो 'य' का लोप होता और 'ई' पूर्व - ई से सन्धि करके ली और दी प्रयोग में आती है ।

कृदंत अव्यय : यह चार प्रकार के होते है : पूर्वकालिक कृदंत, तात्कालिक कृदंत, अपूर्णक्रियाद्योतक और पूर्णक्रियाद्योतक । पूर्वकालिक कृदंत धातु के रूप में अथवा के, कर या करके जोडकर बनता है या जाके, जाकर, जाकरके । वर्तमानकालिक कृदंत के 'ता' को 'ते' करके तात्कालिक कृदंत

बनाते है। इसमें 'ही' जोड़कर अपूर्ण क्रियाद्योतक बनता : सोते ही, रहते ही आदि। भूत-कालिक कृदंत विशेषण के 'आ' को 'ए' बनाकर पूर्ण क्रियाद्योतक बना देते है। विभिन्न कालों के कर्तृ, कर्म, भाव वाच्य रूप दिए गए है।

संयुक्तक्रियाएँ :

(1) क्रियार्थक संज्ञा के मेल से बनी हुई : होना, पड़ना, चाहिए, देना, जाना।

(2) वर्तमानकालिक कृदंत के योग से : जाना, आना, रहना, चलना।

(3) भूतकालिक कृदंत से बनी हुई : चला गया, पढ़ा करता।

(4) पूर्वकालिक कृदंत के मेल से : चिल्ला उठना, मार बैठना, मार डालना।

(5) अपूर्ण क्रियाद्योतक से बनी : चलते नहीं बनता, पढ़ते नहीं बनता।

(6) पूर्ण क्रियाद्योतक से बनी : छोड़े जाना, किए देना।

(7) संज्ञा या विशेषण के योग से : स्वीकार करना, मोल लेना, देख देना।

(8) पुनरुक्त संयुक्त क्रिया : मिलना - जुलना, देखना - भालना।

विकृत अव्यय : अविकारी शब्दों को अव्यय कहा गया है। पर भाषा में इसका अपवाद - प्रस्तुत होते है। कोई कोई अव्यय विकृत रूप में आते है। वे बहुधा आकारान्त विशेषण के समान प्रयोग में आते है और लिंग, वचन के कारण विकारी होते है। परिमाण वाचक या प्रकारवाचक क्रियाविशेषण विशेष्य के अनुसार रूपान्तर ले लेता है : जो जितने बड़े है उनकी संख्या उतनी ही बड़ी होती। अकर्मक क्रियाओं के कर्तरि प्रयोग में आकारान्त क्रियाविशेषण कर्ता के लिंग, वचन के अनुसार बदलते है : वे उनसे इतने पिस गए थे। सकर्मक कर्तरि और कर्मणि प्रयोगों में प्रयुक्त क्रियाविशेषण कर्म के लिंग, वचन के अनुसार बदलते है : समुद्र अपनी बड़ी - बड़ी लहरें ऊँची उठाकर तट की तरफ बढ़ता है। कर्म की विवक्षा न होने पर सदैव पुल्लिंग एकवचन में रहता है: मैं इतना पुकारती हूँ। सकर्मक भावे प्रयोग में विकृत या अविकृत रूप में आते है : एकमात्र नंदिनी को उसने सामने खड़ी देखा। इसको इतना बड़ा बनाया। सदा, सर्वदा, बहुधा, वृथा, आदि आकारान्त शब्द मूल में विशेषण न होने से वे विकृत नहीं होते। संबंध सूचक अव्यय आकारान्त होने पर विशेष्य के लिंग, वचन के अनुसार बदलते है : तुम सरीखे लोग।

दूसरा भाग - शब्द साधन

- - - - - - - - - - - - -

शब्द साधन के तीन भाग है : वर्गीकरण , रूपान्तर और व्युत्पत्ति । इन में वर्गीकरण और रूपान्तर का विवेचन हो गया । व्युत्पत्ति का विचार किया जाता है । उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर तथा समास करके एक शब्द से दूसरे शब्द बनाए जाते है ।

उपसर्ग : शब्द के पहले जो अक्षर या अक्षरसमूह मिलाए जाते उसे उपसर्ग कहते है । संस्कृत के कई उपसर्ग होते : अति, अधि, अनु, अप आदि । अ, अन, औ आदि हिन्दी के उपसर्ग होते है । अल, ऐनुल, गैर, बद आदि उर्दू उपसर्ग है । अंग्रेज़ी का उपसर्ग सब का साधारण उपयोग होते है : सब इन्स्पेक्टर ।

प्रत्यय : शब्द के परे जो अक्षर या अक्षर समूह मिलाए जाते उन्हें प्रत्यय कहते है । संस्कृत के कृदंत तथा तद्धित प्रत्यय होते है । इनकी संख्या बहुत है । क्रियाधातुओं से बनाए कृदंत और अन्य शब्दों से बनाए तद्धित कहते है । हिन्दी में कृदन्त तथा तद्धित प्रत्यय होते है । आ, अक्का, आई, आऊ आदि हिन्दी कृदन्त एवं आ, ई, आई, आका, आयन, आर आदि हिन्दी तद्धित प्रत्यय होते है । उर्दू, फारसी, अरबी के भी कई कृदन्त तथा तद्धित प्रत्यय होते है इनकी लंबी सूची दी गयी है ।

समास : दो या अधिक शब्दों का परस्पर संबन्ध बतानेवाले शब्दों अथवा प्रत्ययों का लोप होने पर उन दो या अधिक शब्दों से जो एक स्वतन्त्र शब्द बनता है उसे सामासिक शब्द कहते है ।

समास चार प्रकार के होते है :

(1) अव्ययीभाव : जिस समास में पहला शब्द प्रधान होता है और जो सम्पूर्ण शब्द क्रिया - विशेषण अव्यय होता उसे अव्ययीभाव समास कहते है : यथाविधि, प्रतिदिन, भरसक ।

(2) तत्पुरुष : जिस समास में दूसरा शब्द प्रधान होता है उसे तत्पुरुष समास कहते है । इसमें बहुधा पहला शब्द संज्ञा या विशेषण होता है और इसके विग्रह में इस शब्द के साथ कर्ता और संबोधन कारकों को छोड़कर शेष कारकों की विभक्तियाँ लगती है । इसके दो भेद है : समानाधिकरण तत्पुरुष एवं व्यधिकरण तत्पुरुष । समानाधिकरण तत्पुरुष (कर्मधारय) के विग्रह में दोनों पदों के साथ एक ही विभक्ति (कर्ताकारक) आती है । इसके विशेषता-वाचक कर्मधारय और उपमावाचक कर्मधारय दो भेद है । विशेषण - विशेष्य तथा उपमानोपमेय भाव से दिखाते है

अधिकरण तत्पुरुष के प्रथम शब्द में जिस विभक्ति का लोप होता है उसी कारक के अनुसार समास का नाम होता है : कर्म तत्पुरुष - देशगत, स्वर्ग प्राप्त, करण तत्पुरुष - ईश्वरदत्त, मुँहमांगा इसी प्रकार अन्य कारकों में भी होते हैं ।

द्वन्द्व : जिस समास में सभी पदों का समाहार होता उसे द्वन्द्व समास कहते हैं । इसके तीन भेद होते हैं : (1) इतरेतर द्वन्द्व : और समुच्चय से जुड़े हुए हों, पर समुच्चय बोधक लुप्त हो : गायबैल, घीगुड़ आदि ।

(2) समाहार द्वन्द्व : पदों के अर्थ के सिवा उसी प्रकार का और भी अर्थ सूचित होता : मार - पीट, अन्न - जल, लेन-देन ।

(3) वैकल्पिक द्वन्द्व : या, अथवा आदि विकल्प को सूचित हो और विकल्पार्थक लुप्त हो : धर्माधर्म, पापपुण्य आदि ।

बहुव्रीहि : जिस समास में कोई भी पद प्रधान न हो और किसी भिन्न संज्ञा का विशेषण हो : चन्द्रमौलि, कृतकार्य ।

इसमें भी विग्रह के अनुसार कर्म बहुव्रीहि, करण बहुव्रीहि आदि होते हैं ।

पुनरुक्तशब्द : ये यौगिक शब्दों का एक भेद है । ये तीन प्रकार के होते हैं : पूर्ण पुनरुक्त, अपूर्ण पुनरुक्त और अनुकरणात्मक ।

पूर्ण पुनरुक्त : संज्ञा तथा विशेषण की पुनरुक्ति होती । इसका प्रयोग संज्ञा या विशेषण के समान होने पर कर्मधारय होता है । क्रियाविशेषण के समान हो तो अव्ययी भाव होता : घर - घर डालता (क्रि. वि) कोड़ी - कोड़ी मात (वि) बन - बन जीवत (संज्ञा)

अपूर्ण पुनरुक्त : इसका प्रयोग द्वन्द्व समास जैसे होता है । संज्ञा, विशेषण, क्रिया एवं अव्यय के मेल से ऐसे शब्द आते : बाल - बच्चे (संज्ञा) काला-कलूटा (वि) समझना - बूझना (क्रि) यहाँ - वहाँ (अव्यय)

अनुकरण वाचक : ये अनुकरणात्मक होते हैं । ये भी संज्ञा, विशेषण, क्रिया एवं क्रिया विशेषण से उत्पन्न होते : खड़-खड़ (सं) भरभरिया (वि) भिन भिनाना (क्रि) झटपट (क्रि.वि) इनका प्रकार सामासिक शब्दों ही के समान है, पर इनकी व्युत्पत्ति में सामासिक शब्दों से बहुत कुछ भिन्नता है ।

तीसरा भाग : वाक्य विन्यास

व्याकरण का मुख्य उद्देश्य वाक्यार्थ का स्पष्टीकरण है। शब्दों को यथाक्रम रखने की रीति को वाक्य विन्यास कहते हैं। एक पूर्ण विचार व्यक्त करनेवाला शब्द-समूह वाक्य कहलाता है। अर्थ के अनुसार वाक्य आठ प्रकार के होते हैं : विधानार्थक, निषेधार्थक, आज्ञार्थक, प्रश्नार्थक, विस्मयादि बोधक, इच्छा बोधक, संदेहसूचक और संकेतार्थक।

वाक्य में शब्दों का परस्पर अन्वय, अधिकार तथा उनका क्रम जानना चाहिए। दो शब्दों में लिंग, वचन, पुरुष, कारक अथवा काल की जो समानता रहती उसे अन्वय कहते हैं, एक शब्द के प्रयोग से दूसरी संज्ञा या सर्वनाम किसी विशेष कारक में आती है उसे अधिकार कहते हैं, शब्दों को उनके अर्थ और संबन्ध की प्रधानता के अनुसार, वाक्य में यथास्थान रखना क्रम कहलाता है। वाक्य में मुख्य दो शब्द होते, उद्देश्य और विधेय। जिसके विषय में विधान किया जाता उसे उद्देश्य कहते हैं और उद्देश्य के विषय में विधान करनेवाला विधेय कहलाता है। इन दोनों के आश्रित और भी कई हैं।

कारकों के अर्थ और प्रयोग :

कर्ताकारक : यह अप्रत्यय और सप्रत्यय होता है। अप्रत्यय कर्ता प्रातिपदिक के अर्थ में, उद्देश्य में, उद्देश्यपूर्ति में, स्वतन्त्र कर्ता के अर्थ में और स्वतन्त्र उद्देश्यपूर्ति में प्रयुक्त होता है। सप्रत्यय कर्ता केवल उद्देश्य के अर्थ में आता है। यह केवल अनुमति, इच्छा, अवकाश और अवधारणबोधक संयुक्त सकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कृदंत से बने हुए कालों के साथ आता है।

कर्मकारक : इसका प्रयोग सकर्मक क्रिया के साथ होता है। यह भी अप्रत्यय और सप्रत्यय होता अप्रत्यय कर्मकारक बहुधा मुख्यकर्म, कर्मपूर्ति, सजातीय कर्म, अनिश्चित कर्म का अर्थ सूचित करता है सप्रत्यय कर्मकारक निश्चित कर्म, व्यक्तिवाचक, अधिकारवाचक, संबन्धवाचक कर्म में, मनुष्यवाचक सार्वनामिक कर्म में आता है। 'मारना' के साथ कर्मकारक के दोनों रूपों का प्रयोग होता है। अपूर्ण क्रियाओं कर्म, कर्मवाच्य के भावेप्रयोग के उद्देश्य में, संज्ञा के समान विशेषणों के प्रयोग में भी सप्रत्यय कर्म आता है। कविता में इन नियमों का बहुधा व्यतिक्रम हो जाता है।

करणकारक : साधन, कारण, रीति, विकार, दशा और भाव के अर्थ में करणकारक आता है। कर्मवा भाववाच्य और प्रेरणार्थक क्रियाओं का कर्ता करणकारक में आता। कहना, पूछना, बकना, प्रार्थना करना बात करना आदि क्रियाओं के साथ गौणकर्म के अर्थ में यह कारक आता है।

करण कारक की विभक्ति का लोप होने से बल, मारफत, सहारे, द्वारा, कारण, निमित्त आदि शब्दों का प्रयोग संबन्ध सूचक अव्यय के समान होता है। भूख, प्यास, जाड़ा, हाथ का आदि इस कारक में बहुधा बहुवचन में आते और विभक्ति का लोप होता।

सम्प्रदान कारक : द्विकर्मक क्रिया के गौणकर्म में, अपूर्ण सकर्मक क्रिया के मुख्य कर्म में, फल या निमित्त में, प्राप्ति में, विनिमय या मूल्य में, मनोविकार में, प्रयोजन में, कर्तव्य, आवश्यकता और योग्यता में, अवधारण के अर्थ में सम्प्रदान कारक आता है। लगना, रुचना, मिलना, भासना, आना, पड़ना, होना आदि अकर्मक क्रियाएँ, प्रणाम नमस्कार, धन्यवाद, बधाई धिक्कार, आदि संज्ञाएँ, चाहिए, उचित, योग्य, आवश्यक, सहज, कठिन आदि विशेषण के साथ सम्प्रदान कारक आता है। आवश्यकता बोधक क्रियाओं पड़ना, देना, और आना के योग में बनी हुई अवधारण बोधक या नामबोधक क्रियाओं के साथ सम्प्रदान कारक आता है।

अपादान कारक : काल तथा स्थान का आरंभ, उत्पत्ति, काल या स्थान का अन्तर भिन्नता, तुलना, वियोग, निवारण, माँगना, लेना, लाना, बचना, हटना, रोकना, छूटना, डरना, छिपना आदि क्रियाओं का स्थान या कारण परे, बाहर और आगे, हटकर आदि के साथ भी अपादान कारक आता है।

सम्बन्ध कारक : अंगांगिभाव, जन्य-जनक भाव, कर्तृ-कर्म भाव, कार्य-कारण आधाराधेय, सेव्यसेवकभाव, गुणगुणिभाव, वाह्यवाहक भाव, नाता, प्रयोजन, मोल, परिमाण आदि के अर्थ में सम्बन्ध कारक आता है। काल या वयस अभेद किंवा जाति, समानता, अधिकार, अवधारण, नियमितापन, देशांतर, विषय, क्रियार्थक संज्ञा, अधिकरण आदि में सम्बन्धकारक आता है।

अधिकरण कारक : इसकी दो विभक्तियाँ होती हैं : में और पर।

अभिव्यापक आधार, औपश्लेषिक आधार, वैषयिक आधार, मोल, भेद, तथा अंतर, कारण, निर्धारण, स्थिति, निश्चित काल, भरना, समाना, घुसना, मिलना, मिलाना आदि क्रियाओं में गत्यर्थ क्रियाओं के साथ 'में' अधिकरण कारक आता है।

एकदेशाधार, सामीप्याधार, दूरता, विषयाधार, कारण, अधिकता, निश्चित काल, नियमपालन, अनंतरता, विधि, अवस्था, अनादर के अर्थ में 'पर' अधिकरण कारक आता है। चढ़ना, मरना, दया करना, छूटना, छोड़ना, वारना, निछावर, निर्भर आदि शब्दों के योग से बहुधा 'पर' का प्रयोग होता है। ब्रजभाषा में 'पर' का रूप 'पे' होता है।

संबोधन कारक : इस कारक का प्रयोग किसी को चिताने या पुकारने में आता है।
सामासिक अधिकरण शब्द : समानाधिकरण शब्द का अर्थ और कारक मूल शब्द के अर्थ और कार
से भिन्न न हो : 'दशरथ के पुत्र राम' में 'राम' 'पुत्र' के समानाधिकरण होता है ।

उद्देश्य और क्रिया का अन्वय : अप्रत्यय कर्ता कारक वाक्य का उद्देश्य होता तो क्रिया कर्ता के लिंग, पुरुष, वचन का अनुसरण करती है । 'लड़का जाता है'। आदर के अर्थ में एकवचन उद्देश्य के साथ बहुवचन क्रिया आती है : 'मेरे बड़े भाई आए हैं'। संयोजक से जुड़ी हुई, एक से अधिक एकवचन प्राणिवाचक संज्ञाएँ अप्रत्यय कर्ता कारक में आती तो क्रिया बहुवचन में आएगी, भिन्न-भिन्न लिंगों के दो या अधिक प्राणिवाचक संज्ञाएँ एकवचन में आवें तो क्रिया पुल्लिंग बहुवचन में आती है, भिन्न भिन्न लिंग वचन की एक से अधिक संज्ञाएँ अप्रत्यय कर्ता कारक में आवें तो क्रिया अंतिम कर्ता के अनुसरण करेगी।
कर्म और क्रिया का अन्वय : कर्मकारक और क्रिया के अधिकांश नियम उद्देश्य और क्रिया के अन्वय के ही समान है ।
सर्वनामों के प्रयोग : पुरुषवाचक, निश्चयवाचक, और संबन्धवाचक सर्वनाम जिन संज्ञाओं के बदले आते हैं उनके लिंग और वचन सर्वनामों में पाए जाते हैं । पर कारक को स्वीकार नहीं करता : 'लड़के ने कहा कि मैं जाता हूँ'। अप्रधान पुरुषवाचक सर्वनाम क्रिया पुल्लिंग में रहती है : 'कोई कुछ कहता है'। दूसरों के भाषण को उद्धृत करता या दुहराता तो मूल-भाषण के सर्वनाम में परिवर्तन और अर्थ भेद होता है । आदर सूचक आप की क्रिया बहुवचन में होती है ।
विशेषण और संबन्धकारक : यदि विशेषण विकृतरूप से आवे तो आकारान्त विशेषणों में विकार होता है : 'छोटे लड़के'। अनेक विशेष्यों का एक ही विकारी विशेषण हो तो उनमें विशेषण के वह प्रथम विशेष्य के अनुसार बदलता और एक विशेष्य के अनेक विशेषण हो तो उनमें विशेष्य के अनुसार विकार होगा । आकारान्त विभक्ति रहित कर्ता का विशेषण समान विकार का होता : 'सोना पीला है'। विधेय में आनेवाली संज्ञा का संबन्धकारक उद्देश्य के अनुसार होता : 'सरकार प्रजा की माँ बाप है' ।
द्योतक शब्दों के अर्थ और प्रयोग दिखाये गये हैं[1] ।

क्रियार्थक संज्ञा : इसका प्रयोग साधारणतया भाववाचक संज्ञा से आता है । बहुवचन में इसका प्रयोग नहीं । उद्देश्य संबंध कारक में आता पर कर्ता की विभक्ति लुप्त होती: 'पानी का बरसना शुरू हुआ'। दो भूतकालिक क्रियाओं की समकालिकता बताने के लिए पहली क्रिया 'था' के साथ आती है : 'उसका वहाँ पहुँचना था कि चिट्ठी आ गई'। क्रियार्थक संज्ञा के पूर्व विशेषण और पश्चात् संबंध सूचक अव्यय आ सकता है : 'सुंदर लिखने के लिए उसे इनाम मिला'। जब क्रियार्थक संज्ञा विधेय में आती है तब उसका प्राणिवाचक उद्देश्य संप्रदान कारक में और अप्राणिवाचक उद्देश्य कर्ताकारक में रहता है: 'मुझे जाना है', 'जो होना था सो हो गया' । क्रियावाचक संज्ञा का प्रयोग विशेषण के रूप में होने पर उसके लिंग, वचन कर्ता या कर्म के अनुसार होता है : 'मुझे दवाई पीनी है' । निमित्त या प्रयोजन के अर्थ में इसका प्रयोग संप्रदान कारक में होता है : 'वे उन्हें लेने को आए हैं' ।

कृदंत : क्रियार्थक संज्ञा के सिवा हिन्दी में भी और कृदंत हैं वे, विकारी और अविकारी दो प्रकार के होते हैं । विकारी (1) वर्तमानकालिक कृदंत (2) भूतकालिक कृदंत और (3) कर्तृवाचक कृदंत होते हैं । अविकारी (1) अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत (2) पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत (3) तात्कालिक कृदंत और (4) पूर्वकालिक कृदंत होते हैं ।

(1) वर्तमानकालिक कृदंत : बहता पानी, आदमी आता हुआ दिखाई देता ।
(2) भूतकालिक कृदंत : मरा हुआ घोड़ा, कपास का बना कपड़ा ।
(3) कर्तृवाचक कृदंत गाड़ी आनेवाली है, घड़ी बनानेवाला ।
(4) अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत : यह कहते मुझे बड़ा हर्ष होता है । उनको लोटते हुए देखा ।
(5) पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत उनके कहे क्या होता है । गाते गाते चुके नहीं वह ।
(6) तात्कालिक कृदंत : वह मुझे देखते ही छिप जाता है, उसके आते ही उपद्रव मच ग
(7) पूर्व कालिक कृदंत : भाई को देखकर उसका मन शांत हो गया ।

संयुक्त क्रियाएँ : बोलना, करना, रोना, हंसना, आदि के साथ 'जाना' क्रिया आती है, आवश्यकताबोधक क्रियाओं का प्राणिवाचक उद्देश्य संप्रदानकारक में आता और अप्राणिवाचक कर्ताकार

- -

1. देखिए - हिन्दी व्याकरण - कामता प्रसाद गुरु - पृ. 389 से 399.

में रहता है : 'मुझको जाना है', 'बेटा बचना चाहिए' । 'चाहिए' क्रिया पुरुष लिंग के अनुसार विकार प्राप्त नहीं करती पर कर्म के वचन के अनुसार कभी-कभी बदल जाती : जैसे 'सब काम करने चाहिए'। देना, पढ़ना, आदि का उद्देश्य संप्रदान कारक में आता : 'मुझे शब्द सुनाई दिया'। होना के साथ लेना इत्यादि कर्तरि प्रयोग में आता : 'वे साधु हो लिए'।

अव्यय : जब-तब क्रियाविशेषण सभी कालों के साथ आता और वाक्यों को जोड़ता है । न, नहीं मत का प्रयोग:-सामान्य वर्तमान, अपूर्ण भूत और आसन्न भूत कालों को छोड़कर अन्यकालों में बहु 'न' आता है । संभाव्य भविष्यत् क्रियार्थक संज्ञा तथा दूसरे कृदंत, और संकेत कालों में बहुधा 'नहीं' आता है । केवल विधिकाल में 'मत' आता है । जब वाक्य में दो शब्द-भेद संयोजक या विभाजक समुच्चय-बोधकों के द्वारा जुड़े जाते तब अव्यय बीच में और शब्द दो से अधिक होते तो अन्तिम शब्द के पूर्व रखा जाता है ।

अध्याहार : वाक्य के संक्षेप या गौरव लाने के लिए कुछ शब्द छोड़े जाते । इसे अध्याहार कह अध्याहार पूर्ण और अपूर्ण होते है । कर्ता का पूर्ण अध्याहार, देखना, कहना, सुनना के सामान्य वर्तमान और आसन्न भूत कालों में होता है । विधि काल में भी यह होता है । कर्ता का अ अध्याहार, एक वाक्य में कर्ता का उल्लेख करने पर दूसरे वाक्य में एक ही क्रिया का अन्वय कई उद्देश्यों के साथ होने पर होता है । कई स्थानों पर प्रत्ययों का अध्याहार होता है ।

पदक्रम : पदक्रम स्वाभाविक और निश्चित है । साधारण नियम है कि पहले उद्देश्य, फिर कर्म और अन्त में क्रिया रहते है । द्विकर्मक क्रियाओं में गौणकर्म पहले और मुख्यकर्म पिछले आते है । विशेषण संज्ञा के पहले एवं क्रियाविशेषण क्रिया के पहले आते है । अवधारण के लि कर्ता और कर्म का स्थानान्तर, संप्रदान का स्थानान्तर, क्रिया और समानाधिकरण का स्थानान्तर होता है । प्रश्नवाचक 'क्या' बहुधा वाक्य के आदि में और 'न' वाक्य के अन्त में आते है । निषेधवाचक न, नहीं और मत क्रिया के पूर्व आते है ।

पदपरिचय : वाक्यगत शब्दों के रूप और उनका परस्पर संबन्ध दिखाना पदपरिचय है । इसे पद निर्देश या व्याख्या भी कहते है । प्रत्येक शब्द - भेद की व्याख्या में जो जो वर्णन आवश्यक है वह नीचे दिखाया जाता है :-

(1) संज्ञा : प्रकार, लिंग, वचन, कारक, संबन्ध ।

(2) सर्वनाम : प्रकार, प्रतिनिधित संज्ञा, लिंग, वचन, कारक, संबन्ध ।

(3) विशेषण : प्रकार, विशेष्य, लिंग, वचन, विकार, संबन्ध ।

(4) क्रिया : प्रकार, वाच्य, अर्थ, काल, पुरुष, लिंग, वचन, प्रयोग ।

(5) क्रियाविशेषण : प्रकार, विशेष्य, विकार, संबन्ध ।

(6) समुच्चयबोधक : प्रकार, अन्वितशब्द, वाक्यांश अथवा वाक्य ।

(7) संबन्ध सूचक : प्रकार, विकार, संबन्ध ।

(8) विस्मयादि बोधक : प्रकार, संबन्ध ।

(शब्दों का प्रकार बताते समय उनके व्युत्पत्ति संबन्धी भेद - रूढ, यौगिक, या योगरूढ - भी बताना आवश्यक है)

प्रत्येक शब्द - भेद का पद परिचय दिया गया है[1] ।

तीसरा भाग - वाक्य विन्यास (ii)

वाक्य पृथक्करण के द्वारा शब्दों तथा वाक्यों का परस्पर संबन्ध जाना जाता है । इसे वाक्य - विश्लेषण भी कहते हैं । इसका विस्तृत विवेचन की उत्पत्ति अंग्रेजी भाषा के व्याकरण से है ।

एक विचार पूर्णता से प्रकट करनेवाले शब्दों के समूह को वाक्य कहते हैं । वाक्यों के तीन विभाग है (1) साधारण वाक्य (2) मिश्रवाक्य और (3) संयुक्त वाक्य । साधारण वाक्य में एक संज्ञा उद्देश्य और एक क्रिया विधेय होते हैं । मिश्रवाक्य में मुख्य उपवाक्य एक ही होता है पर आश्रित उपवाक्य एक से अधिक आ सकते हैं । आश्रित - उप वाक्य - संज्ञावाक्य, विशेषण उपवाक्य, एवं क्रियाविशेषण, उपवाक्य होते हैं । इन तीनों का विस्तृत विवरण और पृथक्करण के उदाहरण दिए गए हैं । संयुक्तवाक्य में एक से अधिक प्रधान वाक्य और उनके आश्रित उपवाक्य भी रहते हैं । दो या अधिक विधेय, उद्देश्यों का एक ही विधेय, एक उद्देश्य के लिए दो या अधिक विधेय, एक विधेय केलिए दो या अधिक कर्म या पूर्तियाँ अथवा विधेय - विस्तारक आदि होते हैं । इस तरह के वाक्यों को संकुचित संयुक्तवाक्य कहते हैं । जिन

---

1. देखिए - पृ. 419 से 428

वाक्यों में सरस अर्थबोध होने से या गौरव के लिए कुछ शब्द छोड़े जाते उन्हें संक्षिप्त वाक्य कहते है । अर्थ के अनुसार वाक्य आठ प्रकार के होते है (1) विधानार्थक, (2) निषेधवाचक (3) आज्ञार्थक (4) प्रश्नार्थक (5) विस्मयादिबोधक (6) इच्छाबोधक (7) संदेहसूचक और (8) संकेतार्थक ।

विराम चिह्न : (1) अल्प विराम (2) अर्धविराम (3) पूर्णविराम (4) प्रश्नचिह्न (5) आश्चर्य चिह्न (6) कोष्ठक और (7) अवतरण चिह्न । इनके अलावा (1) कोष्ठकार (2) लघुकार कोष्ठक (3) रेखा (4) अपूर्ण सूचक (5) संक्षेप (6) टीकासूचक (7) संकेत (8) पुनरुक्ति सूचक (9) तुल्यता सूचक (10) स्थान (11) समाप्ति सूचक - इनके रूप तथा उदाहरण दिए गए है ।

परिशिष्ट में कविता की भाषा का विवरण है । हिन्दी की उपभाषाएँ ब्रजभाषा, अवधि और खड़ीबोली है । ब्रजभाषा में प्राचीन कविताएँ अधिक मिलती है । इसका प्रभाव दूसरी भाषाओं में पड़ गयी है । गद्य और पद्य के शब्दों के वर्णविन्यास में बहुधा यह अंतर पाया जाता है कि गद्य के ड, य, ल, व, श और ष के बदले पद्य में र, ज, र, ब, स और ख (ष) क्रमशः आते है । गद्य के आकारान्त पुल्लिंग शब्द अधिकतया पद्य में ओकारान्त पाए जाते है । लिंग, वचन, कारक में भी कुछ न कुछ अंतर देखे जाते है ।

कर्ताकारक 'ने' कई स्थानों में प्रयुक्त नहीं । कर्म > हिं को, कहँ, करण > ते, सो, सम्प्रदान > कि को, कहँ, अपादान > तें, संबन्ध > को, कर, केरा, केरी, अधिकरण > माहि, मांझ, मँह, में परिवर्तित होते है ।

सर्वनाम : मैं > हौं, मो, तू > तै, तो, यह > इहि, या, वह > वो, सो, वा, आप > आपु जो > जौन, जा, कौन > को, कवन, क्या > क्या, कहा कोई > कोऊ, कोय, काहू, कुछ > कछु रूप स्वीकार करते है । बहुधा दोनों वचनों में एक ही रूप होता है । क्रियाओं में भी रूपान्तर होता है : चलऊं, चलसि, चलइ, चलियो, चलि है, चलेगो, चलत, चलतेउ, चल्यो आदि रूपान्तर देख सकते है । अव्ययों में भी रूप भेद देखे जाते ।

काव्य - स्वतन्त्रता पर भी प्रकाश डाला गया है ।

निष्कर्ष :

पं. कामताप्रसाद गुरु का 'हिन्दी व्याकरण' पूर्ण और प्रामाणिक होता है । उन्होंने अपने ग्रन्थ की भूमिका में पूर्ववर्ती व्याकरण ग्रन्थों पर प्रकाश डाला है । हिन्दी में एक प्रामाणिक व्याकरण के अभाव को दूर करने के लिए नागरी प्रचारिणी सभा के निवेदन से पंडितजी ने यह कार्य किया । व्याकरण संशोधन समिति की सम्मति भी मिली है । इसकी प्रतिष्ठा निर्विवाद एवं सम्मानपूर्ण होती है । लेखक ने अंग्रेज़ी - पद्धति तथा संस्कृत पद्धति दोनों को समान स्थान पर स्वीकार किया है । शब्द - भेद अंग्रेज़ी व्याकरण - पद्धति के अनुसार आठ विभागों में विभाजित किया है । पर सन्धिकार्य पूर्णतः संस्कृत व्याकरण - पद्धति के आधार पर दिखाया है । यह बिलकुल पाणिनि सूत्रों पर आधारित है, हिन्दी - शब्दों की विशेष - सन्धियों का अभाव इसकी एक कमी ही रहती है ।

कारक और विभक्ति की जटिलता दूर करने के कार्य में लेखक सफल नहीं हुए हैं । वे कहते हैं हिन्दी में कारक और विभक्ति को एक मानने की चाल कदाचित् अंग्रेज़ी व्याकरण का फल है, क्यों कि सबसे प्रथम हिन्दी व्याकरण पादरी आदम साहब का "भाषा भास्कर" है जिसमें कारक शब्द ही आया है, विभक्ति शब्द का नाम तक भी नहीं - - - - भाषा प्रभाकर में भी विभक्ति के बदले कारक ही दिखाया है - - - - इस तरह से यह बहुत ही पुरानी भूल को सुधारने की ओर आजकल लेखकों का ध्यान हुआ है । अब हमें यह देखना चाहिए कि इस भूल को सुधारने से हिन्दी व्याकरण को क्या लाभ हो सकता है[1] कारकों के प्रयोग तथा अर्थ - भेद का विवरण काफी लंबा है ।

समास संस्कृत व्याकरण पद्धति के अनुसार ही दिखाया गया है । पदक्रम, वाक्यपृथक्करण आदि तो अंग्रेज़ी पद्धति के होते हैं । इस तरह हम देख सकते हैं कि पंडितजी ने दोनों पद्धतियों को व्याकरणिक पूर्णता के लिए स्वीकार किया है । उन्होंने हर एक नियम को काफी उदाहरणों से साफ दिखाया है । उपसर्ग और प्रत्यय के विवरण में संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, अरबी, फारसी आदि भाषाओं से हिन्दी में आए हुए सभी शब्दांशों को दिखाने का प्रयत्न हुआ है ।

क्रिया के कालविभाजन में काफी उदाहरण देने पर भी जटिलता आ गयी है । कार की प्रायोगिकता पर भी यही स्थिति होती है । व्याकरण में ऐसी बातें स्वाभाविक है । फिर भी ही यह व्याकरण सर्वथा प्रामाणिक ही रहता है ।

- -

1. हिन्दी व्याकरण - कारक पृ. 184

हिन्दी शब्दानुशासन :

पं. किशोरीदास वाजपेयी का लिखा हुआ व्याकरण ग्रन्थ है हिन्दी शब्दानुशासन। शब्दानुशासन शब्द पतंजलि के महाभाष्य में आया है। शब्दों का अनुशासन, उनका संरूप - विधान करता है। प्रकृति - प्रत्यय की कल्पना करके पद-व्युत्पत्ति करनेवाले शास्त्र को शब्दानुशासन कहने में स्पष्टता एवं व्यापकता अधिक होती है।

'निवेदन' में प्रकाशक कहते है, '' आचार्य पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य पं. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, महापंडित राहुल सांकृत्यायन तथा डा. अमरनाथ झा के प्रोत्साहन और क्रियात्मक प्रेरणा का फल है यह ग्रन्थ - - - -''।

पूर्वपीठिका में भाषा के संबन्ध में उनका कथन है(1) आदि भाषा को मूलभाषा कहते है। उसके ही रूप हो गए, वेदों की संस्कृत भाषा और लोकव्यवहार की साधारण प्राकृत भाषा। वैदिक संस्कृत आगे चलकर ब्राह्मणों, उपनिषदों तथा पुराणों में प्रचलित हुई। भगवान् पाणिनि ने अपने व्याकरण से भाषा की व्यवस्था की। इस तरह संस्कृत को प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई। देशकाल के अनुसार लोकभाषा की भाषा में परिवर्तन सदा होता है। देश-भेद से प्राकृत के भी भेद हो गए। भारत के प्रदेशों में तथा छोटे - छोटे जनपदों में विभिन्न प्रकार की प्राकृत चल रही। भगवान् महावीर ने और भगवान् बुद्ध ने अपनी - अपनी बोली में धर्म-प्रचार किया। महाराज अशोक के समय प्राकृत राजभाषा हो गई। उस प्राकृत का नाम पाली पड़ गया। पाली के अलावा मागधी, अर्धमागधी , महाराष्ट्री, शौरसेनी आदि प्राकृतों में भी साहित्य - रचना होने लगी। पाली, प्राकृत की द्वितीय अवस्था है। आगे चलकर तीसरी प्राकृत रूपित हुई। तीसरी प्राकृत ही आगे बढ़कर विकसित हो गई और हिन्दी आदि भारतीय आर्य भाषाएं बन गई - - - - - -। (2)

'ने' के बारे में लेखक कहते है कि यह विभक्ति हिन्दी की विशेषता है। ब्रज और अवधी में यह नहीं है। संस्कृतके बालकेन से 'एन' अलग करके यह बनाई गई है।

- -

(1) हिन्दी शब्दानुशासन, नागरी प्रचारिणी सभा 1958 पृष्ठ : 4

(2) उपरिवत्, पूर्व - पीठिका पृष्ठ : 3, 4, 5.

'सम' की वर्ण - व्यत्यय से म, स और फिर म तथा स में संधि करके 'मै' की गई। (1)

उन्होंने हिन्दी- विकास की जो सारणी दी है वह नीचे दी जाती है। (2)

आद्य या मूल भारतीय - आर्यभाषा

प्रथम संस्कृत (वेदों की भाषा) — प्रथम प्राकृत (वैदिक युग की साधारण जनभाषा)

द्वितीय संस्कृत (ब्राह्मण - ग्रन्थों की और उपनिषदों की भाषा) — द्वितीय प्राकृत (जिसका 'पालि' रूप प्रसिद्ध है और अन्य साहित्यिक रूप व्यंजन- लोप तथा णकार-प्रियता से विकृत कर दिए गए हैं।)

तृतीय संस्कृत (जो आज भी अपने निखरे हुए रूप में 'लौकिक संस्कृत' नाम से प्रसिद्ध है, पाणिनि द्वारा व्यवस्थित जिसमें कालिदास आदि की रचनाएँ हैं।) — तृतीय प्राकृत (जिसे 'अपभ्रंश' कहते हैं और जिसके विभिन्न प्रादेशिक भेदों से आज की भारतीय भाषाओं का विकास हुआ है। यानी यही प्राकृत विकसित-व्यवस्थित होकर आज की भारतीय (हिन्दी आदि) भाषाओं के रूप में स्थित है।)

खड़ी बोली

उर्दू (विदेशी लिपि में और विदेशी — हिन्दी (हिन्द की भाषा हिन्दी, जिसे

---

(1) हिन्दी शब्दानुशासन, पूर्वपीठिका पृष्ठ 27, (2) उपरिवत् पृष्ठ 75

रंग - ढंग में हिन्द की (किसी समय) भाषा)
|
(विदेशी प्रभाव कुछ कम करके और फारसी तथा नागरी दोनों लिपियों में (सरकारी भाषा के रूप में) प्रस्तावित)

नागरी लिपि में सम्पूर्ण राष्ट्र की सामान्य-भाषा के रूप में वरण किया गया है। इसी भाषा। विवेचन यह 'हिन्दी शब्दानुशासन' है।)

पूर्वार्द्ध

वर्णविचार :- सार्थक शब्दों के समूह को भाषा कहते हैं। शब्दों का विश्लेषण करने पर जो मूल - अवयव निकलते उन्हें वर्ण कहते हैं। वर्णों के दो मुख्य भेद हैं : स्वर और व्यंजन। मूलस्वर अ, इ, उ, ऋ होते हैं। लृ को स्वीकार नहीं किया है। स्वरों के ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीन रूप होते हैं। ए, ऐ, ओ, औ - ये चार संयुक्त स्वर हैं। अनुस्वार और अनुनासिक स्वर के अनन्तर आने से उन्हें अनुस्वार कहते हैं। अनुस्वार और विसर्ग स्वर या व्यंज नहीं। इन्हें अयोगवाह कहते हैं। व्यंजनों के तीन भेद होते हैं - अन्तस्थ, ऊष्म और वर्गीय उच्चारण स्थान, अल्पप्राण, महाप्राण आदि संस्कृत व्याकरण पध्दति के अनुसार बताए गए हैं। स्पर्श के द्वितीय, चतुर्थ वर्णों को द्विस्थानी कहते हैं। जैसे छ, झ तालु - कंठ, थ, ध दन्त - कण्ठ, ठ, ढ मूर्धा - कण्ठ एवं फ, भ ओष्ठ - कण्ठ होते हैं।

वर्ण - संधियाँ : बारह + दार — बारादार : एक द लुप्त हो जाता है। कहीं-कहीं में य, र, ल, व किसी एक का आगमन होता है - कह + ना — कहलाना। हिन्दी में संज्ञा सर्वनाम, धातु, विशेषण आदि स्वरांत होते हैं। इसलिए लोप तथा अन्य संधियाँ स्वरों में ही रखी जाती है। जब स्वर का लोप होता तब व्यंजन से उसकी संधि ज़रूर होती है। अब, जब, कब, तब अव्ययों से 'ही' अव्यय संधित होने पर 'अ' का लोप होकर ब + ही — भी होता है। कभी-कभी दो स्वरों में संधि होती है।

विधि - अर्थ प्रकट करने के लिए संस्कृत का 'इय' प्रत्यय हिन्दी में 'इ' होता है : पढ + इ = कर + इ = करि। अवधि और ब्रज में रूप पढि, करि हो जाते हैं। कभी-कभी दो स्वरों के मेल में एक का रूपान्तर होता है : सी + इ = सीए, री + इ = रीए। ब्रजभाषा में सो, रो, धो आदि धातु रूप नहीं, सोव, रोव, धोव धातु होते और सोवत, रोवत, धोवत रूप लेते

जहाँ इन धातुओं के 'अ' तथा प्रत्यय 'ए' में 'ऐ' संधि हो जाती है। सो + ए = सोये, रो + ए = रोये। यदि धातु ईकारान्त होती तो ई को विकल्प में 'इय' आता है। 'इय' के 'य' के विकल्प से लोप हो जाता है - पी + ए — पिए — पिये। ई को जब इय होता ही नहीं तब पीए। इसी तरह पी के पिये, पिए, पीए, सी के सिये, सिए, सीए। 'य्', ए, ई, तथा ए में मिलने पर विकल्प से लुप्त हो जाता है। इसलिए गए, गये, गई, गयी दो रूप होते हैं। लोप हो जाने पर सवर्ण दीर्घ - संधि भी हो जाती है किया + ई — कि + ई = की। यह, वह सर्वनाम के परे 'ही' आने पर 'ह' का लोप नित्य होता है। वह + ही = वही। ऐसे ही यहाँ + ही = यहीं। कभी कभी स्वर का लोप विकल्प में होता है - हर + एक = हरेक या हर एक। कहीं - कहीं वर्ण - वृद्धि भी देखी जाती है - दीन + नाथ = दीनानाथ। अकारान्त धातुओं से भिन्न अन्य स्वरान्त धातुओं से परे जब यह 'उ' प्रत्यय आता है तब 'ओ' बन जाता है - खा + उ = खाओ, जा + उ = जाओ। कभी - कभी धातु के 'ई' को 'इय' कर देते हैं - सियो, पियो। यह रूप संस्कृत के इयङ् की प्रतिमूर्ति है। स्त्रीलिंग बहुवचन - सूचक आँ परे हो तो भी इ तथा ई को इय हो जाता है - नदी + आँ = नदियाँ, गाड़ी + आँ = गाड़ियाँ। कोई अन्य स्वर स्त्रीलिंग शब्दों के अन्त में हो तो सामने का यह 'आँ' 'एँ' हो जाता है। बहन + आँ = बहनें, सड़क + आँ = सड़कें। यदि इ के सिवा कोई अन्य स्वर स्त्रीलिंग के अन्त में एँ होता है - गौ - गौएँ। ऊकारान्त का 'ऊ' उ बन जाता है - बहू + एँ = बहुएँ।

संस्कृत की संधियाँ :

हिन्दी में संधियाँ दो ही तरह की है, स्वर संधि और व्यंजन संधि। संस्कृत में एक तीसरा भेद है, जिसे विसर्ग संधि कहते हैं। संस्कृत की संधियाँ उसी रूप में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में चलती हैं। संस्कृत में संधि - की अनिवार्यता अनुशासन - सिद्ध है, पर हिन्दी में विकल्प में होती है। संधिकार्य में हिन्दी अपनी स्वतन्त्रता दिखाती है। पुनः + रचना = पुनारचना, अन्तः + राष्ट्र = अन्ताराष्ट्र जैसे प्रयोग देखिए। हिन्दी ने यह संधि स्वीकार नहीं की है। हिन्दी में पुनर्रचना, अन्तर्राष्ट्र का प्रयोग ही होता है। संस्कृत के सरल-मधुर शब्दों को ही हिन्दी ने ले लिया है - जैसे बिंबोष्ठ, अधरोष्ठ।

शब्द या पद
- - - - - - -

' राम : करोति ' इसमें दो पद हैं । राम संज्ञा पद (सुबन्त) करोति क्रिया-पद (तिङन्त) । विभक्ति - रहित 'राम' कर्तृकारक नहीं हो सकता और बिना तिङन्त प्रत्यय 'कृ' का कोई अर्थ नहीं होता । ये विशुद्ध शब्द हैं, इनका प्रातिपदिक और दूसरा धातु । हिन्दी में प्रातिपदिक नहीं है । हिन्दी में शब्द अर्थबोधित पद ही होते हैं । इसलिए कई वाक्यों में कारक चिह्न नहीं लगाये जाते । ''राम घर देखता है ।'' यहाँ 'राम' कर्ता तथा 'घर' कर्म होते हैं । बिना प्रत्यय के हम पद समझ सकते हैं । शब्द को वाचक और अर्थ को वाच्य कहते हैं । हिन्दी में विभक्तियों का प्रयोग तभी होता है, जब इनके बिना काम चलने की स्थिति न हो । हिन्दी में दो तरह की विभक्ति है, श्लिष्ट और संश्लिष्ट । ने, को, से, में, पर श्लिष्ट विभक्तियाँ हैं । इनमें 'ने' विभक्ति का प्रयोग नियमतः कर्ता कारक में ही होता है, जब कि क्रिया भूतकाल के कर्मवाच्य या भाववाच्य में सकर्मक क्रिया में भी इसका प्रयोग नहीं होता यदि कर्तरि प्रयोग हो, क्रिया कर्तृवाच्य हो । एक 'ने' और संश्लिष्ट विभक्ति भी है जो 'आप' में लगाई जाती है । जब 'भीतर' अर्थ विवक्षित हो तब 'में' और जब 'ऊपर' अर्थ विवक्षित हो तब 'पर' का उपयोग होता है । 'को' तथा 'से' विभक्तियों का प्रयोग - क्षेत्र बहुत व्यापक है । कर्ता कारक में 'को' - राम को घर जाना है । कर्मकारक में 'को' - मैं ने तुमको समझाया । संप्रदान कारक में 'को' मैं ने मोहन को पुस्तक दी । अधिकरण कारक में 'को' - सोमवार को पढाई होगी । कर्तृकारक में 'से' - राम से अब उठा नहीं जाता । कर्मकारक में 'से' - मोहन राम से कहता है । करण या हेतु में 'से' - राम चाकू से कलम बनाता है । अपादान में 'से' - वृक्ष से पत्ता गिरा । भय के हेतु में 'से' - मोहन उनसे डरता है । भक्ष्य वस्तु के व्यवहार में 'से' - दूध मक्खन से रोटी खाता है ।

संबन्ध विभक्तियाँ के, रे तथा ने होती हैं । कारक - विभक्ति 'ने' अलग है । 'रे' केवल उत्तम और मध्यम पुरुष सर्वनामों में लगती है और 'ने' केवल आप शब्द में । के विभक्ति सभी सर्वत्र लगती है : राम के एक लड़का है, राम के एक लड़की है, राम के एक लड़की है, मेरे चार गौएँ हैं । के, रे, ने विभक्तियों के प्रतिरूप हैं, क, र, न संबन्ध प्रत्य

हिन्दी में संबन्ध - विभक्ति तथा संबन्ध - प्रत्यय के विषय भिन्न हैं । 'तेरी चार गौएं है, यह प्रयोग ठीक नहीं, तेरी लड़की पढ़ती है ' यहाँ प्रत्यय है । हिन्दी की 'ह' संश्लिष्ट विभक्ति अवधि और ब्रज की 'हि' से आई है । इ लुप्त होकर 'ह' बाकी हुई । उस + ह = उसे, इस + ह = इसे बने । बहुवचन में अनुनासिक होकर उन्हें, इन्हें हो गए ।

कारक - विचार :- 'राम पानी पीता है'। इस वाक्य में 'राम' कर्ता है वह व्यक्ति कर्ता कारक हुआ । कर्ता का क्रिया से सीधा संबन्ध है, इसलिए वह कर्ता - कारक हुआ । 'पीना' क्रिया सकर्मक है, 'पानी' इसका कर्म है । अकर्मक क्रियाओं में कर्म की कोई चर्चा ही नहीं । क्रिया का फल कर्ता पर या कर्म पर रहता, इसलिए ये दो कारक बहुत महत्वपूर्ण हैं । क्रिया कहीं कर्ता के अनुसार और कहीं कर्म के अनुसार होती है । कहीं कहीं वह स्वतन्त्र रहती । लड़का घर जाता है । (कर्ता के अनुसार) लड़के ने रोटी खाई । (कर्म के अनुसार) हमने तुमको देखा । (स्वतन्त्र) तीसरा कारक है करण । क्रिया की निष्प में जिसकी सहायता कर्ता लेता है उसे करण कहते हैं । राम ने बाण से रावण को मारा । राम कर्ता है बाण करण । करण भी कारक है । राम ने गोविन्द को पुस्तक दी - गोविन्द सम्प्रदान है । पेड़ से पत्ता पृथ्वी पर गिरा - पेड़ अपादान और पृथ्वी अधिकरण ~~है~~ कारक है । कारकों के साथ लगनेवाली विभक्ति को कारक - विभक्ति कहते हैं । क्रिया से जिसका संबन्ध नहीं, उसे कारक नहीं कहते । 'राम का लड़का गोविन्द ~~और~~ 'मुझे' मिला था । इस वाक्य में मिलने से ~~न होता~~ का संबन्ध 'गोविन्द' और 'मुझ' से है । राम का संबन्ध मिलने से न होता । इसलिए 'राम' कारक नहीं । 'का' संबन्ध - प्रत्यय है । संबोधन भी पृथक कारक नहीं ।

भेद्य - भेदक भाव :- जैसे विशेष्य के अनुसार विशेषण रहता है वैसे भेद्य के अनुसार भेदक रहता है । विशेषण - मीठा फल, मीठे खरबूजे, मीठी रोटी । भेदक - तेरा फल, तेरे खरबूजे, तेरी रोटी । विशेषण विशेषता बतलाता है, पर ~~भेदक~~ 'तेरा लड़का' पृथक चीज़ है । तू अलग है और लड़का अलग । इसमें पितृ - पुत्र संबन्ध है । एक सर्वनाम और दूसरी संज्ञा, विशेषण नहीं।

नाम, सर्वनाम तथा विशेषण

भाषा में दो तरह के शब्द मुख्य हैं, संज्ञाएँ और क्रियाएँ । उपसर्ग और निपात [illegible]

वस्तु में ही रहती, इसलिए हिन्दी विशेषणों में पृथक कोई विभक्ति नहीं लगाते । हिन्दी में जाति, व्यक्ति तथा भाव इस प्रकार संज्ञा के तीन विभाग है । क्रिया - नाम भी भाववाचक संज्ञा होती है । धातुओं से बने शब्द, संज्ञा में नहीं आते । सत्व प्रधान शब्द ही संज्ञा होती है । भाव प्रधान इनसे भिन्न है । उनमें विभक्तियाँ भी नहीं लगती । लिंग वचन से रूप भेद होते आकारान्त विशेषणों के अतिरिक्त अन्यवर्णी विशेषण लिंग - वचन कारकों में एक रूप में रहते । संख्या शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप में ही होता है । इनका प्रयोग सर्वत्र एक रूप में होता है 'एक' संस्कृत का तद्रूप है, बाकी सब तद्भव होते है । सहस्र, लक्ष और कोटि का प्रयोग उसी रूप में भी होता है । संख्या - वाचक शब्दों से तद्धित प्रत्यय लगाकर कुछ विशेष रूप बनाते है। विशेषण, विधेय विशेषण तथा उद्देश्य विशेषण दो तरह के होते है । विशेषण से भाववाचक संज्ञा और भाववाचक संज्ञा से विशेषण बनाये जाते है । चातुर्य विशेषण से बनी भाववाचक संज्ञा है, पर उसमें से चातुर्यवान विशेषण बनाना मुश्किल है । यदि चतुर का ही प्रयोग होता संज्ञाओं से भी भेदक विशेषण बनाये जाते है - भारत से भारतीय और हिन्दुस्तान से हिन्दुस्तानी । जब क्रिया में प्रधानता हो तब वह कृदंत क्रिया होती और क्रिया पर जोर न हो तो कृदंत - विशेषण होता है । राम आया है (क्रिया), आया हुआ राम (विशेषण) ।

विशेषणों के भी विशेषण होते है । 'बहुत अधिक पढ़ना अच्छा नहीं होता '। 'अधिक' विशेषण है और 'बहुत' उसका विशेषण होता है । विशेषण के विशेषण को प्रविशेषण कहते है ।

सर्वनाम
- - - -

व्यवहार में सुगमता, स्पष्टता और सुन्दरता लाने के लिए जो संज्ञाओं के बदले आते है उन्हें सर्वनाम कहते है । 'मैं' और 'तू' उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष सर्वनाम है । इन्हें छोड़कर शेष सर्वनाम अन्य पुरुष होते है । 'मैं' का बहुवचन 'हम' और 'तू' का 'तुम' होता है । 'यह' समीपस्थ के लिए और 'वह' दूरस्थ के लिए प्रयुक्त है । उनका बहुवचन 'ये' और 'वे' है । वह और यह के व और य उ और इ हो गए और 'ह' व्यंजन का लोप होकर शब्दों की निष्पत्ति हुई । ब्रजभाषा में ये 'उस' और 'इस' होते । स्थानवाचक अव्यय यहाँ, वहाँ में हाँ तद्धित प्रत्यय है । ऐसा, वैसा आदि प्रकार - वाचक - विशेषण भी यह, वह आदि सर्वनामों से बने है । संस्कृत के ईदृश और तादृश ऐसा और वैसा हो गए ।

'आप' (मध्यमपुरुष) हिन्दी में आदरार्थक सर्वनाम है। 'तू' छोटों के लिए 'तुम' बराबर वालों के लिए और 'आप' बड़ों के लिए प्रयुक्त होते। 'आप' प्राकृत के 'अप्पो' से बना है। 'मैं' आप कर दूँगा आदि में 'आप' शब्द भिन्न है। स्वयं या खुद के अर्थ में इसका प्रयोग होता है। यह विशेषण है, सर्वनाम नहीं। इसे अव्यय भी कह सकते हैं। संस्कृत के आत्मन् से यह आया है। स्वयम् के अर्थ में आत्मन् – अप्पणो – अपना आया है। सर्वनाम 'आप' दोनों वर्गों में सम्मान रखता है। इसका प्रयोग कभी-कभी अन्य पुरुष में भी आता। यह संख्या का बहुत विवक्षित हो तो स्पष्टता के लिए लोग लगा देते हैं। हिन्दी में 'क्या' प्रश्नार्थ अव्यय है, 'कुछ' शब्द भी अव्यय है। दोनों विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त होते। 'कौन' प्रश्नार्थक सर्वनाम है। कोई संस्कृत के कोऽपि का रूपान्तर है।

अव्यय और उपसर्ग

विविध वर्गों में विभिन्न शब्दों का संकेत करके उद्देश्य विधेय नाम के दो भागों में व्यवस्थित किया गया और उद्देश्य भाग के शब्दों को नाम तथा सर्वनाम संज्ञा देकर उनके विशेषण बतलाए गए। विधेय अंश उत्तरार्द्ध में आएगा। इस तरह शब्द-समूह बाँट देने पर भी कुछ शब्द बच जाते हैं। विविध वर्गों में ये आते हैं और भाषा में प्रमुख स्थान रखते हैं। ऐसे शब्द हैं आह, ओह, अहा, हाँ, तो, भी आदि। इन्हें अव्यय कह सकते हैं।

'' न व्येति विविध विकार न गच्छतीत्यव्ययम्।'' संसार की सभी भाषाओं में अव्यय होते हैं। क्रिया विशेषण भी अव्यय होते हैं। जब-तब, यहाँ-वहाँ आदि क्रिया विशेषण नहीं हैं। इनका उद्गम सर्वनामों से है। ये समयवाचक तथा स्थानवाचक अव्यय होते हैं। क्या, तो, सा, यों, क्यों, न, नहीं आदि हिन्दी के अपने अव्यय होते हैं। संस्कृत के सदा, सर्वत्र, प्रायः आदि अव्यय उन्हीं रूपों में प्रयुक्त होते हैं। 'न' साधारण निषेध है और नहीं दृढ़ता को दिखाती है।

उपसर्ग :- अव्यय स्वतन्त्र हैं, उपसर्ग किसी शब्द के साथ विशेषार्थ को दिखाने के लिए प्रयुक्त होते हैं। यास्क ने कहा '' उपसर्ग - नियातन ''। हिन्दी के अपने उपसर्ग बहुत कम हैं - 'उ' और 'नि' दो ही होते हैं। संस्कृत के उपसर्ग सहित शब्द उसी रूप में प्रयुक्त होते हैं।

यौगिक शब्दों की प्रक्रियायें :- भाषा में शब्द दो तरह के होते है - रूढ और यौगिक । पेट किस अंग को कहते है हम सब समझते है, परन्तु क्यों उसे पेट कहते है यह हमें जब तक मालू न हो हमारे लिए यह शब्द रूढ ही रहेगा । दवात रूढ शब्द है, पर मसी - पात्र यौगिक शब्द है । यौगार्थ की दृष्टि से व्याकरण में कृदन्त, तद्धित तथा समास के तीन प्रमुख प्रकरण ।

कृदंत :- हिन्दी के अधिकांश क्रियापद कृदन्त है । तिङन्त बहुत कम है । केवल धातु का अ भाव कहलाता है जिसमें कोई काल, पुरुष - भेद या वचन - भेद नहीं - पढना, जाना, आना आदि से अन्य कोई अर्थ सामने नहीं आता, न पुरुष, न वचन, न लिंग, न कारक । ये भाववाचक संज्ञाएं कहलाती है । तद्धित भाव वाचक संज्ञाएं एकवचन में रहती है । पंडित का भाव पांडित्य सदा एकवचन में रहता और कर्म भेद भी नहीं रहता । कृदंत भाववाचक संज्ञाएं जब स्त्रीलिंग होती है तब 'न' में पुं. विभक्ति नहीं होती । जलन, उडान, पहचान आदि । ' पुं. विभक्ति लगाने पर पुल्लिंग होता है- जलना, उडना पहचानना । इसब रूपये बचे हो गए 'बचे' विधेय विशेषण है । बचं में आ लगाकर बचा भाववाचक संज्ञा बनाई जाती है । कभी-कभी रूढ शब्द में कोई नए योगार्थ की कल्पना करके यौगिक बनाए जाते है । आम - (फल रू) आम लोग (यौगिक) भावप्रधान 'त' प्रत्यय सदा पुल्लिंग एकवचन में रहता - चलते चलते मैं थक गया । 'य' प्रत्यय भूतकाल का कर्तृप्रधान, कर्म - प्रधान और कभी - कभी भावप्रधान भी होता काशी गए हुए लडकों ने अपना काम कर लिया । (कर्तृ प्रधान) ये चित्र शकुन्तला के बनाए हुए (कर्मप्रधान) 'त' तथा 'य' आदि कृदंत - प्रत्यय हिन्दी, ब्रजभाषा, राजस्थानी और अवधी में समान है ।

तद्धित प्रकरण : संज्ञा, विशेषण और अव्यय से शब्दान्त बनाने की पद्धति को तद्धित कहते है । प्रत्ययों का भी उद्भव, तिरोभाव और रूपान्तर होता है । 'सुन्दरताई' शब्द में ताई भाववाचक प्रत्यय है । हिन्दी में जो आ ई प्रत्यय देखते यह शायद ताई प्रत्यय का ही रूपान्तर होगा- चतुराई, निठुराई आदि । 'इय' प्रत्यय तद्धित और कृदन्त दोनों में आते है । पर कृदंत 'इय' विधि आदि बताता तो तद्धित 'इय' संबन्ध बताता है । संस्कृत शब्दों में जो ष्य प्रत्यय होता वह भाषा में 'ई' होता - बनौषी । संस्कृत के विद्वत्व और वैदुष्य के स्थान हिन्दी में विद्वत्ता शब्द चलता है । हिन्दी की यौगिक प्रक्रियाओं में मूल का दीर्घस्वर ह्रस्व हो जाता -

दो - धारा - दुधारा । आई प्रत्यय कहीं - कहीं भाव होता - मिठाई । कहीं - कहीं पट दे कटपाहट । 'त्व' और 'तल' संस्कृत के तद्धित प्रत्यय है । ये संस्कृत शब्दों में ही मिलाए जाते हैं हिन्दी में संस्कृत से तद्रूप प्रचलित हैं । [illegible] - [illegible] बनाकर हिन्दी में प्रयुक्त होते - [illegible] वान प्रत्यय स्वरांत करके धनवान गाड़ीवान आदि शब्द बनाये जाते हैं । कहीं 'वान' का 'व' ला बनाकर पुं प्रत्यय 'वाला' लगाते हुए वाला का प्रयोग होता - गाड़ीवाला, मिठाईवाला । 'आ' प्रत्यय अनेक है - प्यासा, भूखा, मैला, प्यारा । साथ से साथी भाववाचक संज्ञा है । साथी विशेषण भी हो सकता है - साथीपन । साथी शब्द तद्धित प्रत्यय जैसे प्रयुक्त होते - लोकसाथी, मादिरसाथी आदि । बिल्ली शब्द बिडाल शब्द से आया है । ड के लिए ल और या को ई आदेश हुआ । स्वभाव के अर्थ में [illegible] शब्द तद्धित है । [illegible] का [illegible] और उसमें [illegible] प्रत्यय जुड़कर यह शब्द हुआ । ए, उ, कि से सा समाहित करके ऐसा, वैसा, कैसा रूप हो गए । ये तद्धित नहीं, पर इधर, उधर, किधर आदि का धर तद्धित प्रत्यय है । हाँ प्रत्यय मिल यहाँ, वहाँ आदि अव्यय बनाए गए हैं ।

तिथियों के नाम प्रथमा, द्वितीया आदि संस्कृत शब्द हिन्दी में प्रचलित हैं । हिन्दी तीज , चौथ आदि 'थ' तद्धित प्रत्यय मिलकर आई है । घर प्रत्यय से विशेषण बनाये जाते हैं जैसे [illegible] । संस्कृत के 'गुण' शब्द हिन्दी में गुना प्रत्यय बनाया - दुगुना, तिगुना आदि । हिन्दी ने कई विदेशी प्रत्यय स्वीकार किए हैं - 'दार' और 'बाज' हिन्दी में खूब प्रचलित हैं दुकानदार, दगाबाज । शब्द का अन्त्य 'ह' लुप्त हो जाता जैसे - [illegible] ।

भेदक और विशेषण

'ई' प्रत्यय प्रायः विशेषता ही प्रकट करता है, जब कि क, न, र संबन्ध भाव प्रकट करते हैं । ये भेद बनाते हैं - मेरा घोड़ा, अपना घर, आपका घर । ये विशेषण - विशेष्य नहीं, भेदक - भेद्य हैं । 'क' का प्रयोग अर्थ विशेष में भी होता है - मायका मां का घर यह तद्धित है । 'मायका' में तुं विभक्ति तथा ई का या होकर मायका हुआ । पर 'पीहर (पिता का घर) नैहर (ज्ञाति का घर) सामासिक शब्द हैं । संस्कृत के 'गृह' से 'र' 'ज्ञाति' से 'न' स्वीकार किया गया ।

समास

अनेक शब्द मिलकर एक पद जब बन जाते हैं तो वह समास कहलाता है । यह संज्ञा का संज्ञा के साथ, संज्ञा का विशेषण के साथ, विशेषण का विशेष्य के साथ, क्रिया का क्रिया के साथ, धातु का धातु के साथ, संज्ञा का धातु के साथ, संज्ञा का अव्यय के साथ और अव्यय का अव्यय के साथ होता है । समास 1) अव्ययीभाव 2) तत्पुरुष 3) बहुव्रीहि और 4) द्वन्द्व चार हैं । कर्मधारय तत्पुरुष का और द्विगु कर्मधारय का भेद ही है । हिन्दी में तत्पुरुष समास का प्रयोग अधिक होता, बहुव्रीहि का कम । तत्पुरुष में संबन्ध तत्पुरुष का ही अधिक चलन होता है । 'आ' हिन्दी का पुं प्रत्यय तथा 'ई' स्त्री प्रत्यय समास में यथास्थान काम आता है ।

क्रिया - विशेषण

वाक्य में क्रिया की प्रधानता होती है । उसके पीछे बाकी सब शब्द चलते हैं । संस्कृत की व्यवस्था के अनुसार हिन्दी में भी क्रिया - विशेषण पुल्लिंग एकवचन होता है । लड़का अच्छा गाता है ., लड़की अच्छा गाती है, लड़के अच्छा गाते हैं । पर, धोती कपड़े अच्छे धोता है इसमें अच्छे ' क्रियाविशेषण है । कर्म के अनुसार इसका प्रयोग हुआ, पर विधेय विशेषण नहीं है । एक ही शब्द कभी - कभी संज्ञा - विशेषण और कभी कभी क्रिया विशेषण हो जाता है - अच्छा, मीठा आदि ।

वाक्य का गठन

हिन्दी में वाक्य का गठन अत्यन्त सीधा - सादा और मौलिक है । साधारण वाक्य में पहले कर्ता होता फिर क्रिया । कर्म कर्ता के अनन्तर और क्रिया के पूर्व होता है । कर्म पर अधिक जोर देना हो तो उसका पर - प्रयोग होता - राम पढ़ेगा वेद । करण का प्रयोग कर्ता के अनन्तर होता है । सम्प्रदान का प्रयोग भी कर्ता के अनन्तर होता । पर सम्प्रदान पर जोर देने को पर - प्रयोग किया जाता है जैसे - "राम ने पैसा दिया गरीब को और धक्का दिया उस दुष्ट को । अपादान का प्रयोग कर्ता के भी पहले होता है - फूलों से सुगन्ध आ रही है । अधिक बल देने को पर - प्रयोग होता । अधिकरण का प्रयोग कर्ता के अनन्तर होता है। बल देने को पर - प्रयोग भी होता है ।

वाक्य के उद्देश्य और विधेय दो भाग होते हैं। जिसके बारे में कुछ कहता वह उद्देश्य है। उसके बारे में जो कुछ कहता वह विधेय है। पहले उद्देश्य होना चाहिए, फिर विधेय। राम चोर है - इसमें चोर विधेय विशेषण है। इसलिए पर - प्रयोग हो गया। लघु का प्रयोग पूर्व और गुरु का अनन्तर होता है - स्त्री-पुरुष, नर - नारी। बड़े-छोटे के अनुसार पद - प्रयोग होता - युधिष्ठिर और अर्जुन। अधिक मूल्यवान पहले और कम मूल्य वाले - सोना - चाँदी। अर्थ के अनुसार शब्दों का प्रयोग होना चाहिए - इच्छा और सुधा, पक्ष और पङ्क, रत्न तथा सोना - चाँदी बहुवचन का प्रयोग अन्त में होना चाहिए। वाक्य में जितने पद आवश्यक हैं उतने ही होने चाहिए। क्रिया से कर्ता का बोध होनेवाले स्थान पर कर्ता को कहने की आवश्यकता नहीं। जाऊँगा - 'मैं' कर्ता का निर्देश करना नहीं।

वाक्य में मैत्रक का प्रयोग सावधानी से करना चाहिए। 'आपके आज्ञानुसार' गलत प्रयोग है, 'आपकी आज्ञानुसार' ठीक है। आज्ञा स्त्री लिंग है, अनुसार तो ऐसा नहीं। प्रयोग में पूर्व पर - प्रयोग का विचार रखना है। जिस शब्द में अभीष्ट अर्थ देने की शक्ति हो उसी का प्रयोग करना चाहिए। अप्रचलित शब्दों का प्रयोग ठीक नहीं है। ग्राम्यता तथा अश्लीलता जैसे दोषों से भी बचना चाहिए। विशेषण - विशेष्यों का प्रयोग भी ध्यान से करना चाहिए। पदों की पुनरुक्ति नहीं होनी चाहिए। शब्दों के लिंग और वचन भी ठीक प्रयुक्त करना चाहिए। सर्वनामों के प्रयोगों में सावधान रहना चाहिए। ''उन्होंने हिन्दी में विशेष योग्यता प्राप्त की। उनकी सम्मति है - - - - -।'' ऐसा प्रयोग गलत है। अंग्रेजी शब्दों को जब लिखते तब वर्ण भेद होता है, उच्चारण के अनुसार लिखा जाता है। इसलिए गलती मानना ठीक नहीं। व्याकरण के शासन के पहले जो प्रयोग हुआ उन्हें पूर्व - प्रयोग कहना अच्छा है। कविताओं में ऐसे शब्द खूब देख पाते। उनको पूर्व-प्रयोग कहकर उसी रूप में रखना ही अच्छा है। अनुनासिक शब्दों पर चिह्न लगाना ही है। विभक्ति का तथा संबन्ध प्रत्ययों का प्रयोग भी सावधानी से करना चाहिए। 'राम के लड़का हुआ'। 'के' संबन्ध विभक्ति

विराम - चिह्न :- निर्देशक या उद्धरण - सूचक चिह्न (:-) के प्रयोग करने पर उद्धरण - चिह्न का प्रयोग नहीं होता। किसी के वाक्य को ज्यों का त्यों उद्धृत करने में केवल निर्देशक चाहिए। विराम - चिह्नों का उचित प्रयोग वाक्य के अर्थ को चमका देता है। वाक्य के भी

भेद है - समास वाक्य और संयुक्त - वाक्य । संयुक्त वाक्य में कोई अंश प्रधान या अप्रधान नहीं रहता । दोनों बराबर होते हैं ।

उत्तरार्ध

क्रिया प्रकरण :- क्रिया के मूल रूप को धातु कहते हैं । हिन्दी में सभी धातु स्वरान्त हैं । संस्कृत के व्यंजनान्त को स्वरान्त बनाकर हिन्दी में प्रयुक्त की जाती है । पठ्>पढ़, उपविश>बैठ, प्रविश>पैठ । हिन्दी के रूप गठन में सहित क्रियता होती है । हिन्दी में धातु का बड़ा महत्व है । भाषा का उद्भव धातुओं से हुआ । जैसे मनुष्य की विकास - कहानी युगों की होती है वैसे भाषा की विकास - कहानी भी युगों की होती है । जिसमें ध्वनि 'पद' से वाक्य का अभिव्यक्ति हुआ ।

हिन्दी में कृदंत - क्रियाएँ अधिक हैं । तिङन्त कम । पर दोनों के सम्मिलित रूप अधिक प्रचलित हैं । 'पढ़ता है' में 'पढ़ता' कृदंत है और 'है' तिङन्त । पुरुष और वचन तिङन्त क्रियाओं से पुरुष - प्रतीति होती है : 'पढ़ता हूँ', हूँ - उत्तमपुरुष है, इसलिए 'मैं' कहे बिना भी पुरुष का निश्चय होता । लिंग प्रतीति कृदंत में और वचन - भेद दोनों अंशों में समान रहता है । (लड़के पढ़ते हैं)

संस्कृत जैसे हिन्दी में भी सिद्ध और साध्य क्रियारूप होते । सिद्ध निश्चित है और साध्य अनिश्चित । हिन्दी के वर्तमान और भूतकाल सिद्ध हैं, पर आज्ञा तथा विधायक साध्य होते हैं । संभावना, प्रार्थना, आशीर्वाद तथा भविष्यत् अनिश्चित हैं ।

धातुओं के प्रकार : कृदन्त क्रियाएँ बहुत सरल हैं । इसलिए हिन्दी ने कृदन्त को ही प्रधानता अपनाया । तिङन्त तो जटिल होता है । यथा कार्यं कृतं> मैं ने कार्य किया, त्वया कार्यं कृतम्> तूने कार्य किया । यह सरलमार्ग है । हिन्दी में 'ने' लगाने से बेड़ा पार हुआ । वर्तमान का 'त' प्रत्यय भूतकालिक 'य' बन गया । वर्तमानकाल ने 'त' स्वीकार किया और भूतकाल ने 'य'। वर्तमान काल के 'गाता' में अर्थ - भेद होता है । इस तरह अनेक धातुरूपों की व्यवस्था हुई ।

वाच्य : क्रिया से निकटतम दो ही कारक होते हैं : कर्ता और कर्म । क्रिया का प्रभाव और फल इन्हीं पर पड़ते हैं । जब कर्ता के अनुसार क्रिया रूप ग्रहण करती है तो कर्तृवाच्य और

कर्म का अनुगमन करने पर कर्मवाच्य कहलाती है। कर्तृवाच्य को कर्तरि प्रयोग और कर्मवाच्य को कर्मणि प्रयोग कहते हैं। जहाँ क्रिया न कर्ता के अनुसार चलती और न कर्म के उसे भाववाच्य कहते हैं। हिन्दी क्रियाएँ तिङन्त, कृदंत और तिङन्त - कृदंत तीन रूप की होती हैं। विधि, आदेश, प्रार्थना, प्रश्न की व्यंजना तिङन्त करती है। 'राम पढ़े', 'मैं जाऊँ'? इन क्रियाओं में कर्ता या कर्म के लिंग - भेद का कोई अन्तर नहीं पड़ता। सत्तार्थक 'ह' धातु से वर्तमान 'ह' प्रत्यय होता है। संभावना, शुभाशंसा आदि की व्यंजना 'हो' से होती है। वर्तमान कालिक 'इ' प्रत्यय 'ह' से होता है। अन्य सब धातुओं का काम भी इसी से चलता है: करता है, पढ़ता है। मध्यम पुरुष के एकवचन में 'ई' 'उ' हो जाता है और गुणसन्धि होकर 'हो' बन गयी 'तुम बड़े चतुर हो। यहाँ हो 'ह' का रूप है, हो धातु का नहीं। वर्तमान का प्रत्यय 'ह' अन्य किसी भी धातु से होता ही नहीं। उत्तम पुरुष के एकवचन में 'ह', 'ऊँ' हो जाता है और धातु ~~से होता ही नहीं। उत्तम पुरुष~~ के 'अ' का लोप हो जाता है। मैं नहीं हूँ, तुम नहीं हो। होऊँ में हो धातु से संभावनार्थक पृथक प्रत्यय है। वर्तमान 'ऊँ' से यह अलग है। वर्तमानकालिक 'ह' का रूपान्तर है: राम ... रहा है। बहुवचन बनाने के लिए 'ए' को अनुनासिक कर देते हैं: 'लड़के हैं,' 'हम हैं'। संस्कृत में 'न' से बहुवचन बनता है, हिन्दी में स्वर को ही अनुनासिक कर देते: पठति > पढ़ता है, पठन्ति > पढ़ते हैं। क्रिया का पूर्वांश कृदन्त है, इसलिए वचन संज्ञा - पढ़ता एकवचन और पढ़ते बहुवचन होते हैं। यह बहुत सीधा मार्ग है। जनपदीय बोलियों में लगता है कि अपेक्षा 'लड़का है गा' चलता है। 'ग' निश्चयार्थ का प्रत्यय है।

'ए' विधि का द्योतक है। यह 'पठेत्' आदि का 'एय' प्रत्यय का रूपान्तर है। 'य्' का लोप करके 'ए' तद्धित प्रत्यय हिन्दी ने अपनाया और पश्चात में 'ई' प्रत्यय मिलाकर पढ़ाई शब्द बनाया।

कृदंत क्रियाएँ: हिन्दी में वर्तमान और भूतकाल की सब की सब क्रियाएँ कृदंत हैं। केवल ... तिङन्त होता है। 'लड़का गया', लड़की गयी'। कृतम के कृत को 'किय' रूप मिला, इसी 'य' को हिन्दी ने भूतकाल का प्रत्यय मान लिया। पुं विभक्ति लगाकर किया, स्त्रीलिंग की

पढाई, सिखाई इत्यादि प्रयोगों में 'आई' कृदन्त - भाववाचक - प्रत्यय है । पढा, सिखा आदि में 'य' लुप्त है । आकारान्त धातुओं में 'य' रहता, ईकारान्त का अन्त्यस्वर ह्रस्व होता पी पिया, एकारान्त भी ह्रस्व होता : ले लिया ।

धातुओं के प्रेरणार्थ में आकारान्त हो जाते : पढा, उठा, बैठा । इनके अनन्तर 'य' लुप्त नहीं होता : पढाया, उठाया, बिठाया । इस 'य' प्रत्यय की प्रयोग - पद्धति प्रायः संस्कृत की सी है । संस्कृत में अकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक 'त' प्रत्ययान्त रूप कर्तृवाच्य होते । यह कर्ता के लिंग वचन का अनुसरण करता है : बालक : सुप्तः, बालिका सुप्ता, बालकाः : सुप्ताः : लडका सोया, लडकी सोयी, लडके सोये । सकर्मक क्रियाओं के प्रयोग संस्कृत में कर्मवाच्य होते है। कर्म के अनुसार क्रिया के लिंग - वचन रहते है : सीतया ग्रन्थः पठितः, रामेण संहिता पठिता सीता ने ग्रन्थ पढा, राम ने संहिता पढी । हिन्दी को 'ने' प्रत्यय संस्कृत 'एन' से बना है। सामान्य भूत प्रकट करनेवाला 'य' पूर्णभूत में 'था' होता है । राम गया था । पूर्णभूतकाल का प्रत्यय 'स' है । यह 'ह' से ही होता, त से ह मिलकर 'था' हुआ : हुआ था, हुए थे, हुई थी ।

'गा' भविष्यत् का निश्चयार्थक प्रत्यय है : होगा, होंगे । 'ना' भविष्यत् आज्ञा तथा अवश्य कर्तव्यता या क्रिया की अनिवार्यता दिखाता है : 'तुम जाना और कहना', यह आदर सूचक प्रार्थ में आता है । 'गा' लगाने से भविष्यत् काल आ जाता है : 'जाएगा और कहेगा'। यह प्रत्ययान्त कर्ता आप होते है । राम को सब काम करने है, मुझे अभी संध्या करनी है, कुतिया को आज शिकार बनाना है, इन में क्रिया कर्म के अनुसार होती है । मूल - क्रियाएं कृदन्त कर्मवाच्य और सहायक से तिङन्त कर्मवाच्य होती है ।

क्रिया की वर्तमानता प्रकट करने के लिए 'रहा' सहायक क्रिया का प्रयोग होता । 'राम रोटी खा रहा है', सीता कपडे धो रही है, तुम सो रहे हो । भूतकाल में था, थे, थी और भविष्य के लिए होगा, होंगे, होगी, होंगी लगायी जाती है ।

हेतुमद्भूत : भूतकाल में किसी किसी एक क्रिया के न होने के कारण दूसरी क्रिया न हुई हो तो 'त' प्रत्यय का प्रयोग होता है । त + अ ता, ते, ती : सावधानी से चलते तो ठोकर न लगती । 'त' एक भाववाच्य प्रत्यय भी है, पुल्लिंग में ता बन जाता और आ को 'ए' होता । 'सीता से चलते नहीं बनता'। संस्कृत के गतवान् गतवती जैसे वाला, वाली

प्रत्यय हिन्दी में आये है : जानेवाला, जानेवाली। हिन्दी में भी द्विकर्मक क्रियाएँ होतीं, राम ने गोविन्द से कोई बात पूछी। 'से' विभक्ति करण, अपादान, कर्ता तथा कर्म जैसे कई कारकों में आती है। क्रिया धातु से 'कर' जोड़कर पूर्वकालिक क्रियाएँ बनायी जातीं : 'पुस्तक पढ़कर फल खायेगा'। 'कर' धातु के आगे 'के' रहता है : करके। तत्कालिक क्रिया को क्रियार्थ क्रिया कहते है : 'राम श्री पढ़ने को चला गया'। यह संस्कृत के 'तुमुन्' प्रत्यय का स्थान लिया है। हिन्दी में 'न' प्रत्यय पु विभक्ति लगाकर भी बनाते है। इसको ने करके कभी आतीं, गुरुवी और राजनीं में प्रयुक्त होती।

वचन विवेचन : कृदंत क्रियाओं का वचन कर्ता या कर्म के अनुसार होता। लड़का गया, लड़के गये। 'लड़कियाँ गयी हैं' में भी वचन को दिखाती है। 'लड़कियाँ गयी हैं' कह सकते। कहीं कहीं अन्तिम क्रिया से नहीं मुख्य क्रिया से वचन सूचित होता : मुझे पुस्तकें पढ़नी चाहिए। 'इक' प्रत्यय भाववाचक लिङ्ग - पद्धति का होता, इसलिए पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में एक जैसा रहता है। अनेक और अनेकों के प्रयोग में अनेकों का प्रयोग साधु होता जैसे सैकड़ों हजारों आदि। हिन्दी की कई धातुएँ संस्कृत से आयी है। मूलभाषा से भी कई धातुएँ आयी है।

नामधातु : हथियाना और अटियाना के साथ और भाषी संज्ञाएँ है, ये नामधातु होते हैं। नामधातु बनाने के लिए हिन्दी में 'आ' प्रत्यय लगाया जाता है।

उपधातु :- मूलधातुओं का विकसित और संकुचित रूपों को उपधातु कहते हैं। विकसित रूप से प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनतीं और संकुचित रूप से कर्मकर्तृक क्रियाएँ बनती है। प्रेरणा या द्विकर्म क्रियाएँ : 'माँ बच्चे को दूध पिलाती है' यहाँ दूध कर्म है। 'बच्चा' तो दूध पीनेवाला है। पर उसका प्रयोग कर्म जैसा है, इसलिए यह गौण कर्म है। कर्म के जैसे कर्ता भी मुख्य कर्ता और गौण कर्ता होता है। बच्चा मुख्य कर्ता या गौण कर्म है। माँ गौण कर्ता है। गौण कर्ता को प्रयोजक कर्ता कहते हैं। इसे योजक - योज्य कह सकते। माँ योजक और बच्चा योज्य इस तरह की क्रिया को प्रेरणा कहते है। सिलाना, जोतना आदि प्रेरणार्थक नहीं। यहाँ मूलधातु सी और जोत है : कपड़े सिलते है, गट्ठर जोतते हैं, इनमें कपड़े और गट्ठर वास्तविक कर्ता नहीं। वास्तविक कर्म कर्ता की तरह प्रयोग हुआ है। इन्हें गौण कर्ता समझ सकते हैं। इस प्रक्रिया को कर्मकर्तृक कहते हैं। संस्कृत में पठति, 'गतति' मूलक्रियाओं के प्रेरणा रूप पाठयति, पातयति होते हैं। हिन्दी में मूलधातु का प्रथम स्वर यदि दीर्घ हो तो

हृस्वकर, मूलधातु का प्रथम स्वर हृस्व हो तो धातु और प्रेरणा प्रत्यय 'आ' के बीच में ल् या व् लगाकर प्रेरणार्थक बनाते है, जागना जगाना। सुलाना (यहाँ भी मूलधातु का उपधातु सु बँधवाना। सकर्मक क्रियाओं में 'व' आगम करके दूसरा प्रेरणार्थ बनाते है : पढवाना। है, हो, पा, सकना, रुचना, आना, जाना जैसी क्रियाओं के प्रेरणा रूप नहीं होते। पर चल व, पहुँच के प्रेरणा रूप होते है। दूसरा प्रेरणार्थक त्रिकर्मक क्रिया होती है : माँ नौकर से बच्चे दूध पिलवाती है।

संयुक्त क्रियाएँ : लेना, देना आदि सहायक क्रियाएँ है। पडना, लगना, उठना बैठना, चुकना, गुजरना आदि भी सहायक क्रियाएँ है। सहायक क्रियाएँ मिलाकर संयुक्त क्रियाएँ बनायी जाती क्रिया की द्विरुक्ति : 'राम चलते-चलते थक गया'। 'राम चलता-चलता थक गया' भी ठीक समानार्थ क्रिया की पुनरुक्ति होती है जैसे समझ-बूझकर, देख-भालकर, पूछ-ताछ आदि। परिशिष्ट हिन्दी की बोलियाँ विशेषकर पंजाबी का विवरण और व्याकरण तथा भाषाविज्ञान का संबन्ध दिया गया है।

निष्कर्ष : किशोरी दास वाजपेयी का 'हिन्दी शब्दानुशासन' संस्कृत व्याकरण-पद्धति के अनुसार लिखा हुआ हिन्दी व्याकरण है। लेखक का मत है कि हिन्दी भाषा की उत्पत्ति तीसरी प्राकृत हुई है। हिन्दी के व्याकरणिक नियम संस्कृत व्याकरण पर आधारित है। ए और ओ का ह्रस्व रूप उन्होंने स्वीकार किया है। वे कहते है 'तुलसी के रामचरित मानस में 'ए' तथा 'ओ' लघु उच्चारण पद-पद मिलते हैं[1]। अतिशय और चौथ, अर तथा मृदु में 'ह' जुडकर बन गये इनका उच्चारण स्थान उन्हीं के स्थानों के साथ कण्ठ भी होता है। 'अकुह विसर्जनियानां कंठः' इत्यादि पाणिनीय सूत्रों को पूर्ण रूप से स्वीकार किया है। 'त' प्रत्यय में 'ह' मिलाकर 'था' उसमें लिंग प्रत्यय जोडकर था, थे, थी की व्युत्पत्ति दिखायी गयी है। संस्कृत संधि के अनुसार 'सन्धि' दिखायी गयी है, हिन्दी में होनेवाला विकार भी दिखाया गया है। उन्होंने संस्कृत के आधार पर छह कारकों को स्वीकार किया है। संबन्धकारक नहीं विभक्ति मात्र है। विशेषणों विशेषण को 'प्रविशेषण' का नाम दिया है। उनके अनुसार कलकत्ते से ठीक है कलकता से नहीं उत्तरार्ध में क्रियाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है।

---

1. हिन्दी शब्दानुशासन पृ : 88.

उन्होंने अपने ग्रन्थ में हर एक बात पर विस्तृतता के साथ विचार किया है। अपने सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए काफी उदाहरण दिये गये हैं।

व्याकरण प्रदीप

रामदेव का 'व्याकरण प्रदीप' एक आधुनिक परीक्षोपयोगी व्याकरण ग्रन्थ है। इसका पहला प्रकाशन 1938 में हुआ। इसके चार खंड होते हैं : वर्णविचार, शब्दविचार, वाक्यविचार और भाषाविज्ञान। ग्यारह स्वरों और तैंतीस व्यंजनों को स्वीकार किया गया है। कुछ नयी विकसित ध्वनियों को दिखाया है : क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ड़ और ढ़। वर्णों के वर्गीकरण, उच्चारण प्रयत्न तथा स्वराघात आदि 'हिन्दी व्याकरण' के अनुसार ही दिये गये हैं। सन्धिकार्य भी उसके अनुसार रखता है।

शब्दविचार में व्युत्पत्ति के आधार पर रूढ़ि, यौगिक, योगरूढ़ि का भेद भण्डार के अनुसार तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी शब्दों का परिचय सोदाहरण दिखाया गया है। अर्थ की दृष्टि से वाचक, लाक्षणिक, और व्यंजक के भेद दिखाये हैं। शब्दों का आठ विभाग माना गया क्रिया विकारी और अव्यय अविकारी होते हैं। समुच्चय बोधक योजक और विभाजक और दो तरह के होते हैं। संज्ञा के विभाजन में अंग्रेज़ी के अनुसार द्रव्यवाचक और समूहवाचक को भी स्वीकार किया है। लिंग - वचन संबन्धी सिद्धान्तों को उदाहरण सहित दिये गये हैं। आठ कारक स्वीकार किये गये हैं। शब्दों में कारक मिलाकर काफी उदाहरण भी प्रस्तुत हैं। विशेषण के भेद सोदाहरण दिखाया गया है। कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य तथा भाववाच्य दिए हुए हैं। क्रिया - विशेषण, काल, स्थान, परिमाण तथा रीतिवाचक भी दिए गए हैं। विस्मयादि बोधक की सूची दी गयी है। समासों के सामान्य रूप दिखाकर ~~चार विभाग और~~ द्विगु और कर्मधारय का तत्पुरुष का भेद बताया गया है। उपसर्ग और प्रत्यय संस्कृत, हिन्दी, फारसी के उदाहरण के साथ दिये हैं।

वाक्यरचना में लेखक के विचार नीचे दिए जाते हैं - वाक्य के दो खंड - उद्देश्य और विधेय होते हैं। अर्थ के अनुसार वाक्यों का आठ विभाग, रचना के आधार पर सरल, मिश्रित और संयुक्त, उपवाक्यों में संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया विशेषण, उपवाक्य वाक्यरचना का क्रम आदि 'हिन्दी व्याकरण' के अनुसार दिये गये हैं।

अव्ययों, उच्चारण साम्यक, अर्थ - भेदक, विपरीतार्थक शब्दों की सूची दी गयी है । पदपरिचय और वाक्यविग्रह के नमूने अभिव्यक्त किये गए हैं । चिन्हों को दिखाया है, मुहावरों तथा लोकोक्तियों को अकारक्रम से अर्थ और प्रयोग के साथ दिखाया है ।

अंत भाग में भारत-यूरोपीय परिवार, भारत - ईरानी उपकुल से आधुनिक आर्यभाषाओं पर प्रकाश डालकर हिन्दी की उत्पत्ति दिखायी गयी है । हिन्दी की उपभाषाओं - राजस्थानी, अवधि, ब्रजभाषा के रूपभेदों को दिखाया है । हर अध्याय में अभ्यास भी दिया गया है । यह परीक्षोपयोगी व्याकरण ग्रन्थ माना जा सकता है ।

आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना

डा. वासुदेवनन्दन प्रसाद का लिखा हुआ व्याकरण है 'आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना'। उत्तर और दक्षिण भारत के कई राज्यों में परीक्षोपयोगी व्याकरणग्रन्थ के रूप में यह खूब प्रचलित है । इसके व्याकरण - भाग में ग्यारह और रचना - भाग में तेरह अध्याय होते हैं। हर अध्याय के अन्त में अभ्यास भी दिया गया है । उनके विचार नीचे संगृहीत हैं - पहले अध्याय में भाषा तथा हिन्दी का सामान्य स्वरूप दिखाया गया है । भाषा सांकेतिक संकेत है । इसके तीन रूप मिलते हैं (1) बोलियाँ (2) परिनिष्ठित भाषा (3) राष्ट्रभाषा । हिन्दी की उत्पत्ति पाली - प्राकृत-अपभ्रंश से हुई है । हिन्दी व्याकरण संस्कृत व्याकरण पर आधृत होते हुए भी अपनी कुछ स्वतन्त्र विशेषताएँ रखता है ।

दूसरे अध्याय में ध्वनि विचार है । हिन्दी में ग्यारह स्वर और चालीस व्यंजन हैं । व्यंजनों में 25 स्पर्श 5 अन्तस्थ 5 ऊष्म क्ष, त्र, ज्ञ तीन संयुक्त व्यंजन, ड़, ढ़ दो द्विगुण व्यंजन और अनुस्वार, विसर्ग होते हैं । स्वर ह्रस्व, दीर्घ और संयुक्त हैं । ड़ और ढ़ के उच्चारण स्थान क्रमशः : मूर्धा और जीभ का अगला भाग उलटकर मूर्धा में लगाकर होता है । अनुनासिक और अनुस्वार चिह्नों में अन्तर है ।

सन्धि : स्वरसन्धि का विभिन्न विभाग संस्कृत व्याकरण - पद्धति के अनुसार किया है । व्यंजन तथा विसर्ग सन्धि का नियम भी उसी प्रकार दिया गया है । सन्धि रूप की एक लंबी सूची दी गई है ।

तीसरे अध्याय में लिपि विन्यास का विवरण है । (1) विभक्ति प्रत्यय सर्वनामों को छोड़कर शेष सभी प्रसंगों में शब्दों से अलग लिखा जायें : 'राम ने कहा, उसने कहा', पर दो विभक्ति प्रत्यय होते एक सटकर और दूसरा अलगकर लिखना है: उसके लिए । (2) संयुक्त क्रियाओं के भिन्न भाग अलग लिखा जावे : 'पढ़ा करता है'। (3) तक, साथ आदि अलग कर लिखा है । (4) द्वंद्व समास के बीच योजक रखा जायें : राम - लक्ष्मण । (5) क्रिया के भूतकालिक पुल्लिंग एकवचन में 'या' हो तो बहुवचन में 'ये' और स्त्रीलिंग में यी और यीं लिखा जायें । 'आ' होता तो बहुवचन में 'ए' और स्त्रीलिंग में ई और ईं लिखा जायें । विधि क्रिया में हमेशा 'ये' ही ठीक है: आइये, बैठिये । अव्ययों में 'ए' ही रहेगा : हंसते जाते हुए । हिन्दी में योजक चिह्न की प्रधानता है : राम - नाम, मार - काट, दो क्रिया के बीच में भी यह आता सोना - जागना । प्रश्न चिह्न और विस्मयादि चिह्न भी प्रधान है
अध्याय - चार हिन्दी की संरचना : वाक्य मनुष्य के विचारों की पूर्णता से प्रकट करनेवाला पद समूह है । वाक्य की संरचना संयत और सन्तुलित होनी चाहिए । वाक्य खंड को उपवाक्य कहते है । वाक्य की संरचना सरल, मिश्रित और संयुक्त होती है । उपवाक्यों के संज्ञा, विशेषण क्रिया विशेषण तीन रूप दिये है ।
अध्याय पांच : संज्ञा : संज्ञा का विभाजन अंग्रेजी व्याकरण - पद्धति के अनुसार किया गया है । हिन्दी में दो ही लिंग होते, अप्राणिवाचक पुल्लिंग या स्त्रीलिंग में आते है । इसमें गुरुजी का अनुसरण किया गया है । वचन दो है एकवचन और बहुवचन । वचन - परिवर्तन के नियम तथा उदाहरण दिये गये है । इनका विभक्ति - सहित एवं विभक्ति - रहित रूप अलग-अलग दिखाये गये है । कारक आठ है । उनका नाम तथा विभक्ति प्रत्यय दिये गये है । 'ने' प्रत्यय का नियम दिखाया है । इसके बाद पदपरिचय - पद्धति दिखायी गयी है ।
अध्याय : छः सर्वनाम उन विकारी शब्दों को कहते है जो पूर्वापरसंबन्ध से किसी भी संज्ञा के बदले में आते है । सर्वनाम, पुरुषवाचक, निजवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चय वाचक, संबन्धवाचक और प्रश्नवाचक छे होते है । पुरुषवाचक, उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष एवं अन्यपुरुष तीन प्रकार के होते है । कारक के साथ सब का रूप दिखाया गया है ।
अध्याय : सात: विशेषण : जो संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतलाए उसे विशेषण कहते है ।

गुण, संख्या, और परिमाण के आधार पर इसके भेदों का वर्गीकरण किया गया है :

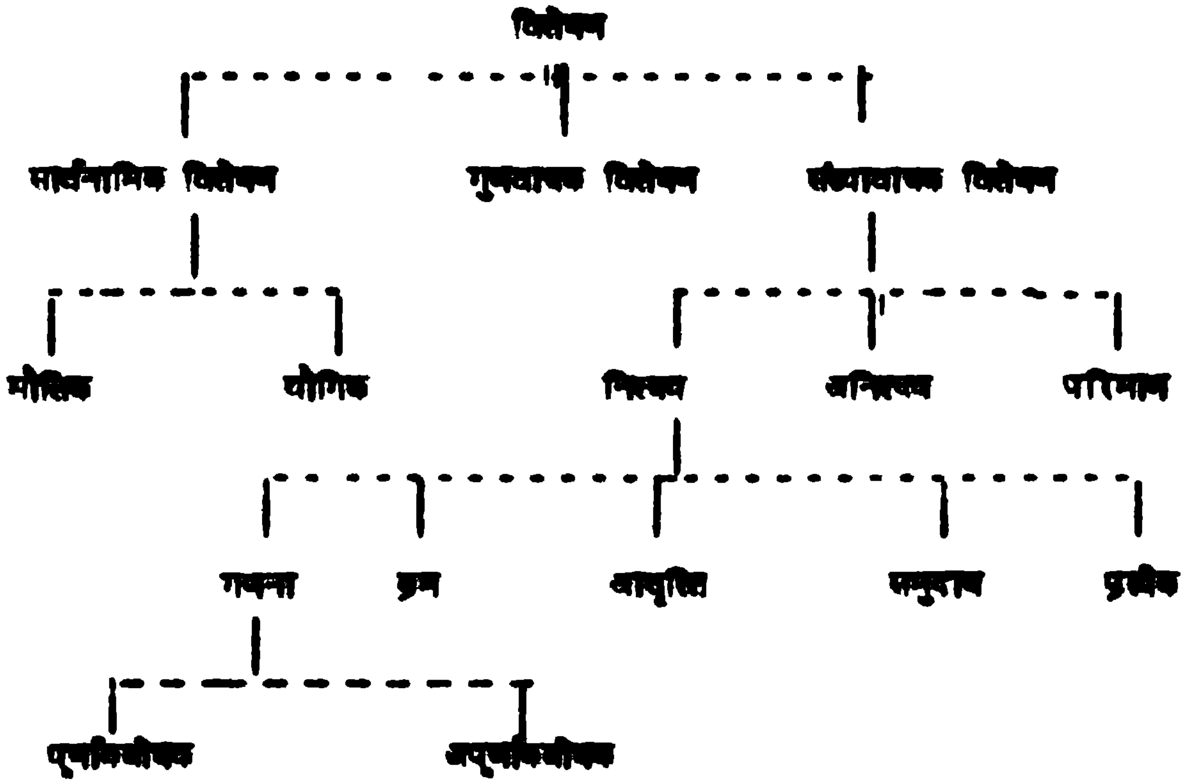

उदाहरण भी दिये गये हैं ।

अध्याय आठ : क्रिया : जिस शब्द से किसी काम का करना या होना समझा जाय उसे क्रिया कहते हैं । क्रिया का मूल 'धातु' है । धातु में 'ना' लगाकर क्रिया का सामान्य रूप दिखाया जाता है । धातु, केवल और यौगिक होते हैं : देख, पी आदि मूलधातु और लिखा, पिला आदि यौगिक होते हैं ।

यौगिक धातु तीन प्रकार के होते हैं (1) प्रत्यय लगाकर अकर्मक से सकर्मक और प्रेरणार्थक (2) धातुओं को संयुक्त करके संयुक्त धातु और (3) संज्ञा या विशेषण से नामधातु । प्रेरणार्थक के दो रूप होते : पढाना, पढवाना ।

नामधातु : हाथ > हथियाना , गर्म > गरमाना ।

द्विकर्मक : मैं लड़के को वेद पढाता हूँ । संयुक्त - क्रियाएँ कई अर्थों में आती हैं । आरंभ, समाप्ति, अनुमति, नित्यता, इच्छा आदि ।

हुए है, रहा था आदि सहायक क्रियाएँ हैं, भस्म होना, दुःखी होना - नाम बोधक नवाकार,

जाकर आदि पूर्वकालिक और टहलना, आना आदि क्रियार्थक संज्ञा होती है ।

काल : वर्तमान (1) सामान्य वर्तमान (2) तात्कालिक वर्तमान (3) पूर्णवर्तमान (4) संदिग्ध-वर्तमान (5) संभाव्य वर्तमान/आता है, आ रहा है, आया है, आता होगा और आया हो ।

भूतकाल : (1) सामान्य भूत (2) आसन्न भूत (3) पूर्णभूत (4) अपूर्ण भूत (5) संदिग्ध-भूत (6) हेतुहेतुमद् भूत । आया, आया है, आया था, आ रहा था, आया होगा, अगर आता तो - भविष्यत्काल : (1) सामान्य भविष्य (2) संभाव्य भविष्य और (3) हेतुहेतुमद् भविष्य। आयेगा, आये, जब आये तो - - - - -

क्रिया का पदपरिचय दिखाया है ।

अध्याय : नौ: अव्यय: (1) क्रिया विशेषण (2) संबंध बोधक (3) समुच्चय बोधक और (4) विस्मयादि बोधक ।

क्रियाविशेषण प्रयोग के अनुसार, रूप के अनुसार और अर्थ के अनुसार तीन तरह के होते है ।

प्रयोग के अनुसार संयोजक और अनुबद्ध होते । रूप के अनुसार, मूल, यौगिक और स्थानीय होते । अर्थ के अनुसार परिमाण वाचक और रीतिवाचक होते है ।

संबंध बोधक प्रयोग के अनुसार संबद्ध और अनुबद्ध होते है । के बिना, की नाईं संबद्ध है । सामने सहित, कठोर भर - अनुबद्ध ।

अर्थ के अनुसार काल स्थान, दिशा आदि कई भेद है । व्युत्पत्ति के अनुसार मूल और यौगिक होते ।

समुच्चय बोधक, संयोजक, विभाजक, विरोधदर्शक, परिणाम दर्शक होते । विस्मयादि बोधक के आठ भेद दिखाए हैं ।

विषाद, स्वीकारार्थक, भयार्थक, निषेधात्मक, प्रश्नबोधक, विस्मयादि बोधक, आदरवाचक या घृणा बोधक और तुलनात्मक होते हैं । पदपरिचय भी दिया गया है ।

अध्याय : दस और ग्यारह : वाक्य रचना संबंधी है । वाक्य विग्रह भी प्रस्तुत है ।

इन भागों में लेखक ने गुरुजी के 'हिन्दी व्याकरण' का अनुसरण किया है ।

दक्षिण भारत प्रचार सभा ने अपनी परीक्षाओं के उपयोगी कई व्याकरण चार दक्षिणी भाषाओं तथा हिन्दी में प्रकाशित किये हैं । अंग्रेजी माध्यम का व्याकरण भी प्रकाशित हुआ है ।

एस.आर. शास्त्री और बालचन्द्र शास्त्री से लिखित ऐसा हिन्दी व्याकरण दक्षिण में ही नहीं

उत्तर में भी खूब प्रचलित है । उस ग्रन्थ से विचारणीय अंश नीचे प्रस्तुत है - भाषा-प्रयोग में क्रिया की प्रधानता होती है । क्रिया के प्रयोगों का परिचय पाने पर भाषा आसानी से सीख सकते हैं । इस ग्रन्थ में क्रिया - प्रयोग के पाठ सबसे पहले दिये गये हैं । विधायक, वर्तमान-भूत-भविष्य कालों का विवरण तथा उदाहरण दिखाये गये हैं । शब्दों को आठ विभागों में विभाजित करके हर एक का विवरण सरल और सुगमता पूर्वक उदाहरणों के साथ दिया है । 'ने' और अन्य विभक्तियों पर प्रकाश डालकर संज्ञाओं तथा सर्वनामों के विभक्ति सहित रूप दिखाये हैं । संभाव्य भविष्य, संभाव्य वर्तमान, संभाव्य भूत को दिखाकर सहायक क्रियाओं, संयुक्त क्रियाओं तथा नामधातुओं पर विचार किया है । कृदंत तथा तद्धित का विस्तृत वर्णन है । प्रत्ययों एवं उदाहरणों की लंबी सूची दी गयी है । विशेषणों की तुलना में 'से' और 'सबसे' का प्रयोग होता है । प्रेरणार्थक में पहला एवं दूसरा रूप दिखाया गया है ।

वाक्यों में कर्तरि, कर्मणि तथा भावे प्रयोगों की विशेषताएँ दिखायी हैं । प्रत्यक्षकथन एवं परोक्षकथन के रूप दिखाये गये हैं । उपसर्गों तथा प्रत्ययों की विस्तृत-सूची सोदाहरण अंकित की है ।

समासों के चार रूप, अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वन्द्व और बहुव्रीहि को स्वीकृत किया । वाक्य में कर्ता, कर्म और क्रिया का क्रम होता है । विरामचिह्नों का रूप एवं नियम बताया गया है । विभिन्न शब्दों के पदपरिचयों में स्वीकृत होने की बातों पर प्रकाश डाला है । अनुवाद अभ्यास केलिए 43 कण्डिकाएँ दी गयी हैं । अन्त में हिन्दी-अंग्रेजी पारिभाषिक शब्द-सूची है । अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों तथा परीक्षार्थियों को यह बहुत उपयोगी ग्रन्थ है । इसकी रचना पं.कामता प्रसाद गुरु के हिन्दी व्याकरण के अनुसार ही हुई है । सिद्धान्तों को अंग्रेजी एवं हिन्दी में दिखाया है । सभी सिद्धान्तों को साफ दिखाने केलिए काफी उदाहरण दिये गये हैं । यह संक्षिप्त एवं सरल होता है ।

विदेशी वैयाकरणों की रचनाओं पर इसके पहले समीक्षा की गयी है । भारतीय वैयाकरणों की रचनाओं पर भी विचार करना है । पं. कामता प्रसाद गुरु के पहले ही हिन्दी में कई वैयाकरण हुए थे । इसकी सूचना भी दी गयी है । पं. श्रीलाल जी को हिन्दी के प्रथम भारतीय वैयाकरण मानते हैं । उनका लिखा हुआ ' भाषा - चन्द्रोदय ' एक प्रधान रचना है । अंग्रेजी

व्याकरण - पद्धति को छोड़कर संस्कृत व्याकरण - पद्धति को स्वीकार करके उन्होंने अपना व्याकरण लिखा । अंग्रेजी सरकार के आदेश पर उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम के लिए इसका प्रकाशन 1855 में हुआ । अकारान्त संस्कृत शब्दों को उन्होंने हलन्त माना है - जैसे धन, वन आदि । उन्होंने सार्थक और निरर्थक शब्दों के लिए क्रमशः वाचक और अपशब्द नाम दिए हैं । संज्ञा का विभाजन संस्कृत के आधार पर किया गया है । उन्होंने आठ कारकों को मान लिया है । कारक - चिह्न को विभक्ति-प्रत्यय कहा गया है । इसके बाद सर्वनामों का वर्णन है । मध्यमपुरुष एवं अन्यपुरुष में सर्वनाम 'आप' का प्रयोग होता है । पंडितजी ने क्रिया के दस प्रकार का काल - विभाजन किया है । गुणविशेषण के वर्णन में उन्होंने लिखा है कि आकारान्त विशेषण विशेष्य के अनुसार लिंग - वचनों में परिवर्तित होते हैं । क्रिया - विशेषणों का अलग विभाग नहीं दिखाया गया है । वाक्य - रचना के बारे में वे बताते हैं कि पहले कर्ता, अन्त में क्रिया और बीच में अन्य शब्द रखे जाएँ ।

पं. रामजसन की 'भाषातत्त्वबोधिनी' भी इस काल की एक रचना है । शिव प्रसाद गुप्तजी का लिखा हुआ एक छोटा व्याकरण ग्रन्थ है 'शब्दप्रकाशिका' जिसका प्रकाशन 1870 ई. में हुआ । उन्होंने क्रियाओं को तीन कालों में बाँटा और फिर हर एक काल का चार विभाजन किया है । भूतकाल के लिए ये उदाहरण दिए गए हैं ।

साधारण - मैं पढ़ा हूँ या मैंने[1] पढ़ा है ।
आद्य - मैं पढ़ने पर था ।
मध्य - मैं पढ़ रहा था या पढ़ता था ।
अन्त्य - मैं पढ़ चुका था या मैं पढ़ाया था ।

इसमें हम देखते हैं कि उस काल में 'ने' प्रत्यय नियमित रूप से प्रयुक्त नहीं होता था । उन्नीसवीं सदी के अन्त तक हिन्दी व्याकरण का रूप सामान्यतः विकसित हो चुका था । अंग्रेजी व्याकरण पद्धति के साथ - साथ संस्कृत व्याकरण पद्धति में भी कई रचनाएँ हुई थीं । पर पूर्व -

- -

(1) हिन्दी व्याकरण का इतिहास - डॉ. अनंत चौधरी - पृष्ठ 273.

विकसित रूप में एक व्याकरण ग्रन्थ की आवश्यकता की पूर्ति न हुई थी। इस अपूर्णता की पूर्ति करने केलिए 'हिन्दी व्याकरण' की रचना हुई। पर अपनी रचना से गुरुजी संतुष्ट न हुए। अपने व्याकरण का एक संशोधित एवं संवर्धित प्रकाशन 1952 ई. में करके वे कृतार्थ हुए। उन्होंने अपने ग्रन्थ में अंग्रेज़ी व्याकरण पद्धति का अनुसरण किया है। उस समय के कई पंडितों के आग्रह के अनुसार किशोरीदास वाजपेयी ने संस्कृत व्याकरण पद्धति को पूर्ण रूप से स्वीकार कर 'हिन्दी शब्दानुशासन' प्रकाशित किया। गुरुजी ने शब्दों को संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि आठ भागों में विभाजित किया है। वाजपेयी ने शब्दों को नाम, कृति, भेद और अव्यय चार भागों में बांटा है। गुरुजी ने आठ कारकों को मानता है जब कि वाजपेयी ने छह को। संस्कृत में संबन्ध कारक नहीं होता, संबन्ध प्रत्यय ही होता है। संबोधन को भी कारक नहीं माना है। लिंग, वचन आदि के बारे में कोई मतभेद नहीं। क्रियाओं का विवेचन दोनों ग्रन्थों में विस्तृत रूप से किया गया है। गुरुजी ने वाक्यों और विराम - चिह्नों को अंग्रेज़ी व्याकरण पद्धति के अनुसार संपूर्णतः दिखाया है। वाक्य-विश्लेषण एवं पद - परिचय को भी उन्होंने स्वीकार किया है वाजपेयी ने इन्हें स्वीकार नहीं किया है। संस्कृत - व्याकरण पद्धति में ऐसी बातें न होने के कारण ही उन्होंने इनका अस्वीकार किया होगा। वाक्य के संबन्ध में वे बताते हैं कि वाक्य में क्रिया की प्रधानता होती है। क्रिया ही दूसरे पदों पर अपना अधिकार जमाती है। इन दोनों व्याकरण ग्रन्थों की रचना से हम स्वीकार कर सकते हैं कि हिन्दी व्याकरण का पूरा विकास हो गया है। सभी आधुनिक वैयाकरणों ने अपनी अपनी प्रियता के अनुसार गुरुजी या वाजपेयी का अनुकरण किया है। अंग्रेज़ी शिक्षा बढ़ते-बढ़ते हिन्दी एवं अंग्रेज़ी का संबन्ध अनुवाद-पद्धति द्वारा बढ़ गया है। इस कारण से दोनों भाषाओं में होनेवाले व्याकरण - संबन्धी सांकेतिक शब्दों का आदान-प्रदान भी चलता रहता है। अन्य भारतीय भाषाओं और हिन्दी में भी ऐसा संबन्ध चलता रहता है।

आजकल जो प्रामाणिक व्याकरण ग्रन्थ पाए जाते हैं उनमें भाषा-विज्ञान की बातें अधिक से अधिक होती हैं। 'हिन्दी व्याकरण', 'हिन्दी शब्दानुशासन' आदि व्याकरण ग्रन्थ इतने मोटे होते हैं कि उनके आधे से अधिक भाग भाषा - विज्ञान से भरा है। इसका कारण भी होता है कि भाषा-विज्ञान एक शास्त्र के रूप में बाद ही में प्रतिष्ठित हुआ है। कई प्रामाणिक व्याकरण ग्रन्थों में हमने देखा है कि रस, अलंकार, छंद आदि बातों को भी मिलाया है। काव्य-शास्त्र का

प्रभाव बढ़ जाने पर वे व्याकरण की शाखा से अलग होकर स्वतन्त्र रूप धारण करने लगी । उसी तरह भाषा-विज्ञान भी स्वतन्त्र रूप में खड़े हो जाने पर व्याकरण ग्रन्थों के रूप इस विषय को भी अलग रखना पड़ेगा ।

तीसरा अध्याय

मलयालम् भाषा तथा उसका विकास :

दक्षिण की चार मुख्य भाषाएँ तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम् हैं । ये द्राविड कुल की भाषाएँ कही जाती हैं । द्राविडों के बारे में पहले कहा गया है कि वे उत्तर भारत से दक्षिण की ओर आए हुए हैं । इन चार भाषाओं के अलावा कई और भाषाएँ हैं जो साहित्यिक प्रधानता प्राप्त नहीं हैं । तुलु, कूर्ग, तोडा, कोता आदि इस ऐसी भाषाएँ भी इस कुल की होती हैं । इन में तुलु का व्याकरण तथा तुलु-अंग्रेज़ी निघण्टु प्रकाशित है । तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम इस कुल की विकसित भाषाएँ हैं जो साहित्य से संपन्न हैं । इन भाषाओं की समानता के आधार पर हम निश्चय कर सकते हैं कि ये एक ही मूलभाषा से विभि[न्न] हुए हैं । तेलुगु और कन्नड मलयालम् के पहले ही उस मूलभाषा से अलग हो गईं । तमिल औ[र] मलयालम् का संबन्ध वर्षों तक चलता रहा । बोलचाल की भाषा के रूप में मलयालम् सदियों वर्षों के पहले ही अलग हो गई थी, पर केरल में तमिल साहित्यिक भाषा के रूप में वर्षों तक रही इस कारण कई पंडितों ने अपना मत प्रकट किया कि मलयालम् तमिल की बहन या बेटी है । आर्यों के आगमन के बाद आर्य-भाषा संस्कृत का प्रचार केरल में हुआ । संस्कृत और मलयालम् के मेल से एक नया भाषा-रूप प्रकट हुआ जो मणिप्रवालम् के नाम से प्रख्यात हुआ । इस रूप के आधार पर और कुछ पंडितों ने यह मत-समर्थन किया कि मलयालम् तमिल और संस्कृत के मेल से बनी भाषा है । ये दोनों मत सत्य-विरुद्ध जान पड़ते हैं ।

मलयालम् पहले प्रदेश विशेष का नाम था । 'मला' के साथ 'आलम्' मिलाकर य[ह] शब्द की निष्पत्ति हुई है । आलम् का अर्थ है देश । मला, पहाड़ है । पहाड़ों से निबिड देश होने से इस देश का नाम मलयालम् पड़ा । शब्द के अन्त में 'आलम्' प्रयुक्त कई देशनाम इस राज

- -

1. डा. गोदवर्मा - केरल विज्ञानीयम् (पृ 114) 1971 (पृ.96)
2. के.वी.कृष्ण अय्यर - केरल का इतिहास - द्वितीय संस्करण - 1965 (पृ.1) »

में होते हैं : अरियालम्, पटियालम् आदि।[1] यही देश नाम आगे चलकर भाषा-नाम हो गया। यह भाषा मलयालम् तथा मलयाण्मा नाम से भी विख्यात है। मलयालम् केरल की भाषा है। केरल भारत के दक्षिण-पश्चिम कोने का एक छोटा राज्य है। केरल का इतिहास काफी प्राचीन है। कई हज़ार वर्ष पूर्व से ही यहाँ जन-निवास था। लकड़ी और हड्डियों के औजारों के जो अवशिष्ट मिले हैं उनके आधार पर ही यह काल-निर्णय किया गया है। ये लोग आस्ट्रलोयिड तथा निग्रिटो वंश के हो सकते हैं। ये मेडिटरेनियन प्रदेश से आये होंगे। केरल में आर्यों का आगमन ई.पू. तीसरी शताब्दी से शुरू हुआ होगा। कात्यायन के वार्तिक में केरल की सूचना है। सम्राट अशोक ने केरल को कई सुविधाएँ पहुँचायी है।[2]

दक्षिण भारत के तीन प्राचीन देश विभाग हैं चेर, चोल और पाण्ड्य। चेर-देश ही केरल नाम से सम्मिलित हुआ। प्राचीन केरल के इतिहास में बताया गया है कि उसके तीन भाग, एलिनाडु, चेरनाडु और आयनाडु रहे हैं। ये तीन स्वतन्त्र राज्य थे। उत्तर में एलिनाडु बीच में चेरनाडु और दक्षिण में आयनाडु थे। कभी कभी ये तीन देश एक ही राजा के अधीन में भी रहे थे। चेरनाडु में तमिलनाड के कोयंबत्तूर, सेलम्, नीलगिरि आदि भाग भी मिले हुए थे। चोल और चेर के बीच में लड़ाइयाँ होती रहीं। पर कोई देश दूसरे को अधीन न कर सका। केरल ने तमिल को ही साहित्यिक भाषा स्वीकार किया था। संघ रचनाओं में केरल-कवियों की रचनाएँ मिलती हैं। ये रचनाएँ ही दक्षिण भारत के सामाजिक, राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालती हैं। संघ-साहित्य इस देश के प्राचीन साहित्य माना जाता है। केरल का यूरोपीय देशों से व्यापारिक संबन्ध प्राचीन काल से प्रचलित था। ईस्वी सन् के आरंभ काल के रोमन सिक्के केरल के कई भागों से मिले हैं।[1]

प्राचीन काल से ही केरल धर्मनिरपेक्ष देश रहा। जो भी परदेशी या विदेशी केरल में आये उनका यहाँ स्वागत हुआ। आर्यों के आगमन से लेकर कई जातियों का यहाँ आना और यहाँ के लोगों से मिल-जुलकर रहना साधारण घटना थी। बौद्ध-जैन-धर्मों का प्रचार केर

- -

1. इलंकुलम् कुंजन पिल्लै : केरलं अञ्चुं आरुं नूट्टाण्टुकळिल : पृ : 93

में भी हुआ । चौथी सदी से ईसाइयों का धर्म-प्रचार प्रारंभ हुआ । ईसाई लोग केरल में भी आए और धर्मप्रचार शुरू करते रहे । इस्लाम धर्म का प्रचार भी केरल में हुआ । यहाँ के लोग को अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी धर्म को स्वीकार करने में कोई रुकावट न थी । विदेशियों को स्वीकार करने में भी केरल हिचकता न था । इतना विशाल-दृष्टि आठ-दस सदियों का नहीं बल्कि संस्कार की एक लंबी परम्परा की देन है ही ।

इससे ही सूचित किया है कि द्राविडकुल में कई भाषाएँ होती हैं । भिन्न भाषा बोलनेवाले भिन्न समाजके प्रबल नेताओं का नेतृत्व एकत्रित हो जाने के कारण ही दक्षिण में चेर, चोल और पाण्ड्य तीनों साम्राज्यों की उत्पत्ति हो गई । कुछ भाषाएँ अपने प्राचीन रूप में रहीं, और कुछ तो विकसित हुईं । इस तरह विकसित भाषाएँ हैं - तमिल, तेलुगु, कन्नड तथा मलया ये सभी भाषाएँ एक ही मूलभाषा से व्युत्पित हुई हैं । भाषा कभी एकरूपता में नहीं रहती है स्वतन्त्र रहने पर वह विकास प्राप्त करती है । नये नये शब्द स्वीकार कर आवश्यक बातों को क्रमबद्ध करके वह पुष्ट हो जाती है । भाषा की उत्पत्ति आशय - विनिमय के लिए ही हुई । वह बोलचाल के रूप में चलता है । इसलिए बोलचाल की भाषा ही सबसे पहले बनती है । क कभी ये भाषाएँ उसी रूप में सदियों तक रही होंगी । द्राविड कुल की तुलु कूर्ग आदि भाषाएँ इसी रूप में ही रहती आती हैं । मलयालम् भी सदियों तक बोलचाल की भाषा रही । बोलचा की भाषा विशेष-परिस्थिति में साहित्यिक बन जाती है । द्राविड कुल में साहित्यिक रूप में संघ-साहित्य ही आदिम है । संघ रचनाएँ सेंतमिल में लिखी गयी हैं । बोलचाल की भाषा को कोटुंतमिल कहते थे । संघ की स्थापना मधुरा में हुई । मधुरा पाण्ड्य की राजधानी थी । पाण्ड्य की भाषा को सेंतमिल और अन्यप्रदेशों की भाषा को कोटुंतमिल कहा जाता था । संघ साहित्य के केवल मधुरा या पाण्ड्य देश की देन नहीं / चेरदेश के पंडितों ने भी इसकी [illegible] रचना की है । पतिट्रुप्पत्तु, चिलप्पतिकारं आदि कई रचनाएँ केरलीय कवियों की होती हैं विभिन्न प्रदेशों में लिखी गयी इन रचनाओं में देश भेद द्रष्टव्य है । इस संबन्ध में तोलकाप्पियर ने लिखा है(1) इयर्चोल, तिरिचोल, तिचैचोल, वटचोल एनार अनैत्तेचैयुळ् चॅल्लोले (2) इस सूत्र में शब्दों को चार रूप दिखाए गए हैं । सभी प्रदेशों में प्रचलित शब्द इयर चोल, एक ही अर्थ के कई शब्द एवं या कई अर्थों का एक शब्द तिरिच्चोल, तमिल अक्षरमालानुकूल रूप वटचोल : प्रदेश भेद के अनुसार विशेष प्रयोग होनेवाले तिचैचोल । ये चारों साहित्यिक भाषा में ही आती हैं ।

(1) (2) - पृष्ठ 98

साधारण लोगों की बोलचाल की भाषा में ऐसा भेद नहीं रहा । आर्यों के आगमन के बाद संस्कृत के प्रचार होने के बाद भी लोगों की व्यावहारिक भाषा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । आर्यों का आगमन ईसवी पूर्व ही हो गया था, तो भी उनकी संख्या कम थी । इसलिए उस काल में संस्कृत का कोई प्रभाव केरल की भाषा में न पड़ा । लोगों की व्यवहृत - भाषा ही आगे चलकर विकसित होकर साहित्यिक भाषा हो गयी । इस संबन्ध में डा. गोदवर्मा कहते हैं '' किसी भी जीवित भाषा का पूर्व रूप जानने के लिए साहित्यिक भाषा को नहीं बल्कि व्यवहार की भाषा को आधार मानना चाहिए । साहित्यिक तथा राजनैतिक भाषाओं में कृत्रिमता हो सकती है । अतिप्राचीन काल से केरल की भाषा मलयालम् ही थी, वह तमिल नहीं थी । मलयालम् का अपना व्यक्तित्व होता ही है । लोकोक्तियाँ, मुहावरे तथा विशेष शैलियाँ इस बात को साफ दिखानेवाले साधन होते हैं ''।[3]

(4) कोल्लवर्ष के आरंभ से आर्यों की संख्या बढ़ने लगी । पाँच छै सदियों से उनकी स्थिति दृढ़ हो गयी । पर उनकी भाषा का प्रभाव साधारण जनता में न पड़ा हुआ । आर्यों ने केरल की भाषा सीख ली और आवश्यकता के अनुसार संस्कृत शब्द भी मिलाकर उसका व्यवहार किया । आगे चलकर एक 'भाषामिश्र' उत्पन्न हुआ । यही मिश्र-भाषा-रूप मणिप्रवालम् के नाम से प्रसिद्ध हो गया । मणिप्रवालम् शब्द का आविर्भाव ग्यारहवीं सदी में लिखी हुई 'लीलातिलकम्' में देख जाती है । सातवीं सदी से केरल-भाषा में साहित्यिक रचनाएँ प्रस्फुटित हुई । दसवीं तथा चौदह शताब्दियों के बीच भाषा में तथा मणिप्रवालम् में कई कृतियाँ ग्रन्थाकार में प्रकाशित हुई । दोनों विभागों की रचनाओं की भाषा कृत्रिम है, पर (5) भद्रकालिप्पाट्टु, (6) पुळ्ळुवन पाट्टु, (7) वटक्कन पाट्टु आदि की भाषा अकृत्रिम रहती है । मणिप्रवालम् में शब्द प्रयोगों की कृत्रिमता बढ़ जाने से

- -

1. उळ्ळूर : केरल साहित्य का इतिहास : पृ 201 - 2
2. लीलातिलकम् पृ 192
3. डा. गोदवर्मा : केरल भाषा विज्ञानीयं पृ 136
4. चेरसाम्राज्य की राजधानी 'कोल्लम' हो जाने के आधार पर नया वर्ष शुरू हुआ । यह ई.सन् 825 में हुआ । केरल के लोग इसका उपयोग करते हैं । अब कोल्लवर्ष 1159 है
5. दारिकवध की कथा गीत में वर्णित
6. सर्पों की कथाओं का वर्णन ।
7. उत्तर केरल के ओतेनन्, आरोमल चेकवर आदि की वीरकथाएँ ।

कारण उसका निर्माण आवश्यक हुआ प्रतीत । इसके लिए ही 'लीलातिलकं' की रचना हुई ।

अन्य भाषाओं के समान प्राचीन काल में मलयालम् की भी लिपियाँ न थीं । लिपियों की आवश्यकता पड़ जाने पर वट्टेळुत्तु तथा कोलेळुत्तु को स्वीकार किया गया । संस्कृत वर्णमाला के अतिरिक्त, मृदु, घोष तथा ऊष्म स्वीकार करके ब्राह्मी लिपि में भाषा का नया रूप तथा परिष्कृत शैली देने का श्रेय : तुंचत्तेळुत्तच्छन' को प्राप्त है । उन्होंने भाषा को जो नयी दिशा दिखायी उसी रास्ते वह आगे बढ़ती है । देश मान भाषा को भी मिलाकर गया और इस तरह मलयालम् लोकभाषा समाज का एक प्रधान सदस्य बन गयी है ।

मलयालम-व्याकरण : ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि :

ऊपर दिखाया गया है कि दक्षिण के तीन प्रधान राज्य चेर, चोल और पाण्ड्य ईस्वी सन् की कई सदियों पहले भी हुए हैं । इन देशों की भाषा सामान्य रूप में तमिल कही जाती थी । राजभाषा तथा बोलचाल की भाषा में भिन्नता थी । यह भिन्नता केरल या चेर-साम्राज्य में बढ़ती रही । संघ साहित्य की कई कृतियाँ केरल के पंडितों से रची हुई हैं । उस समय की प्रतिष्ठित भाषा में इनकी रचना हुई थी । चिलप्पतिकारम्, मणिमेखला आदि केरल की देन हैं । आर्यों के आगमन के बाद संस्कृत का भी प्रचार हुआ । पर संस्कृत देश भाषा के रूप में अधिकार न जमा सकी । आर्यों के आशयविनिमय के लिए केरल भाषा पढ़नी पड़ी । वे भाषा शब्दों में संस्कृत प्रत्यय मिलाकर भाषा को विकृत बनाते रहे । केरल की विशेषता है कि वह आदि काल से ही अच्छी बातों को स्वीकार करने में हिचकता नहीं था । आर्यों के संस्कृत तथा बौद्ध-जैन धर्म प्रचारकों की प्राकृत (पाली) पर यह देश मोहित हुआ । देशी भाषा और संस्कृत के आदान-प्रदान से एक मिश्रभाषा का आविर्भाव हुआ । आगे चलकर यह 'मणिप्रवालं' नाम से मशहूर हुआ । इस मिश्रभाषा में कई रचनाएँ होती रहीं । जनसाधारण भाषा भी साहित्यिक रूप पाकर 'पाट्टु' के नाम से प्रचलित होने लगी । पर दोनों कृत्रिम होती रहीं । मणिप्रवालम् की कृत्रिमता दूर करके उसको प्रतिष्ठित रूप देने के लिए ही लीलातिलकं रची गयी थी ।

लीलातिलकम् : यह चौदहवीं सदी की रचना है । इसमें मणिप्रवाल का लक्षण, व्याकरणिक कार्य, गुणदोष निरूपण तथा अलंकार, रस मीमांसा आदि दिए गए हैं । यही मणिप्रवाल का लक्षण

ग्रन्थ कहना अधिक संगत होता है । इसमें सन्धि आदि व्याकरणिक नियम हैं । इस कारण से व्याकरण के विभाग में भी यह स्वीकार किया गया है । तमिल में तोलकाप्पियम्, वीरशोलियम् आदि व्याकरण ग्रन्थ इससे पहले प्रकाशित थे । पर मलयालम का कोई व्याकरण चौदहवीं सदी तक प्रकाशित नहीं हुआ । इसलिए इसे मलयालम का प्रथम व्याकरण माना जाता है । यह सूत्र रूप में लिखा गया है । उदाहरण के लिए ' भाषा संस्कृतयोगो मणिप्रवालम् '(1) सूत्र में मणिप्रवाल का लक्षण दिखाया गया है । भाषा का मतलब है केरलभाषा । केरलभाषा तथा संस्कृत के योग से मणिप्रवाल होता है ।

इस ग्रन्थ के आठ शिल्प होते हैं । हर शिल्प के आरंभ में विषय निरूपण होता है । पहले शिल्प में मणिप्रवाल का लक्षण और विभाग दिया गया है । 'पाट्टु' का विवरण भी दिया गया है । दूसरे शिल्प में भाषा भेद, विभक्ति, लिंग, वचन, क्रिया और पुरुष प्रत्यय वर्णित हैं तीसरे में सन्धि कार्य, चौथे में दोष और पाँचवें में गुण के निरूपण होते हैं । छठा और सातवाँ शब्दालंकार और अर्थालंकार के हैं । आठवें में रसवर्णन है । लक्षण के रूप में यह मलयालम का प्राचीनतम ग्रन्थ है । 'अलंकार संक्षेप' नामक एक अन्य रचना भी इसी काल की प्राप्त होती है इसमें भाषासंबन्धी बातें भी आती हैं ।

इसके बाद उन्नीसवीं शताब्दी तक कोई व्याकरण ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता । अर्नोस पातिरि ने जो केरल में 1699 से 1732 तक रहे, एक व्याकरण लिखा था जिसका नाम था ग्रन्थभाषा का व्याकरण । वराप्पुषा के आर्च बिशप डा. ऑजेलो फ्रान्सिस के लिखे हुए व्याकरण की एक प्रति वातिकान पुस्तकालय में है । फादर गोसिनस का कथन है कि यह बोलचाल की भाषा के लिए बड़ा उपयोगी है । लेकिन इन दोनों की प्रतियाँ हमें अब तक प्राप्त नहीं हुए हैं । डा. गुण्डर्ट तथा रवरेण्ट जोर्ज मात्तन के व्याकरण इस शाखा के आदिम ग्रन्थ होते हैं । (2) डा. गुण्डर्ट का मलयालम भाषा व्याकरण पहला शास्त्रीय व्याकरण कहा जा सकता है । यह 1851 में प्रकाशित हुआ । इसके तीन विभाग अक्षरकाण्ड, पदकाण्ड और वाक्य काण्ड हैं । अक्षरकाण्ड में वर्ण विचार है । तमिल के अनुसार ह्रस्व - दीर्घ स्वर और व्यंजन को स्वीकार किया गया है ।

- -

(1) लीलातिलकम् : शिल्परचना : सूत्र 1 पृ. 29

(2) Dr. Gundert's Malayala Bhasha Vyakaran

शब्दकांड में संधि, कारक, सर्वनाम, अव्यय, क्रिया, काल आदि का विवरण है। वाक्य कांड में ~~संधि, समास,~~ वाक्य रचना संबन्धी बातें आई हैं। क्रियाविकार कारकों संबद्ध होता है। इसमें मलयालम और अंग्रेज़ी दोनों का प्रयोग किया गया है।

(2)जार्ज मात्तन का 'मलयाळमयुटे व्याकरण' 1863 में प्रकाशित हुआ। यह मलयालम में ही लिखा हुआ है। इसके दो कांड होते हैं। पहले कांड में संज्ञा और संधि का वर्णन है। दूसरे में पदजालम विचारे गए हैं। संज्ञा के लिंग वचन, विभक्ति, नामों का उद्भव, सर्वनाम, पहले अध्याय के विषय हैं। दूसरे अध्याय में 'वचनं' का विवरण है। दूसरे वैयाकरणों ने जिसे क्रिया कह दी है उसे ही जार्ज मात्तन वाचक कहते हैं। तीसरे अध्याय में अव्ययों को दिखाया है। अन्त में व्याकरण के पदों का अंग्रेज़ी परिभाषा दी गयी है।

गुन्दर्ट और जार्ज मात्तन के पहले भी कई योरोपियों ने मलयालम के व्याकरण लिखे हैं। इनमें (3)ड्रूमोंड का मलयालम भाषा का व्याकरण प्राचीनतम होता है। इसका प्रकाशन 1791 में हुआ। ईस्टइण्डिया कंपनी के अफसरों को मलयालम का ज्ञान देने केलिए यह लिखा गया है। (4)स्प्रिंग का मलयालम व्याकरण 1839 में प्रकाशित हुआ। इसमें 13 पाठ होते हैं। प्रत्येक पाठ भाषण के रूप में दिया गया है। उसी वर्ष में (5)फ्रोन्मेयर का प्रोग्रेसिव ग्रामर आफ मलयालम लाग्वेज का प्रकाशन हुआ। (6)जोसफ पीट का मलयालम व्याकरण 1865 में प्रकाशित हुआ। (7)गार्थवेट का मलयालम व्याकरण संग्रह विद्यार्थियों के उपयोग केलिए लिखा हुआ है। इसके सोलहवाँ प्रकाशन 1931 में हुआ। इस ग्रन्थ का प्रचार बहुत अधिक हो गया है।

योरोपियों के व्याकरण प्रधानतया विदेशियों को मलयालम का ज्ञान देने केलिए ही लिखे गये हैं। इन में अधिकतर ग्रंथ अंग्रेज़ी में लिखे हुए हैं। किसी में अंग्रेज़ी और मलयालम दोनों भाषाओं का प्रयोग मिलता है। जार्ज मात्तन का मलयाळमयुटे व्याकरण मलयालम में ही लिखा हुआ है।

- -

2. George Mathan's Malayalmayute Vyakaran
3. Drummond's grammar of the Malayalam language.
4. Spring's Malayalam grammar
5. A Progressive grammar of Malayalam for Europeans - Frohnmeyer
6. Joseph Peet's Malayalam grammar.
7. Garthewaite's Malayalabhasha Vyakaran.

केरल के पंडितों ने अपनी भाषा में व्याकरण या निघण्टु के निर्माण की ओर सदियों तक ध्यान न दिया। उन्होंने सोचा होगा कि अपनी भाषा में इसकी आवश्यकता नहीं है, अपनी भाषा में आदान विनिमय तथा साहित्यिक प्रवृत्ति व्याकरण के विशेष गठन के बिना संभव है। पर मणिप्रवाल की कृत्रिमता बढ़ जाने पर उसपर नियन्त्रण लाना आवश्यक हो गया। इसलिए 'लीलातिलकं' की रचना हुई उसका रचनाकाल 1355 और 1400 के बीच में है। इसकी रचना मणिप्रवाल - कृतियों में स्वाभाविकता तथा विकास दे सकी। जब यूरोपियों ने मलयालम में व्याकरण तथा निघण्टु के निर्माण किए तब हमारे पंडितों का भी ध्यान इस विषय में गया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में मलयालभाषा के कई व्याकरण प्रकाशित हुए।

वैक्काट्टु पाच्चुमूत्तु का केरल भाषा व्याकरण 1875 में प्रकाशित हुआ। संस्कृत व्याकरण पद्धति पर उन्होंने अपना व्याकरण तैयार किया है। इसे पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दो भागों में बांटा है। उत्तरार्द्ध के अन्त में अलंकारों का विवरण भी दिया है। कोवुण्णि नेडुंगाडी की केरल कौमुदी 1878 में प्रकाशित हुई। लेखक संस्कृत तथा मलयालम के अच्छे पंडित थे। महाराजास कालेज त्रिवेन्द्रम तथा प्रेसिडन्सी कालेज, मद्रास में वे वर्षों तक भाषाध्यापक थे। गुण्डर्ट गारथ्वेट आदि यूरोपीय ~~आदि यूरोपीय~~ वैयाकरणों की रचनाएँ उन्होंने देखी थीं। नेडुंगाडी ने अपने व्याकरण सोलह अध्यायों में लिखा है। अन्तिम अध्याय में पदव्याख्या तथा वाक्य विग्रह दिए हैं। ए.आर.राजराजवर्मा का केरलपाणिनीयं इस शाखा की सबसे प्रमुख रचना मानी जाती है इससे उनको केरलपाणिनि की उपाधि प्राप्त हुई। सूत्र शैली में कारिकाओं में अलग-अलग देकर उन्होंने अपना व्याकरण रचा है। पीठिका में केरल देश तथा उसकी भाषा पर प्रकाश डाला है। पीठिका काफी लंबी तथा वैज्ञानिक है। मलयालम भाषा को प्राचीनकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल में विभाजित किया है। अक्षरमाला से शब्दोत्पत्ति तक व्याकरणिक बातों पर चर्चा की गई है। केरलपाणिनीयं ही मलयालम व्याकरण का प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसके अलावा स्कूल विद्यार्थियों के उपयोग के लिए लेखक ने शब्दशोधिनि, मध्यमव्याकरण तथा लघुव्याकरण लिखे हैं। ए.शेषगिरि प्रभु का 'केरलमित्रम' 1903 में प्रकाशित हुआ। प्रभुजी संस्कृत तथा अंग्रेज़ी के बड़े पंडित थे। वे

- -

(1) भाषापोषिणि तथा उत्तरकेरल तलशेरी में थी। पृष्ठ-103

राजमहेंद्री ट्रेनिंग कालेज के प्रिंसिपल थे । व्याकरण तथा भाषाशास्त्र में उनका विशेष अधिकार था । केरलपाणिनीयं जब प्रकाशित हुआ तब प्रभुजी भाषापोषिणी[1] मासिक पत्र में उसकी व्याख्याएँ तथा चर्चाएँ प्रकाशित करने लगे । ये व्याख्याएँ तथा चर्चाएँ अध्यापकों के लिए [illegible] जैसे काम में आयी । भाषापोषिणि सभा की प्रार्थना से प्रभुजी ने व्याकरणनिर्माण किया । इस व्याकरण में वाक्यरचना भाग को छोड़कर बाकी भाग संस्कृत व्याकरण पद्धति पर लिखा गया है । वाक्यरचना अंग्रेज़ी व्याकरण पद्धति के अनुसार है ।

इनके अलावा यहाँ दो-तीन व्याकरण ग्रन्थों का सामान्य परिचय देना नितांत आवश्यक है [1] काल्डवेल का लिखा हुआ द्राविडभाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण इनमें मुख्य है । इस में चार द्राविडभाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण है । डा.एस.के.नायर ने इसे मलयालम में अनूदित किया [2] दक्षिण भारत का पहला व्याकरण ग्रन्थ 'तोलकाप्पियं' का भी उल्लेख करना ज़रूरी है । मलयाली लोग अब दुनियाँ के कोने कोने में पहुँच गए हैं । उनके साथ उनकी मातृभाषा ज़रूर भी रहती । केरल की संस्कृति ने विभिन्न एवं विदेशियों को आकर्षित करते आए हैं । इन कारणों से अमेरिका, रूस आदि देश के लोगों को मलयालम पढ़ने की इच्छा होती है । उनको अंग्रेज़ी माध्यम से मलयालम पढ़ाने के लिए कई ग्रन्थ लिखे गए हैं । डा.के.ई.चार्ल्स की मलयालम ग्रामर एंड रीडर[3] इस तरह की एक पुस्तक है । इन ग्रंथों का भी परिचय यहाँ दिया जाएगा ।

शिक्षा का प्रचार और प्रसार हो जाने पर प्रादेशिक भाषाओं को पाठ्य पद्धति में प्रधान स्थान मिला । इस परिस्थिति में भारतीय भाषाओं का विकास हुआ । विद्यालयों में प्रादेशिक भाषा के अध्यापन के लिए कई नये व्याकरण ग्रन्थों की रचना हुई । इनमें अंग्रेज़ी पद्धति की प्रधानता हुई । स्वतन्त्रता के बाद जब भाषा के आधार पर प्रांतों का विभाजन हो गया तब प्रादेशिक भाषाओं को प्रथम स्थान मिला । यह प्रांतीय भाषाओं का सुवर्णकाल होता है । अन्य भारतीय भाषाओं के साथ मलयालम भी आगे बढ़ रही है । अंग्रेज़ी माध्यम के विद्यालयों के छात्रों के लिए मलयालम में उसी माध्यम के कई व्याकरण ग्रन्थ प्रकाशित हो रहे हैं । राष्ट्रभाषा हिन्दी

- -

(1) द्राविड भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण - आर.आर. काल्डवेल -

(2) डा. एस.के. नायर के द्वारा मलयालम में अनूदित

(3) डा.के.एम. चार्ल्स का लिखा हुआ मलयालम व्याकरण और रीडर
1971 - एम.डी.एस - कोट्टयम

केरल के विद्यालयों में अनिवार्य रूप से पढ़ायी जाती है । कई बातों में हिन्दी और मलयालम व्याकरणों की समानता होती । दोनों भाषाओं का पारस्परिक संबन्ध दोनों की दृढ़ता बढ़ाती है

मलयालम के प्रमुख योरोपीय व्याकरण लेखक :

(1) रोबर्ट ड्रमौंड का मलबार भाषा व्याकरण :

यह 1799 में प्रकाशित हुआ । इसे मलयालम का प्रथम व्याकरण कहा जा सकता है लेखक ईस्ट-इन्डिया-कंपनी के मेडिकल विभाग में डाक्टर थे । मैसूरयुद्ध के बाद मलबार ईस्ट - इन्डिया कंपनी के अधीन में आया । कंपनी के अधिकारियों को मलयालम जानने की आवश्यकता हुई । इसकी पूर्तिके लिए ड्रमौंड ने इस ग्रन्थ की रचना की । यह तेरह संवादों में बंटा हुआ

प्रथम संवाद में शब्दों के उच्चारण के बारे में विचार विनिमय हुआ है । शब्द दो तरह के होते हैं । (क) अ, इ, उ, अम्, अल्, अर्, अन्, यम्, ल्, र्, ओम्, ओन्, ळ् या ण् अन्त होते (ख) दीर्घ आ या ई अन्तवाले शब्द । शब्दों के साथ कारक का प्रयोग दिखाया गया है : विद्दु (कर्ता) विविनु (संप्रदान) विविने (कर्म) विदी (संबोधक) प्रयोजक के चार विभाग होते हैं : पहला प्रयोजक, दूसरा प्रयोजक, तीसरा प्रयोजक और चौथा प्रयोजक । विविक्कु (प.प्र) विविक्कॊट, (द्.प्र) विविनाल् (ती.प्र) विविक्कु मिन्नु (चौ.प्र) बहुवचन में 'कळ' जोड़ते हैं । पुरु, अम्म आदि अकारान्त होते हैं । अक्षिय (बदनोर) शब्द में 'अन्मार' मिलाकर बहुवचन रूप बनाया जाता है : अक्षियन्मार । मला (पहाड़) में कारक मिलाकर मलये (पहाड़ को), मलयुटे (पहाड़ का) रूप बनाया जाता है । मलेटे, मलेने आदि प्रयोग अलंकृत लोगों में प्रचलित है । बहुवचन केलिए 'कळ्' मिलाना अच्छा है : पटयाळिकळ् (सैनिक)

दूसरे संवाद में विशेषण तथा लिंग के बारे में चर्चा है । विशेषण संज्ञा के पूर्व प्रयुक्त होते हैं । ल्लाववरुम् कारक मिलने पर ल्लाववरुटे । विशेषण कारक रहित भी होते हैं : *नल्ला, *वेलुत्त आदि । क्रियाएँ विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं - जैसे पशु पेट्टा > पेट्टुपोयिट्टुल्लवन् (उत्पन्नबालित) , अन्तिम अ को जोड़कर विशेषण बनाते हैं : भरत समर्थ , ट द्वित्व करके विशेषण बनाते : वट्टुकार्य (बरेलूबात) , अन् मिलाकर विशेषण बनाते : नव्युन् (पेट्) ०, स्त्रीलिंग में इ जबरि , संख्यावाचक विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं :

ओराट् (एकवाल) को जोड़कर क्रमवाचक बनाते है : ओन्नाम् , काम्, कालिल, काम्बिलु, कामिर्द, काळु, म्मर्यु, पेरिका, मको आदि तुलनात्मक विशेषण के प्रयोग होते है । ईश्वर, देवदूत आदि पुल्लिंग होते है । पेण्णु स्त्रीलिंग और कल्लु नपुंसकलिंग है ।

तीसरे भाषण में सर्वनाम का विवरण है । पुरुषवाचक सर्वनाम उत्तम, मध्यम, अन्य तीन तरह के होते है । मध्यमपुरुष अडे : आप (आदरसूचक) है । संबन्धकारक निन्टे (तुम्हारा) होता । उसका मिलाकर निन्नुडे वस्तु (तुम्हारी चीज़) संबन्ध रूप में प्रयुक्त होता है संबन्धवाचक सर्वनाम : नीपरंञतु (तुम्हारा कथन) एतु, एन्तु, प्रश्नवाचक सर्वनाम है । लेखक ने स्वीकारात्मक तथा निषेधात्मक दो तरह के सर्वनाम को स्वीकार किया है , पलर, चिला मनुष्यन[1] स्वीकारात्मक है , आरुम , ओरुत्तन, एतुम निषेधात्मक होते[2]।

1, 2 नल्ला , वेकुन्न ये दीर्घान्त नहीं । अकारान्त होते है । उच्चारण की सुविधा केलिए दीर्घ रूप दिखाया है । नहीं तो नल्ल्, वेकुन्न् उच्चारण ठीक न होगा । मलयालम के उच्चारण नियम देखिए ।

चौथा संवाद क्रिया के बारे में है । लेखक कहते है कि मलबार की भाषा में क्रियाएँ अव्यक्तिवाचक होती है । वस्तुतः वर्तमान, भूत तथा भविष्यत् तीन काल ही होते है । अन्य कालों की रचना प्रत्ययों को मिलाकर बनाते है । क्रियाओं के साथ उण्ड्, उण्ड़ु आदि जोड़ते है । कुन्नु उण्ड् (वर्तमान) आयि उण्ड् (भूत) आयुमोह (भविष्यत्) । भूतकाल के चार भेद दिखाए गए है (1) स्नेहिच्चु (प्यार किया) (2) स्नेहिच्चाल्(प्यार किया तो (3) स्नेहिच्चातु (प्यार किया गया तो) (4) स्नेहिच्चिट्टु (प्यार करते करते) भविष्य दो तरह के होते है (1) स्नेहिक्कुम् (प्यार करेगा) (2) स्नेहिक्कुमार (प्यार किया जाए) । विधायक क, कुन्नु, व्वासुम् मिलाकर बनाया जाता है । स्नेहिक्क, स्नेहिक्कुक (प्यार करो) स्नेहिच्चालु (प्यार कीजिए) । अपूर्ण क्रियाएँ : उण्डु जोड़कर अपूर्ण क्रिया बनायी जाती है : अपूर्ण वर्तमान : स्नेहिक्कुन्नु उण्डु , अपूर्ण भूत : स्नेहिच्चुउण्डु,अपूर्ण भविष्यत् : स्नेहिक्कुम् उण्डु ।

- -

1. अनेक लोग, कुछ लोग, अन्य आदमी 2. कोई , एक आदमी, कोई वस्तु

पाँचवाँ संवाद काल के बारे में है। वर्तमान काल से भूतकाल बनाने की कई रीतियाँ दिखायी गयी है (1)[1]आकुन्नु > आयि (2) उरुकुन्नु > उरुकि (3) पुरट्टुन्नु > पुरट्टि (4) कोटुक्कुन्नु > कोटुत्तु (5) वाङ्ङुन्नु > वाङ्ङि (6) कारुन्नु > कण्डु, कोल्लुन्नु > कोण्डु, [2]चैयताल > चैयतिट्टु, चैयतारे आदि प्रयोग भी दिखाये है।

छठे संवाद में प्रेरणार्थक क्रियाएँ और सातवें में कर्मणि प्रयोग दिखाये गये है। प्रेरणार्थक बनाने केलिए प्पि, क्कु और यु, न्नु प्रत्यय मिलाते है : [3]स्नेहिक्कुन्नु > स्नेहिप्पिक्कुन्नु, तल्लुन्नु > तल्लिक्कुन्नु, तिन्नुन्नु > तीट्टुन्नु। 'पेटुन्नु' का प्रयोग करके कर्मणि प्रयोग बनाया जाता है : [4]काणुन्नु > काणप्पेटुन्नु।

आठवाँ संवाद क्रियाओं के साथ पुरुषप्रत्यय मिलाने के संबन्ध में है। उत्तमपुरुष और अन्य पुरुष में लिंग-वचन प्रत्यय मिलाये जाते है। यह साधारण नहीं। [5]आन् स्नेहिक्कुन्नेन्, अवन् स्नेहिक्कुन्नान्, अवळ् स्नेहिक्कुन्नाळ्, अवर् स्नेहिक्कुन्नार्। मध्यमपुरुष में [6]कण्टाय, कण्टीर प्रयोग भी कहीं कहीं देखा जाता है। प्पान और प्पार भविष्यत् काल में प्रयुक्त होते है।

नवाँ संवाद उप-क्रियाओं को प्रस्तुत करता है। ये क्रियाएँ स्वीकृति और निषेध दो तरह के होती है : [7]उण्टु, वेणम स्वीकृति क्रियाएँ है और [8]'इल्ला' और 'वेंटा' निषेध। निषेध में कूटा, वय्या भी है। निषेध प्रत्यय भी दिखाए गए है।

दसवाँ संवाद पैरच्चान् प्रयोग को लेकर चलता है। क्रियाओं की पुष्टि तथा शोभा दिखाने केलिए ऐसा अनुप्रयोग करते है। [9]कोट्टुन्नु, वन्नुन्नु, पडन्नु, वरिकुन्नु आदि पैरच्चान् प्रयोग होते

- -

(1) 1. होता हुआ 2. पिघलता पिघला 3. ताला लगाता ताला लगाया
4. देता दिया 5. राय करता राय किया 6. ले करता ले किया 7. मारता मा

(2) उसने (स्त्री) किया, करके, किया

(3) प्यार करता प्यार कराता, मिटना मिटवाता, खाता खिलाता

(4) देखता देखा जाता

(5) मैं प्यार करता हूँ, वह प्यार करता है, वह प्यार करती है, वे प्यार करते है।

(6) तुमने देखा।

(7) होता है, चाहिए (8) होता नहीं, नहीं चाहता (9) हो जाता, तैयार होता, जाता, बैठता

(10) बीज बीज लेनेवाला, बैंगी का पत्ता (11) सर्प का दाँत

ग्यारहवाँ संवाद वाक्य रचना का अर्थ स्पष्ट करता है । इसमें शब्द रचना के भी उदाहरण मिलते हैं : (10) कुमट् → कुमट्टाळ् । वायुविला आदि शब्दों में विभक्तिप्रत्यय नहीं मिलाया गया है । पर पायुपट्टु आदि प्रयोग गलत है । (11) पापिन्टे पट्टु करना आवश्यक है । भाषा में संप्रदान कारक का विशेष प्रयोग होता है : एनिक्कु उपकारं उण्टायिल्ला । (मुझे उपकार नहीं हुआ) इस तरह अन्य विभक्तियों के बारे में भी उदाहरण दिए हैं । क्रियाविशेषणों को भी सोदाहरण दिखाया गया है ।

बारहवें संवाद में सन्धिकार्य बतलाया गया है । आरम्भ + इल्ला आरम्भिल्ला (कोई नहीं) वन्न + आद् वन्नाद् (वह आयी) पेय्तु + इट्टु पेय्तिट्टु (डाले) आदि ।

तेरहवें संवाद में व्याकरण की बातें नहीं है । वर्ष, मास, नक्षत्र तथा अन्य कालों का विवरण है । कोल्लवर्ष का आरम्भ कोल्लं नगर राजधानी बनाने के उपलक्ष में हुआ है । अनुगामी वैयाकरणों को ड्रुमोंड के व्याकरण से कई मार्ग प्रशस्त हुए हैं ।

मलयालम के शब्द स्वरान्त या विसन्त होते हैं । स्वरों में अ, इ, उ, ए, ऐ और ओ, औ तथा संवृत उकार आते हैं । ण्, र्, ल्, ळ्, न् ये पांच चिल्लु होते हैं । अनुस्वारान्त शब्द भी होते । लेखक ने उकार तथा संवृत उकार को छोड़ दिया है । इसका कारण यह होगा कि लिखावट में उ या अर्द्ध उकार को ~~छोड़ दिया है~~ चिह्न नहीं दिखाये जाते थे । प्रसंग के अनुसार मलयाली लोग उन्हें ठीक उच्चारण कर सकते थे । पर अन्य भाषा भाषी यह नहीं कर सकते । काट्[1] का मतलब है जंगल, काटा[2] है एक तरह की चिड़िया, जब 'काट' बिना किसी चिह्न के लिखा जाता तब प्रसंग के अनुसार मलयाली उसका उच्चारण ठीक कर सकते और अर्थ समझ सकते । लेखक ने इसे छोड़ दिया है । काल के संबन्ध में कई जटिलताएँ आ गयी हैं । धातु के स्थान पर वर्तमान काल को ही दिखाया है । सन्धि का विवरण अपूर्ण है, सन्धि और समास को मिलाकर सन्धि कार्य दिखाया है । फिर भी ड्रुमोंड की रचना प्रशंसनीय तथा वैज्ञानिक होती है । करीब दो सौ वर्ष पहले एक अंग्रेज का यह प्रयत्न सर्वथा आदरणीय है ।

- -

(1) ˘ अर्द्ध उकार का चिह्न जैसे काट्, माट्, वीट्, कर्म्, मर्म् आदि ।

2. दीर्घ नहीं । ह्रस्व 'अ' है । उच्चारण सुविधा केलिए ऐसा लिखा है ।

(2) स्प्रिंग का मलयालम ग्रामर

. . . .

एफ़. • स्प्रिंग भी ईस्ट इण्डिया कंपनी में काम करते थे। कंपनी के अफ़सरों को मलयालम पढ़ाने केलिए गवर्नर की आज्ञा से उन्होंने यह ग्रन्थ लिखा। ग्रन्थ का पूरा नाम था 'उत्तर और दक्षिण मलबार तथा ट्रावनकोर और कोचिन राज्यों में बोली जानेवाली मलयाळी भाषा के व्याकरण की रूपरेखा। इसका प्रकाशन 1839 में हुआ।

यह छै भागों में विभाजित है। वर्ण : सात ह्रस्व स्वर और सात दीर्घस्वर, कण्ठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दन्त्य और ओष्ठ्य - 25, अर्धस्वर य, र, ल, व, चौथी 'ळ' द्राविडमूर्धन्य ळ, ऱ, ऴ और दन्त्य ऱ्ऱ कुल 51। उच्चारण के बारे में उन्होंने लिखा है कि 'ट'-टव ध्वनि और ऱ-त्र। सन्धिकार्य में प्रधान रूप से य और व का आगम दिखाया है: तलक + अल्ला तलक्कल्ला (मैंढक नहीं) कुम + उं कुमवुं (कुम और) शब्दों में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया क्रिया नाम, और कृदन्तनाम। अव्ययों में समुच्चयबोधक और विस्मयादिबोधक आते हैं। अनुनासिक के स्थान पर अनुस्वार भी प्रयुक्त होता है : अङ्क या अंक। संयुक्ताक्षर बनाने की रीति भी दिखायी है। स्वरों के उच्चारण में विशेषताएँ होती हैं : अकार के दो उच्चारण होते शुद्ध तथा तालव्य : वटा > वैटा। जिन शब्दों के आदि में र या ल हो उच्चारण केलिए स्वर की सहायता ली जाती है : राजा > अरचन्, लक्ष्मी > इलक्ष्मी। पदान्त 'य' 'ह' में परिणत होते कन्या > कन्नि, सन्ध्या > अन्ति। उ कार दो तरह से होते, पूर्ण उकार तथा अर्द्ध उकार, उस या अर्द्धउकार चिह्न लगाये बिना भी कहीं कहीं शब्द लिखे जाते हैं : कण्ण (आँख)। इ और उ कहीं कहीं ए और ओ हो जाते : इला (पत्ता) > एला, पुटवा (कपड़ा) > पोटवा। मलयालम में 'ऋ' कार नहीं, पर अक्षरों के साथ ऋकार का प्रयोग प्राचीन गीतों में भी देखा जाता है, ए अद्भुत आदि। शब्द के अन्त के दीर्घस्वर ह्रस्व हो जाता है : रमा > रम, नदी > नदि। प शुद्धमलयालम में नहीं है। विसर्ग संस्कृत शब्दों में ही आता है। ∴ 'भारत' तमिळ में जो होता वह मलयालम में भी होता था। अब इसका प्रयोग गणित तक ही सीमित[1] है।

व्यंजनों में भी कई विशेषताएँ होती हैं : स्वरों की मध्यस्थ में 'मृदु' उच्चारण होता है मकन् > मगन् कहीं कहीं स्वराक्षर लुप्त भी होते : प्रकृति > प्रांति (आदत)। तवर्ग और ऊष्म को 'च' आता है : वर्ष > वर्ष, मार्ग > मार्त्त। तवर्ग तथा ष कार केलिए 'ट' आता है :

[1] पृ०6-109

मेघं > मेट्ट । सवर्ग तथा सकार को 'त' आता है : दीप्ति > तीप्ति, तृप्ति > तृप्ति । सवर्ग को 'प' आता भट्टन् > पट्टर, कहीं कहीं पदमध्य का 'प' व बनता है । उपाध्याय > वाध्याय

अनुनासिक :- मृदु उच्चारण होनेवाले स्वरों से मिलनेवाले अनुनासिक विकल्प में द्वित्व हो जाते हैं : 0क ङ्ङ, उ-यं > उ-ञ, न्द > न्न, न्तु > न्नु, न्द > न्न, म्ब > म्म, न्ट > ण्ण तालव्य स्वरों से 'य' और ओष्ठ्य स्वरों से 'व' संबद्ध होते हैं । कहीं कहीं 'य' 'व' बन जाता : प्राणम् > परयाम् (कहनेकेलिए) 'व' बार उच्चारण में लुप्त हो जाता है : वरूवान् > वरान् (आने को) । द्वित्व स्वरों के पहले का 'स' लुप्त होता है : कालकूलम् कालकूटम् । ष और क के दृढ संबन्ध से दोनों के स्थान में ह् होता है । अर्थ ष और क द्वित्व स्वरों के पूर्व लुप्त होते : काम्यूप्ति > काम्यित्ति ।

ह्रस्व स्वरों के उच्चारण की एक मात्रा, दीर्घों की दो मात्राएँ तथा ऐ औ की तीन मात्रा होती है । अर्थ उकार तथा व्यंजनों केलिए आधी मात्रा होती है । कई व्यंजनों को एक साथ मिलाकर लिखने या उच्चारण करने की प्रथा मलयालम में नहीं है । इसलिए तद्भवों में लोप या मिलाकर उच्चारण सुगम बनाया जाता है : सूर्य > सूर्यु, दुर्योधनन् > दुरियोधनन्।

सन्धि : स्वरसन्धि : संस्कृत जैसे मलयालम में स्वरयोग नहीं होता या तो पदान्त का स्वर लुप्त होता या य् या व् व्यंजन का आगम होता । अर्थ + एटं > अर्थिटं, वेटुक + सला > वेटुकविला आट्टिक + अमरित्वरा आट्टिकमरित्वरा (आलाप) ओर्क + एटो > ओर्केटो (याद करो)

लिंग और वचन :

अन्, र, अं पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग सूचक प्रत्यय है । कई शब्दों में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के रूप भिन्न है : राणी > राजा, आना (हाथी) > पिटियाना (हथिनी) अर, र ओ मार् बहुवचन प्रत्यय होते है ।

जैसे तोल्काप्पियम् ने विभक्ति पर विचार किया है, वही इसमें भी है । एकवचन तथा बहुवचन के प्रत्यय अलग अलग दिखाए गये है । कारक रचना के कई नियम दिखाये गये है : उकारान्त संज्ञाओं में उटे और अं अन्त में त जुड जाते : मन्त्रि मन्त्रिकुटे, मरं मरत्तिन्टे । विभक्ति

- -

1. इसलिए के अर्थ में आयतुकोन्ट गणित में प्रचलित है
2. प्राचीन कविताओं में यह लोप देख सकते ।

बनाने केलिए लाया, उसका पीछे जाते । संख्याओं का रूप दिखाया है : ९ (1) ൻ (8) ൯ (9
'आम' मिलाकर क्रमवाचक बनाते हैं : ओन्नाम

सर्वनाम : ञान (एकवचन) (मैं) नोम, नम्मळ्, नुम्मळ् (हम) के प्रयोगों के बारे में विस्तार से वर्णन है । सर्वनामों में कारक चिह्न लगाकर उदाहरण दिए गए हैं । संबन्धवाचक सर्वनाम 'यातोरुत्तन्' (जो) बाद में आनेवाले नाम से संबन्धित होता है । अ और इ से अवन् इवन् (वह, यह) सर्वनाम आए हैं । आर (कौन) प्रश्नवाचक सर्वनाम है ।

क्रिया :- मलयालम में क्रिया का प्रयोग सरल है । वर्तमान, भूत, भविष्यत् तीन काल होते हैं । क्रियाओं में लिंग - वचन प्रत्यय नहीं मिलाते । विधायक में एकवचन और बहुवचन अलग होते हैं : स्नेहिक्कु (एकवचन) स्नेहिप्पिन् (बहुवचन) प्यार करो, प्यार कीजिए निषेध में स्नेहिक्कुन्नु (प्यार करता है) स्नेहिच्चु (प्यार किया) स्नेहिक्कुम् (प्यार करेगा) वर्तमान, भूत और भविष्यत् होते हैं । अनुज्ञार्थक में 'स्नेहिक्कणं' (प्यार कीजिएगा) प्रयुक्त होते हैं । संकेतार्थ में स्नेहिच्चेंकिल् (अगर प्यार किया तो) प्रयुक्त होते । कर्तृवाच्य कर्मवाच्य और प्रेरणार्थक क्रियाएँ दिखायी गयी हैं : मुरिक्कुन्नु (कटता) मुरियुन्नु (कटता) मुरिप्पिक्कुन्नु (कटवाता) पहला अकर्मक और दूसरा सकर्मक होता है ।

आकुन्नु (होता) इरिक्कुन्नु (बैठता) आदि सहायक क्रियाएँ होती हैं । आसन्नभूत में 'उण्ट' मिलाया जाता है : पोयिट्टुण्ट (गया है) क्रिया की स्वाभाविकता दिखाने केलिए आर् प्रयुक्त करते : कुडिक्काऱुण्ट (पिया करता) भूतकाल के प्रयोग में चि, न्नु, त्तु या न्तु आते हैं : पोक्कि (उठाया) पाड़ुन्नु > पाड़ु (कहा) केळ्क्कुन्नु > केट्टु (सुना) । अल्ल, इल्ल, अरुतु लगाकर निषेध बनाते हैं । वेण्डा का निषेध वेण्टा है । कोण्ड्न्नु गेटकान्नु प्रयोग है : अपेक्षिक्कुन्नु (विनम्र प्रार्थना करता हूँ)

क्रियाविशेषण के उदाहरण हैं : ऑविट्टु, क्रमेण, सुखेन आदि । संबन्ध बोधक, समुच्चय बोधक, विस्मयादिबोधक अव्यय होते हैं । लेखक ने 27 शब्द दिखाएँ हैं : स्थाने ,(अ मेलोट्टु (ऊपर) आदि ।

वाक्य रचना और समास : वाक्य के पाँच भेद दिखाए गए हैं :

1. एनिक्कु मुरिञ्ञु (मुझे चोट लगी) 2. अवन् एन्ने मुरिक्कुन्नु (वह मुझे काटता है) 3. ञान् अवनाल् मुरिक्कप्पेट्टु (मैं उससे काटा गया) 4. अवन् माट्टवनेक्कोण्ट एन्ने मुरिप्पिक्कुन्नु

(वह किसी अन्य से मुझे कटवाता है) 5. ञान् अवनाल् [illegible] मुरिक्कप्पेट्टु (मैं उससे किसी अन्य से कटवाया गया)।

कई क्रियाओं के कर्ता संयोजिका (तृतीया) विभक्ति में प्रयुक्त होते :- एनिक्कु विशक्कुन्नु (मुझे भूख लगती है)

समास के उदाहरण विग्रह करके दिए गए हैं। पर समासों का नाम नहीं दिया गया। अन्त में लोकोक्तियाँ,[1] कहानियाँ[2] तथा भाषा संबंधी नमूने दिये गये हैं।

ड्रिग का व्याकरण ड्रमोंड के व्याकरण का विकसित रूप है। वर्णों के बारे में विस्तृत वर्णन इसमें मिलता है। संयुक्ताक्षर सन्धि कार्य आदि विस्तार से दिखाया गया है। ए और ओ के ह्रस्व और दीर्घ अलग नहीं दिखाया गया। इसका कारण यह होगा कि लिखावट में अलग प्रयोग नहीं था। क्रियाओं तथा वाक्यों के प्रयोग में त्रुटियाँ देखी जाती हैं। पर एक विदेशी मलयालम में इतना ज्ञान पाकर दूसरों को दे सके, यह प्रशंसनीय ही है।

डा. गुंडर्ट का मलयालम भाषा व्याकरण :

डा. हरमन गुंडर्ट जिनका जन्म जर्मनी में हुआ एक मिशनरी होकर यहाँ आए। भाषाएँ पढ़ने में उन्हें विशेष रुचि थी। वे अनेक भाषाएँ जानते थे। भारत में आकर उन्होंने कई भारतीय भाषाएँ सीखीं। उत्तर मलबार के तलश्शेरी में वे बीस साल तक रहे। मलयालम पढ़कर उन्होंने उस भाषा का एक प्रामाणिक व्याकरण लिखा। व्याकरण के अलावा मलयालम - अंग्रेज़ी निघण्टु, तथा केरल का इतिहास भी लिखे। उनका मलयालमभाषा व्याकरण 1851 में प्रकाशित हुआ। उसका पूर्णरूप 1868 में निकला। देशी वैयाकरणों ने गुंडर्ट के व्याकरण की बड़ी प्रशंसा की है उसके आधार पर अपने - अपने व्याकरण लिखे हैं। गुंडर्ट ने अपने व्याकरण में मलयालम तथा अंग्रेज़ी का प्रयोग किया है।

गुंडर्ट के व्याकरण के तीन काण्ड होते हैं : अक्षरकाण्ड, पदकाण्ड और वाक्य काण्ड। पहले में वर्णों या अक्षरों का वर्णन है, दूसरे में पदों का और तीसरे में वाक्यों का।

---

1. बुरे लोग उपदेशों से अच्छे नहीं बनते जैसे कुत्ते की पूँछ सीधा न कर सकते।
2. पाक्की और अम्मी, केरलोत्पत्ति की कहानियाँ आदि।
3. मलयालम में अर्द्ध चन्द्राकार लगाने की प्रथा है। बिन्दी लगाने की रीति लागू की है।

अक्षरकाण्ड : गुण्डर्ट ने लिखा है कि मलयालम में दो लिपियाँ प्रचलित हैं : वट्टेळुत्तु या कोलेळुत्तु तथा आर्यएळुत्तु । अब आर्यएळुत्तु को सर्वस्वीकृति प्राप्त हुई है । मलयालम में 12 स्वर होते हैं । स्वरों को तमिळ व्याकरण के आधार पर उयिरेळुत्तु नाम दिया है । अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, ओ, औ ।

व्यंजन 18 होते : स्पर्श : क, च, ट, त, प, ऱ अनुनासिक ङ, ञ, ण, न, म, ऩ अन्तस्थ य, र, ल, व, ऴ, ळ । तमिळ के अनुसार इन्हें भेद करते हैं । खरिन्, मृदु, घोष और ऊष्म संस्कृत से लिए हुए हैं । इनके साथ 'ळ' भी मिलाने पर 20 होते हैं जब संस्कृत से स्वीकार किया गया है । तब कुल 38 व्यंजन होते हैं । व्यंजनों में स्वर-चिह्न लगाने की प्रथा दिखाई गयी है । स्वर रहित व्यंजन को दिखाने के लिए ऊपर बिन्दी[3] लगाते या अक्षरों के साथ ऊपर की रेखा लगाते हैं : ट्, ण्, आदि ।

स्वरों के पूर्व अर्ध उकारान्त हो जाता है : अवर्न् + एल्ला > अवनेल्ला । विवृत उकार के साथ 'व' का आगमन होता है : प् + उ + पुदु (कुछ भी) आकार को 'व' सहायक होता पिता पिताव् । ई कार का लोप होता है : कुट्टाति + एल्लाम् > कुट्टातिल्लाम् । यी के साथ य आता गोर्वि + उं > गोविंयु, य भी आता है : उप्पी + एन्नु > उप्पीयेन्नु ।

व्यंजन सन्धि :[1] मन + चिऱा मच्चिरा, किन + तर्द किण्डर्द, एन + चिरा एच्चिरा, वालिन + कीऴ् वालिक्कीऴ्, अवन + चोन्न > अवच्चोन्न, आन + तान > आन्तान्, एन + पे एम्पोऱ्ऱ, पोन + मर्द पोम्मर्द, पेरु + कोविलक पेरुक्कोविलक, वारिक्कु + चेप्पु वारिक्कुच्चेप्पु, वळ + तोट > वळ्ळ्तोट, पाळु + नेर > पाळुन्नेर, कै + विरल् > कैव्विरल्, नीर + आवि > नीरावि, चेरु + पाट > चेप्पाट, पाल् + कुटा > पाल्कुटा, मेल + तर > मेत्तर, तम्मिल् + वर्म > तम्मिल्वर्म, मेल + मेल > मेम्मेल, मलयाळ् + नाट > मलयाळनाट (मलयाळनाट) उत्त + मोव > उत्त्मोव, एव्वीक + एविट > एव्वीड्डिविट, वाऴ् + नाळ् = वाऴ्नाळ् (वाऴाळ्)

- -

(1) मिट्टी का बांध, आसमान, आठ दिशाएँ, पश्चिम के नीचे, उसका बनाया हुआ, मैं ही, मेरा संसार, सोने का घड़ा, बड़ी मछली, आधा ही हुआ, आते - जाते, मारते समय, बहुत रोका, रात हुई, बिछा हुआ खेत, दीपमाला, बढ़िया, आपसी झगड़ा, उपवांगि. पुत्रास्थिकार, मनोमिलाप, अभी वर्षा, तालम किया

अं + उं > अवः पापं + उं > पापवुं (पाप भी) , वशं + आयि > वशनायि (अधीन हुआ) फिर 'न' का लोप होकर 'वशायि' । तलमों का अं संवृत उकार होता है : रामं > रामँ , मरमं > मरमँ । क, च, त, प ये संधि में लुप्त होते : चेय्तु + कोळ्ळुं > चेय्तोळ्ळुं (करेगा) , अडन्हु + किडन्नु > अडन्डन्नु , वीटं + उडमानन् > वीट्टुडमानन् (घर का मालिक) , कोडु + का > कोट्टा (ताली)

समासों में पदादि के स्वर, क, ञ, त, प इनमें द्वित्व होता है जब गुरु स्वर आगे होता : ती + पिडिच्चु > तीप्पिडिच्चु (आग लगी) , अवनि + सेविच्चु > अवनेसेविच्चु (उसकी सेवा की) , कै + तालं > कैत्तालं (ताली) । तालव्य स्वर के पीछे भी : पट + कलं > पटक्कलं (सेना) , कार + ञावल (करिंदा) , वडिपोक्कम (चाबी) इसमें प का द्वित्व नहीं होता । तालव्य न होने पर भी द्वित्व साधारण है : भय + पेट्टु > भयप्पेट्टु (डर गया) , विवृत उकार के बाद भी : पुतु + चोल् > पुतुच्चोल (नयी बात) , पतु + पत्तं > पतुप्पत्तं (दस - दस) । संवृत उकार के बाद भी कभी कभी द्वित्व होता : मुत्तु + कुडा > मुत्तुक्कुडा । (मोतीछत्री) ट, ल, ळ के बाद द्वित्व होता : पोर् + कळं > पोर्क्कळं (लड़ाई का मैदान) , पाल + कटल > पालक्कटल (दुग्धसागर)

पेट्टुक, पाडु, पोटि से भी समासों में द्वित्व ही साधारण है, द्वित्व के बिना भी देखे जाते हैं : पुर + पाडु > पुरप्पाडु (निकलना) , मेल + पटि > मेल्पटि (उपर्युक्त) , चट्पाट (झटपट) झटपटि (व्यवहार) आदि भी देख सकते हैं ।

च, न्, म्, य्, ल्, ळ् ये अर्द्धाक्षर पूर्वस्वरों से मिलने पर द्वित्व होता है : मण् + इट्टु > मण्णिट्टु (मिट्टी डाली) , पिन् + ल्ल > पिन्निल (पीछे) , पोयि + अल्ला > पोयिल्ल (चूक नहीं) , नल् + आना > नल्लाना (अच्छा हाथी) , मुळ् + इल् > मुळ्ळिल (कांटे में) ।

पदकाण्ड :

अक्षरों के मेल से पद होते हैं । पदकाण्ड में नाम और क्रिया है । तमिल में इन्हें पेयच्चोल और विनच्चोल कहते हैं । इनके अलावा विशेषण (उरिच्चोल्लुकळ्) अव्यय तथा अन्त में दा, हू इत्यादि अनुकरणात्मक आते हैं ।

नाम (पेयच्चोल) (1) तीन लिंग : मलयालं में तीन लिंग होते हैं : पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग । प्राणियों के ही पुल्लिंग - स्त्रीलिंग भेद है । इसलिए पेड, पुरी आदि मलयालं में नपुंसक होते हैं । पुल्लिंग दिखाने का प्रत्यय 'अन्' है: पुत्रन(बेटा) , मकन(बेटा) कई नपुंसकों को भी 'अन्' प्रत्यय आता : प्राणन(प्राण), पुतन्(नया), मुक्कन(संपूर्ण)आदि ।

स्त्री लिंग के चार प्रत्यय होते हैं : कळ्, त्ति, च और संस्कृत नामों के 'आ' युक्त नाम । मकळ्(बेटी), ओरुत्ति (एक स्त्री) तालव्य स्वर में त्ति आती है, वटत्ति (मादा), मूर्धन्य में 'टि' होती तम्पुराट्टि (मालकिन), तोष़न (सखा) तोष़ि (सखी), स्नेहन (प्रिय) स्नेहा (प्रिया) ।

नपुंसक में अं प्रत्यय आता है : मरं, उ भी होता : अर्थं, कुम्भं ।

बहुवचन : वचन दो होते हैं : एकवचन और बहुवचन, बहुवचन के लिए कळ् और अर दो प्रत्यय होते हैं । पदान्त में आ, उ, ए, ऊ या ओ होते तो कळ् क्कळ् बन जाता है । पिताक्कळ्, पितृक्कळ् (पितृगण), पूक्कळ् (फूल), गोक्कळ्(गायें), गुरुक्कळ् (गुरुजन) आदि । पर कई शब्द इस नियम के अपवाद भी होते हैं : रात्रुकळ् (रातें), कात्तुकळ् (वायु) आदि । तालव्य स्वर के पर होने पर द्वित्व नहीं होता : स्त्रीकळ् (स्त्रियाँ), तैकळ् (पौधे), तलकळ् (सिर) । 'अर्ध उकार' और अर्ध र ल के परे भी द्वित्व नहीं होता : सम्पत्तुकळ्(संपत्तियाँ) पेरुकळ्(नाम), पेरुकळ् (नाम) आदि । अन्त में 'ङ्ङळ्' आता : [illegible](ग्राम), वृक्षङ्ङळ्(वृक्ष) आदि अर, अवर, अवर्कळ्, मार और कळ् : अर प्रत्यय पुल्लिंग-स्त्रियों से मिलाए जाते हैं : अवन् अवळ् अवर्, प्रियन्, प्रिया प्रियर्, अवर् और मार् भी पुल्लि-ङ्गियों में आते हैं । यह आदर सूचक होता है : राजावर्, नम्पियार्, देविमार् आदि । मार् प्रत्यय तेलुगु के 'वारु' से आया है : पुरुषन्मार्, भक्तन्मार् आदि । 'अर' और 'कळ' दोनों को मिलाकर कहने की रीति होती है : अवर्कळ्, बालाकळ्, रेफ लुप्त होकर देवकळ्, अमरकळ् आदि प्रयोग भी होते हैं । 'कन्मार' अनादर सूचक है : राजाक्कन्मार, गुरुक्कन्मार, पिताक्कन्मार । तेलुगु जैसे रेफ को ळ् बनाकर तथा मळ् प्रत्यय लगाकर बहुवचन बनाये जाते हैं : मुत्तोर मुत्तोळ मक्कळ् आदि ।

विभक्ति : संस्कृत के अनुसार मलयाळम में भी सात विभक्तियाँ (वेट्रुमकळ्) होती हैं प्रथमा, कर्ता इसे निर्विभक्ति भी कहते हैं । संबोधन इसका ही एक विकार होता है । प्रथमा से प्रत्यय मिलाकर अन्यविभक्तियों को बनाते हैं, उन्हें वह विभक्ति कहते हैं । द्वितीया : कर्म : 'ए' प्रत्यय : तालव्यकार भी हो सकता । तृतीया (करण) आल् प्रत्यय, ओटु, ओटॅ भी आते हैं । चतुर्थी : संप्रदान : 'कु' प्रत्यय, नु प्रत्यय भी आता है । पंचमी : अपादान : निन्नु प्रत्यय ।

षष्ठी : संबन्ध : उटय, अतु, तु प्रत्यय होते है : तन्नुटे (अपना) तन्नतं, तन्नुतं तन्नं बदलता है ।

सप्तमी : अधिकरण : इल्, कल् , वाल्, मेल्, कीषु आदि प्रत्यय होते है ।

मलयालम में संज्ञा दो तरह की होती है । चतुर्थी विभक्ति के अनुसार इन्हें कु विभाग तथा नु विभाग कह सकते । दोनों के रूप विभक्ति - सहित उदाहृत है ।

संस्कृत के कई शब्द उसी रूप में प्रयुक्त होते है ।

प्रतिसंज्ञाएँ :- गुंडर्ट ने सर्वनाम केलिए प्रतिसंज्ञा का नाम दिया है । पुरुषप्रतिसंज्ञाएँ ञान् , यान् (मैं) प्राचीन रूप, अवविभक्तियों में 'एन', बहुवचन दो है ञङ्ङळ् और नाँ (हम) । मध्यम पुरुष : नी (तू), बहुवचन : निङ्ङळ् (तुम), संबोधन में पुल्लिंग एटा (रे), स्त्रीलिंग एटी (री) । बहुवचन (एटो' का प्रयोग होता है । मध्यम पुरुष में 'तान्' (आप) का प्रयोग है । अ, इ, उ सुट्टेषुत्तु होते । इन में से अन्य पुरुष प्रतिसंज्ञाएँ बनायी गयी है । इनमें 'उ' का प्रयोग अब नहीं चलता । प्रतिसंज्ञाओं का विभक्ति प्रयोग दिखाया गया है । प्रश्नवाचक एन्त्, एन्तं(क्या) । अनिश्चित वाचक : इन्न(अमुक) । संस्कृत के सर्वनामों को उसी रूप में अथवा समासित रूप में प्रयुक्त होते है : 'तत्समयं' 'एतन्नाम' आदि ।

प्रतिसंज्ञाएँ - प्रतिसंज्ञाओं से मिलाकर एयन्, आर् , ओळं, मिक्क, पल, चिल आदि क्रिया के भेद (I) 1. कारित 2. अकारित (II) 1. सकर्मक 2. अकर्मक ।

काल तीन होते है (1) वर्तमान काल (2) भूतकाल (3) भविष्यत् काल । भावि के दो रूप होते है, पहला भाविका उं मिलाकर तथा दूसरा मु - म्मु मिलाकर बनाते है । वर्तमान में उन्नु भूत केलिए त, तु, न्नु प्रत्यय मिलाये जाते है । प्राचीन काल में पुरुष प्रत्यय मिलाने की प्रथा होती थी । पर अब वह लुप्त हो गई । अन्य द्राविड भाषाओं में ये प्रत्यय अब भी होते है । इन प्रत्ययों को मिलाकर कई उदाहरण दिए गए है ।

विनयेच्चम् ~~क्रियाविशेषण~~ क्रियांग : मलयालम के मुन विनयेच्चं भूतकाल के होते हुए भी भूतकाल प्रत्यय इ या उ कम देख पड़ते है । थि र्' बनता है, अर्धउकार स्वर पर होनेपर लुप्त हो जाता : वन्निट्टु (आकर लिया) ।

क्रियाओं के साथ : चाडिन्नुकोळ् > चाडिक्कोळ् (फलांगना) । नामों के साथ एळ-अल् निर्म > एळ-कर्म

मुक्ती । यही संस्कृत में क्त्वा प्रत्यय का स्थानापन्न करती है । फिर विध्यर्थक दूसरी भविष्य के वु - प्पु से बाद् अर्थ के आन जोड़कर : आकुवान् या आवान् (होने के लिए), पकुवान या पुवान (जाने के लिए) । व कभी कभी लुप्त होता : वरुवान > वरान (आने के लिए) यह संस्कृत के तुमुन्नन्त होता है ।

पेरेच्चम् : (नामांग) वर्तमान तथा भूत से बननेवाले पेरेच्चों को 'अ' प्रत्यय आता है : आकुन्न, आया (होता हुआ), पोकुन्न, पोया (गया हुआ) । भावि में आर्, आं आते हैं : आकुमार्, पोकुमोर । दूसरे भविष्य में ओळं, ओळ्, आर् आते हैं : वरुवोळं (आते तक), काण्मार् (देखते तक) ।

लिंग प्रत्ययों से होनेवाले पुरुषनाम : वन्नवन् (आया हुआ), वन्नवळ (आई हुई), वन्नत (आया हुआ) प्राचीन काल में नपुंसक के अनुस्वार (अन्त में न होनेवालेशब्द) भाविपेरेच्चों से : आकुन्नवन या आकुवतल । भविष्य नपुंसक : वरुमतं (आएगा) । त्रिकाल नपुंसक में इ, उ, ऊ जोड़कर : नोवितु(दर्द होता) पोवुतु (जाता), पायुतु (कहता) आदि होते हैं ।

विधि मद्ध्यमपुरुषों आदि : विधि को तमिळ में एवल् कहते हैं । यह मध्यमपुरुष में ही प्रयुक्त होता है । पो, इरु, कोट् आदि । बहुवचन में 'इन' जोड़ते : वरुविन , पोकिन । संस्कृत के जय, रक्ष, भव, प्रसीद, मृड, कुरु, देहि, पाहि, ब्रूहि , पाहि तथा बहुवचन के भवत, कुरुत, दत्त आदि शब्द उन्हीं रूपों में मलयाळं ने स्वीकार किया है ।

मद्ध्यमपुरुषों इससे भविष्य के उं को 'अ' बनाकर आयों, पोका आदि । उसका मना एप 'क' जोड़कर बनाये जाते हैं : कोल्लुक(मारना), चोल्लुक(कहना) आदि । विध्यर्थों के संबन्ध में काफी लंबा विवरण दिया गया है ।

क्रियाओं का रूपनिर्माण : क्रियानामों से नयी क्रियाएं बनती हैं : ऊ-ऊ प्रत्यय विकृ-ऊ एन - विकृ-ऊन्ना (भयातुर होना), उ - ओन्नु ओन्निक्क (एक साथ) , अं - मधुरं मधुरिक्क (मीठा - होना) अम् - मद्यपान मद्यपिक्का (मद्य - पीना) ऊ-उपमा > उपमिक्का (तुलना करना) इ - आदि > आदिक्क (अभिनय करना) अल् - पुतल् > पुतलिक्का (वर्षा होना) , स्का - तळ तळ्ळुका (दूर करना) प्रतीकात्मक क्रियाएं भी इस तरह बनायी जाती हैं ।

- -

कारित और अकारित को

1. अंग्रेजी में सशक्त क्रिया और अशक्त क्रिया कहते हैं :

ऊन क्रियाएँ : जो प्राचीन काल में पूर्ण क्रिया (मुट्टु, विना) होती थे कालान्तर में रूप भ्रष्ट होकर ऊन क्रियाएँ बन गयी है । एन, उळ, वल्, आल्, वेन्, अरु, वल्, तकु, मिक, पोल वे ऊन क्रियाएँ है । उनका रूप भेद दिखाया गया है ।

संख्याएँ : मूल प्रकरण में मलयालम की संख्याएँ दिखायी गयी है । धातु : ओर , इरु , मूँ , मु, मुन, मू , नाल्, ऐ, ऐं , आरु, एलु , एन् , तोळ्[1]। पत्ति का तत्सम पत्तु , नूरु[2] का अर्थ है धूर , आयिरं कन्नड में सायिरं , लक्षम्, कोटि आदि संस्कृत शब्द ही है । कन् साथ मलयालम में सर्व ।

मेल्, परं, नूरं आदि जोडकर अधिकता दिखायी जाती और कुरव जोडकर कमी दिखायी जाती : लक्षत्तिल परं नूरं = 1,00100 , लक्षत्तिल् कुरव नूरं = 99000 । भिन्नों को दिखाने केलिए अरा (आधा) काल् (चौथाई) मुक्काल् (तीन चौथाई) अरक्काल् ($\frac{1}{8}$) मागाणि ($\frac{1}{16}$) काणि ($\frac{1}{80}$) अरक्काणि ($\frac{1}{160}$) मुन्तिरि ($\frac{1}{320}$) भी प्रयुक्त करते । अंचिल् नालं ($\frac{4}{5}$) नूरिल पत्तं ($\frac{10}{100}$) जैसा प्रयोग होता है । वीतं (हिस्सा), कोण्टं (लेकर) कष्णं (टुकडा) या ईरण्टं मुम्मून्नं (दो - दो) मुम्मून्नं (तीन - तीन) आदि का प्रयोग भी होता है । 'आम' प्रत्यय मिलाकर क्रमवाचक संख्याएँ बनायी जाती है : ओन्नां (पहला), पत्तां (दसवां) ।

समास : संस्कृत जैसे मलयालम में भुक्तवाची शब्द नहीं है । इसलिए क्रिया रूप से या समास से विशेषण बनाये जाते है : वेळुत्तकुतिरा (सफेद घोडा) तुलना दिखाने केलिए तरं तमं आदि संस्कृत प्रत्यय तथा अति मिलाए जाते है । समास में कहीं कहीं 'अ' आ जाती है : धरामा । कहीं कहीं अम्, अर् , अन्, लुप्त होते : अकतार (मन), समुद्रतीर (समुद्रतट) आदि , लुप्त न होनेवाले : मरक्कयट्टु (पेड पर चढना) कालम्पुरि (यमपुरि) कहीं कहीं य या व का आगमन होता है : निलवट्टा (तलवाना), मदयाना (मदगज) ।

कई धातुओं से समास बनाया जाता है : मल् , वैं , पे , पेरु , चेरु आदि पदार्थों प्रत्यय समासित करके भी दिखाया गया है : मन्मोहि (सद्वचन), चेती (लाल आग) आदि ।

- -

1. तोळ् का अर्थ है 'नून' (गड्ढा) कन्नड में भी केलिए तोम्बत्तु का प्रयोग । मलयालम के उम्पत्तु , तोण्णूरु, तोळ्ळायिरं तोळ् धातु से मिलाकर बनाए गये है ।
2. नुरुक्कु-नुरुक्कु का अर्थ है चूर - चूर होना । इस धातु से नूरु संख्या शब्द आया ।

ऊपर के प्रत्ययों में अन् , अळ् और अं जोड़कर संज्ञा बनायी जाती है : नल्लवन (अच्छा व्यक्ति) , नल्लवळ् (अच्छी स्त्री) , नल्लतं (अच्छी वस्तु) आदि । भाववाचकों को म जोड़ा जाता है : महिमा , नीलिमा आदि । अ, त, व, यु , पु, र्प, कं, क्कु, ळं, मन्, अळ् प्रत्यय भी जोड़कर भाववाचक संज्ञाएँ बनायी जाती हैं : वेळुप्प (सफेद), वलिप्पं (बड़प्पन) , मिटुक्कं (चालाकी) , तनळ् (छाया) आदि ।

तद्धित संज्ञा : पुरुष संज्ञाओं में अन् और स्त्री संज्ञाओं में इ या ति जोड़कर तद्धित संज्ञा बनायी है । उदा : कून कूनन्, कूनी । ऐसे ही मला, काल्, विल् आदि से भी नाम बनाये जा सकते । अवन्, अवळ्, अवर् का संक्षिप्त रूप है आन् , आळ् , आर , ये आदर वाचक रूप में प्रयुक्त होते हैं : कवियान् , कवियार , कविमार् । संस्कृत शैली में तद्धित बनाने की प्रथा होती है : गुण गुणवान्, गुणवती । बुद्धि बुद्धिमान्, बुद्धिमती । संस्कृत त्वं मलयालं में त्तं होता है - ऐश्वर्त्तं (धन्यता) ।

क्रिया :- क्रिया धातुएँ एक पदांग तथा द्विपदांग होती हैं : नल्, पेरु आदि । स्वरों में इ स्वर ए और उ स्वर ओ मिलाया जाता है : वेळ्>विळ् , पुत>पोति । स्वर विकार होकर [illegible] । व्यंजन भी दो रूप से होते : नेट्>निट् , नट्>नल् । क्रिया संज्ञाओं से बनाए हुए : पट्>पटि, पटा से । व्यंजन का द्वित्व या स्वर का दीर्घ : कुर>कुरुक्कु(नाच) , उरु>उरुक्कु (उबालना) । अनुनासिक योग से : पतु>पतुङ्ङ (छिपा) उरि>उरिञ्ञु (स्वच्छ निकाला) और अल् , अळ्, उळ, कु, तु प्रत्यय होनेवाले : वळ्ळ (बट), इरुळ् (तम), वाळुन्नु (शासन करता) आदि ।

अव्यय : मलयालं के अव्यय चार तरह के होते हैं (1) क्रिया से बने हुए (2) नामों से बने हुए (3) सच्चे अव्यय तथा (4) अनुकरणशब्द ।

(1) क्रिया से इन्हें कृदंत कहते हैं । कृदंत पाँच तरह के होते हैं ।

1.	भूतविनयच्चं	प्रत्यय आयं और इन्न	आविट्टु , पेट्टेन्न ।
2.	नटुविनयेच्चं	ए और तु	पतुक्के , अरिक्कं ।
3.	संभावनार्थक	किल, आल्, एन्नु	कानुकिल, कणाल् ।
4.	क्रिया नाम		अट्टुक्कल्, गुम्मिल् ।
5.	भाविरूप		तोरु, पोलु, पते ।

उदाहरण -

संज्ञाओं से : वीरं, ओटि, मार्ग, पीरा, पीछ़, उटन, अन्तरं, अन्योन्य आदि ।

'ए' मिलाकर : मीति, पिन्ने, मुन्ने, एतिरे आदि

सप्तमी के कई शब्द अव्यय होते : वेगत्तिल्, एळुप्पत्तिल, पुरत्त, मेलिल, कीळिल आदि

तृतीया से : मुन्नाल्, मेलाल्, नडुवीट आदि ।

चतुर्थी से : उळ्ळार्क, वीर्क, अन्नीर्क, मेलक्कुमेल आदि ।

सभी अव्यय : आ, ई, ए, ओ, एनि, पनि, सम्म आदि ।

संस्कृत से : प्रति, अति, अध, उपरि, दूर ।

अव्ययीभाव समास : रंगाचिरनि, सकोर्ग, यथाक्रम, यथाविधि, निविपूर्व आदि

अनुकरण शब्द : अता, रता, पे, अपो, शिव-शिव, अय्या, अम्मी, सम्म, हा, हु, हुं आदि

वाक्य खण्ड

वाक्य या वाक्य कर्ता और आख्यात का संबन्ध है । आख्यात संज्ञा रूप में या क्रिया रूप में हो सकते है : आन् वन्द्, अवन् भाग्यवान्, वन्द क्रिया है और भाग्यवान - नाम है । निवन्, सूत्र आदि में कर्ता पीछे भी आ सकता है । कर्ता के बिना भी वाक्य हो सकता है ।

आख्यात : वाळुग, उण्ड, पोल, वरिक आदि कभी लुप्त हो जाते हैं । कर्ता और क्रिया में लिंग वचन संबन्ध होना चाहिए : अवन सुन्दरन, अवळ् सुन्दरि । पर आख्यात नपुंसक एकवचन में प्रयुक्त हो सकता है । एकवचन बहुवचनार्थ आदर में आयगा : कृपाचार्यार चोन्नान (कृपाचार्य ने कहा) । समूहार्थ में बहुवचन होता है : 'उत्तमराय वर्न (अच्छे लोग) । संख्या शब्दों के साथ एकवचन का प्रयोग चालू है : नालु वेद (चार वेद) । क्रियवनार्थ में एकवचन का उपयोग है : तड्कळ् तड्कळ् वीट्टिल गाथि (अपने अपने घर गए) । पुल्लिंग रूपों से स्त्रीलिंग का अर्थ मिलेगा : पार्वति वलिय तम्पुरान (तम्पुरान का विशेष प्रयोग) । स्थाननाम नपुंसक में पुरुषवाची होगा : तिरुमंगलत्तोट् पाृष्ठु (तिरुमंगल स्थान नाम है) विद्वानों का भी नपुंसक बनाया जा सकता : वेदविल्लुकळाय भूसुरर् (वेदज्ञ ब्राह्मण) । उन्हें अनुचितों को पुरुषत्व दिया जा सकता : मात्तनाय वृषभं (मस्ती बैल) । संज्ञा के भाव में कर्ता नपुंसक एकवचन में प्रयुक्त हो सकता है : उसके लिए ये सब साक्षि है ।

नामाधिकार : समानाधिकरण में अनेक कर्ताओं को एक साथ मिलाने की प्रथा का विवरण है। उं अव्यय को प्रयुक्त करके दो - तीन कर्ताओं का एक साथ प्रयोग किया जा सकता है। अप्पनु मकनु वन्नु (पिता और बेटा आए)। समासित करके बहुवचन में प्रयुक्त कर सकते : पुण्य - पाप। कर्ताओं को एक साथ लिखकर 'र' जुट्टुवुत्तु मिलाकर ब्राह्मणर, क्षत्रियर, वैश्यर शूद्रर। ओन्नुं, रण्डुं, आके (कुल) आदि संख्याओं से भी मिलाया जा सकता : ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद, अथर्ववेद नालु वेदङ्ङळ् (चार वेद)। गोन्नु(सोना), भूमियुं पेण्णुं (स्त्री), एल्लाम (ये सब) इस तरह हर शब्द से उं का प्रयोग भी कर सकते है। विभक्ति प्रत्यय कृतत्रेताद्वापरकलि एन्निङ्ङने नालु युगत्तिलुं (ऐसे चार युगों में)। पद्य में आदि के नामों में भी विभक्ति का प्रयोग देख सकते हैं। आदि शब्द का प्रयोग भी हो सकता है : नारदादिकळ्। मुम्पाय (आदि) तोट्टु (से लेकर) शेष (बाकि) आदि भी इस तरह प्रयुक्त होता है।

नामविशेषण : विशेषण कर्ता के पूर्व आता है। आकुन्न, आय, आ विशेषणों के साथ प्रयुक्त कर सकते : आनन्दानुभूति पार्त्ति। एन्न, एन्नुळ्ळ से अंकित नामों तथा पूर्व वाक्यों में प्रयुक्त कर सकते : सूर्यपुत्रि एन्न नदि। वह विभक्ति समास के रूप में जुड जाती : कादुट्टि पेरुवाविमानम् (जंगल का विमान गृह)।

नपुंसक बहुवचन : वेत्तक्कळ् मलयाळ वारि (अच्छे कपडे के लिए) पुल्लिंग बहुवचन : (1)आर् रात्रिञ्चरन्मारिलु ओरुत्तन। संबोधन में : (2)बालन्मारेकिळिप्पोवे। संख्यावाचक विशेषण : संख्या शब्द नाम के पूर्व आता है : (3)आयिरं उपदेशं। प्रचलित संख्याओं को संख्या शब्द से समासित कर छोटा बना सकते : ओराळ्(एक आदमी), पन्तिराण्टु (बारहसाल)। एक ही संख्या के विशेषण के रूप में एक - दो संख्याएं जोड सकते : ओन्नुरण्टाळ् (एक-दो आदमी)। 'ओ' का प्रयोग एट्टो पत्तो (आठ या दस)। कभी कभी संख्यावाचक संज्ञा के बाद भी आता : ञान एकन (मैं अकेला), कण्णु रण्टु (दोनों आंखें)। संख्या वाची 'ओरु' लुप्त होता : उरितेन (आधा माप मधु), नाऴियरि (एक माप चावल)। अनिश्चित संख्या विशेषण : ये भी संज्ञा के पूर्व आते है : बहुविधम् कार्यङ्ङळ। अधिकता दिखाते समय संख्यावाचक संज्ञा के पूर्व प्रयुक्त होते है : पेरिय काल (बडा काल), वळरे दुःखं (बहुत दुःख)।

संज्ञा केलिए जितने भी विशेषण जोडें विभक्ति प्रत्यय अन्तिम के साथ ही जोडा जाता है। पुराने मलयाळम में संस्कृत जैसे सभी शब्दों में विभक्ति प्रत्यय मिलाने की प्रथा प्रचलित थी। प्रत्येक विभक्ति के लेखक ने कई उदाहरण दिये है।

आश्रित. रूप : इसमें विभक्तियों का प्रयोग स्पष्ट किया गया है । क्रिया या संज्ञा को आश्रित करने के कारण इसको आश्रिताधिकरण नाम दिया गया है ।

प्रथमा - कर्ता ही होता है । संबोधन प्रथमा का ही भेद होता है । द्वितीया कर्म होता है । सकर्मक के साथ इसका प्रयोग होता है । कई क्रियाएँ द्विकर्मक होती हैं । तृतीया - आल् प्रत्यय: तृतीय करण होती है । ओटु, ओटु प्रत्यय भी आते हैं । ओटु (पूर्व) कविता में ही आता है । चतुर्थी का मूलार्थ एक स्थान की ओर चलना है । यथा: नगिक्कु पटक्कु, काल - उच्चार्य, योग्यता तथा आवश्यकता - निनक्कु उत्तर्य, अधिकार - एनिक्कुण्ट, कभी कभी दो चतुर्थी एक ही वाक्य में आते हैं : अतिनु कोपम्भिलोनिक्कु । पंचमी - अपादान मलयालम में नहीं । संस्कृत जैसे मलयालम में इसका प्रयोग होता है । काल् अतिल-नतिन्नु आदि प्रत्यय : मापातिल-वस निन्नुपर्या अतिनेक्काल् वलुर्त । तुलना में इसका प्रयोग होता है । प्रामीणाक प्रियतर - प्रियतम आदि ।

षष्ठी : शुद्ध मलयालम में षष्ठी किसी क्रिया का संबन्ध नहीं दिखाती । संस्कृत के अनुसार मलयालम में इसका प्रयोग होता है : नराणिटे कार्य । 'धन' समास के रूप में आता है : पोम्मिन किरिट ।

सप्तमी : इल् और कल् दो प्रत्यय होते हैं । राज्यातिल वानु, तसिक्क वेन्मपाल् । निर्धारण में सप्तमी आती है : (4)नालु पेरिलु मुम्पन रामन । अधिकार और दान में सप्तमी आती है : (5)क्षेत्रत्तिल कोट्टत्तु । (6)राज्यं तनयन-कल समर्पिच्चु ।

प्रतिसंज्ञाओं का प्रयोग : प्रतिसंज्ञाएँ है 4 - इसलिए भी संज्ञाएँ है । इसलिए समानाधिकरण तथा आश्रिताधिकरण की बातें इनमें भी लागू होती है । इसके अलावा प्रतिसंज्ञाओं की कुछ विशेषताएँ होती है । शब्दों के संबन्ध से अर्थ का ज्ञान होता तो प्रतिसंज्ञाओं की आवश्यकता नहीं होती : परशुरामन अम्मये कोन्नु (परशुराम ने माता को मारा) । इसमें अपनी माँ कहने की आवश्यकता नहीं है ।

- -

(1) बार हुए राशियों में एक (2) वे चिड़िया की बेटी (3) एक प्रकार उपदेश
(4) चारों में प्रथम राम (5) मन्दिर में बाजा बजाता
(6) राज्य पुत्र को सौंपा दिया ।

पुरुषवाचि संज्ञाएँ : उत्तम पुरुष में ऽहम्, मेम्, नाम, मम्मह्, ऽहऽऽअ् के प्रयोग होते हैं मेम कश्चिन्तु तरुम्नु आदि आदर सूचक रूप हैं । अटिहन, अटिहऽऽअ् आदि नम्रता सूचक हैं तु, तिरु, आदि भी आदर सूचक हैं । एटी, का प्रयोग एकवचन तथा बहुवचन दोनों में आता है । 'तान' कई अर्थ में प्रयुक्त होता : तान् पाति देवं पाति , तम्मिन एकियतं तम्मिकिरा , तम्मिड्डु तानुं पुरम्मु तूतु, तन्नुटे रामु तान् पोट्ट । 'तान्' प्रतिसंज्ञा स्वार्थी रूप में प्रयुक्त होता है : तानायिपाति (बिना अपनी जानकारी), तन्नेत्तान (अपने आप) आदि प्रयोग , बहुवच में भी इसका प्रयोग होता है । नामाविशेषण के रूप में भी तान का प्रयोग होता : मातावु तन्नुटे दासी (माँ की दासी) । मध्यम पुरुष में भी 'त्वम्' का प्रयोग होता है । 'अ' 'इ' से अवन्, इवन्, अतं, इतं आदि प्रतिसंज्ञाएँ बनी हैं । प्रतिसंज्ञाएँ, संज्ञा, अव्यय आदि से भी मिलती हैं । विशेषण के रूप में ये प्रयुक्त होती हैं : ई सम्मिल (मुझमें), अतुकालं (उस समय) आदि , नैरुक्त से भी मिलती हैं : अव्याय पेरुमाडु । आश्चर्यसूचक के रूप में 'एन्ना' का प्रयोग होता है : एन्नाहन्त केनोम्मिलेतुमे । आर, एतं, एन्तं प्रश्नवाचक प्रतिसंज्ञाएँ हैं । एतं, एन्तं नाम विशेषण के रूप में भी आते हैं : एतु कार्य(कौन सा कार्य) , एन्तु निमित्त (क्या कारण एन्तुवान् (क्या) आश्चर्य सूचक होता है । संस्कृत जैसे यत्तद तथा तत्तद के प्रयोग मलयाळ में भी मिलते : भार्यासुन्नतत्त एतत मन्दिर कण्टा (जो मन्दिर देखा है वह पत्नी है) ।

इसके बाद क्रियाधिकार, अव्ययाधिकार, एवं कालंकार और समास के चार भाग किए गए हैं । क्रियाधिकार में क्रियाओं के बारे में विस्तृत वर्णन है । क्रिया के काल, प्रेरणा, विनय मुत्तुविना आदि विस्तार से वर्णित हैं । वह पुनरुक्ति है । अव्ययों के बारे में भी यही बात हुई है । एककालंकार में पदावृत्ति ही आ गया है । वाक्यों का सौन्दर्य बढ़ाने हेतु ऐसा प्रयोग किया जाता : चोल्लुवान् पणि पणि (कहना कठिन है) , एन्तेल्लं (क्या-क्या) , बहुतहुतं (मत - मत) , मन्द मन्द (धीरे - धीरे) आदि ।

समासों में कहीं कहीं कुछ शब्द लुप्त हो जाते हैं । अर्थ में उनका आरोपण आसानी से कर सकते । लोकोक्तियों में यह साधारण है । हम अध्यारोपण करते हैं । आदि, केवल, पी वरिक आदि का लोप होता है । अवन् भाग्यवान् । इस तरह शब्दों के लोप से समासों का संक्षिप्तीकरण होता है ।(1)'[illegible]' आदि प्रयोगों को अनुवाद विशेष तथा आचार्य -(2)'[illegible] मुकुन्द पार' आदि में समानार्थक होते हैं ।

(1) & (2) पृष्ठ-123

समासों का विस्तृत वर्णन अन्त में किया है है। संस्कृत में प्रचलित समासों के छै विभाग दिखाए गए हैं : कर्मधारय, बहुव्रीहि, तत्पुरुष, द्वन्द्व, द्विगु तथा अव्ययीभाव। मलयालम के समास चार तरह के होते हैं :

(1) क्रिया क्रिया के साथ : कोण्टाडुक (मनाना)।

(2) नाम क्रिया के साथ : वेटिकेट्टु (पटाखा छूटना)।

(3) क्रिया नाम के साथ : पेट्टम्मा (माँ जिसने जन्म दिया)।

(4) नाम नाम के साथ : इसमें संस्कृत के छै विभाग आते हैं।

समीक्षा : गुण्डर्ट ने अपना व्याकरण एक व्यवस्थित रूप में लिखा है। अक्षर, पद तथा वाक्य विभाग किसी भी व्याकरण के लिए आवश्यक रूप होता है। हर विभाग में उनका वर्णन पूर्ण ही रहता है। सभी उदाहरण मलयालम के प्रकाशित ग्रन्थों से लिया हुआ है। उदाहरण देकर नियम को स्थापित करने की विशेष रीति उन्होंने अपनायी है। संस्कृत, कन्नड, तेलुगु और तमिल भाषाओं का ज्ञान भी उन्हें था। मलयालम के सत्तर से अधिक ग्रन्थों का अध्ययन करके उनमें से उदाहरण लेकर व्याकरणिक बातों को प्रमाणित करना असाधारण बात होती है। यहाँ तक उन्होंने जो कठिन परिश्रम किया है वह प्रशंसनीय ही है।

डा. गुण्डर्ट के पहले भी कुछ विदेशियों ने मलयालम व्याकरण लिखे हैं। पर वे इतने व्यवस्थित तथा विस्तृत नहीं हैं। देशी पंडितों को गुण्डर्ट ने प्रेरणा तथा व्याकरण लिखने का दिग्दर्शन दिया है। केरलपाणिनि ने भी गुण्डर्ट का बड़ा सम्मान किया है।

कहीं कहीं उनका वर्णन, उदाहरणों की अधिकता से लंबा तथा जटिल हो गया है। यह उनकी महत्ता को बाधित नहीं करता। एक जर्मन अपनी भाषा में प्रवीणता प्राप्त करके अन्य अर्थात् द्राविड शाखा की भाषाएँ पढ़े और उनमें हर मलयालम का विशेष अध्ययन करे यह महान कार्य है। उसे सभी मलयालम भाषा पर अभिमान करने व मलयाली भाषाभिमानी कृतज्ञता के साथ सर्वदा स्मरण करेंगे।

- -

(1) दूसरों का धन अपनानेवाला आदमी शिक्षित रहता है।

(2) कुछ नहीं तुम्हारा (गर्व) बहुत बढ़ गया है।

द्राविड भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण : बिशप काल्डवेल :

काल्डवेल का द्राविड भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण 1856 में प्रकाशित हुआ । इसका परिष्कृत तथा परिवर्धित संस्करण 1875 में पुनः प्रकाशित हुआ । इसका अनुवाद डा. एस.के.नायर ने मलयालम में किया और केरल विश्वविद्यालय के भाषा इन्स्टिट्यूट ने 1973 में (पहला भाग) तथा 1976 में दूसरा भाग प्रकाशित किए ।

काल्डवेल ने द्राविड भाषाओं का सामान्य स्वरूप इसमें दिखाया है । मलयालम की विशेषताओं पर यह ग्रन्थ अधिक प्रकाश नहीं दे सका । पर उसके संबन्ध में जो बताया गया है उसका सार संग्रहण यहाँ आवश्यक है । लेखक बारह द्राविडभाषाओं पर प्रकाश डालते हैं :- छै विकसित भाषाएँ और छै अविकसित । विकसित भाषाएँ हैं : तमिष़्, मलयालम, तेलुगु, कन्नड तुलु और कोडगु । अविकसित हैं :- तुदा, कोता, गोंड, खोंड, राजमहल और उरांव । ये सब एक ही मूलभाषा की शाखाएँ हैं । तमिष़् शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में लेखक कहते हैं : 'प्राचीन ग्रन्थों में द्राविड या द्रमिड शब्द देख पाते हैं । द्रमिड से द्रमिळ शब्द निष्पन्न हुआ - ड कार को ळ कार बनाया गया है । द्रमिळ तमिष़् हो गया । द्राविड भाषाएँ संस्कृत से उत्पन्न नहीं हुईं । यही दिखाने केलिए लेखक ने शब्दों की सूची तथा अन्य अनेक नियम दिखाकर साबित किया[1] है ।

मलयालम के बारे में उनका कथन देखिए :- मलयालम एक विकसित भाषा है । चन्द्रगिरि से तिरुवनन्तपुरं तक यह भाषा बोली जाती है । विदेशियों से इस प्रदेश का व्यापारिक संबन्ध प्राचीन काल से ही स्थापित हुआ है । मलयालम के मलयाण्मा और मलयाळ्मा दो रूप होते हैं । द्राविड शब्द सदियों तक मलयालम तथा तमिष़् दोनों केलिए प्रयुक्त[2] है ।

लेखक द्राविड भाषाओं की प्राचीनता तथा द्राविड संस्कार की प्रगल्भता दिखाते हुए कहते हैं कि आर्यों के आगमन के पूर्व ही द्राविड ने भारत में प्रतिष्ठा प्राप्त की थी । महाप्रलय की सूचना भी ये देते हैं । प्राकृत में प्रचलित संस्कृतेतर शब्दों के बारे में उनका कथन है कि ये शब्द आर्यों से पूर्ववर्ती लोगों की भाषा से यानी द्राविड भाषा से आए हुए हैं ।[3]

- -

1. द्राविड भाषा व्याकरण : डा.एस.के.नायर की परिभाषा प्रथम् खण्ड पृ : 47
2. उपरिवत् पृ. 17, 18 ।
3. उपरिवत् पृ. 56.

दक्षिण भारत के चेर, चोल, पाण्ड्य देशों के बारे में भी लेखक विस्तृत वर्णन देते हैं । रामायण और महाभारत से वे इनका संबन्ध जोड़ते हैं । पाण्ड्य देश को पाण्डवों के पिता पाण्डु से जोड़ने की कोशिश की गई है ।

संस्कृत तथा द्राविड़ वर्णमाला दिखाकर दोनों की भिन्नता पर लेखक प्रकाश डालते हैं । द्राविड़ वर्णमाला में 12 स्वर, ह्रस्व तथा अनुनासिक, व्यंजन वर्ण होते हैं । आयत को स्वर में मिलाया गया है । द्राविड़व्यंजनों में ऴ, ळ और ऱ को दिखाया है । ध्वनि विशेषों पर भी प्रकाश डाला है । नाम, लिंग तथा वचन में भिन्न भाषाओं की विशेषता दिखाई गई है । लिंग प्रक्रिया में मलयालम तथा कन्नड़ तमिड़ का अनुसरण करती है । द्राविड़ संज्ञाओं के चेतन तथा अचेतन दो भाग दिये गये हैं । वचन प्रत्यय जोड़ने में इन दोनों विभागों का अन्तर होता है । विभक्ति दिखाने केलिए अलग अलग प्रत्यय जोड़े जाते हैं । आठ विभक्तियों के नाम, प्रत्यय तथा उदाहरण दिये गये हैं ।

दूसरे भाग में संज्ञा शब्दों की निष्पत्ति, सर्वनामों के रूप आदि दिखाये गये हैं । क्रिया के विभिन्न रूपों पर भी प्रकाश डाला गया है । लेखक ने द्राविड़ भाषाओं की सिथियन भाषाओं से तुलना की है । लिंग भेद को छोड़कर अन्य तत्वों में द्राविड़ भाषाओं तथा सिथियन भाषाओं में समानता दर्शायी है । गुंडर्ट तथा अन्य कई विदेशी भाषा शास्त्रियों के मतों को लेखक ने प्रभावित किया है ।

जोसफ् पीट का मलयालम व्याकरण :

इसका पूरा नाम है ट्रावनकोर, कोचिन, तेक तथा वीरख मलबार में बोली जानेवाली मलयालम का व्याकरण । यह 1841 में प्रकाशित हुआ । ग्रन्थ के प्रारंभ में लेखक कहते हैं कि यहाँ के पढ़े-लिखे लोग साधारण बोलचाल केलिए भी मलयालम का प्रयोग करते हैं । मलयालम में न कोई प्रामाणिक व्याकरण है और न उसके प्रयोग के प्रामाणिक नियम हैं । मलयालम वर्णमाला तथा शब्द विन्यास में तमिल या संस्कृत पद्धतियों को स्वीकार किया गया है । मलयालम के स्वरूप ज्ञान से यह समझ सकेंगे कि यह एक अच्छी भाषा है और लोगों ने उसके विकास केलिए तमिल तथा संस्कृत की सहायता ली है । पिछले बीस वर्षों से योरोप के मिशनरियों ने मलयालम के विकास केलिए प्रयत्न किया है पर एक जर्मन विद्वान का लिखा हुआ मलयालम व्याकरण के सिवा कुछ नहीं देखा जाता । व्याकरण

के संबन्ध में वे बताते हैं कि भाषा को नियमबद्ध बनाना व्याकरण का काम नहीं, जब तक भाषा के प्रयोग में हुए कार्यों के आधार पर भाषा का विकास तथा उसके नियम दिखाना ही उसका काम है । लेखक के अनुसार मलयालम पढ़ने के इच्छुकों को उसकी सुविधा देना और अंग्रेज़ लोगों को अंग्रेज़ी की सहायता से इस भाषा के सौन्दर्य का पूरा परिचय देना ही इसका उद्देश्य है ।

लेखक ने देवनागरी के सभी अक्षरों को स्वीकार किया है । सोलह स्वर तथा सैंतीस व्यंजन । इनमें ष स् ळ भी मिलाए गये और द्राविड विशेष अक्षर ऴ, ऱ, और ऩ को भी स्वीकार किया है । उन्होंने ऩ को भी स्वीकार किया और कहा कि इसकी विशेष लिपि नहीं ।

स्वरसन्धि के सोलह नियम बताए गये हैं । कुछ उदाहरण : अतु + आकुन्नु अताकुन्नु (वह है) नल्ल + औषधम् नल्लौषधम् (अच्छी दवा) । दुष्कार्य, सन्मार्ग आदि शब्दों को भी लेखक ने दिखाया है। सन्धियों केलिए कोई विशेष नाम नहीं दिया है ।

शब्दों के छै भाग दिखाए गए हैं :- (1) प्रत्यय (2) संज्ञा (3) सर्वनाम (4) क्रिया (5) विशेषण और (6) क्रिया विशेषण । संबन्ध बोधक, समुच्चयबोधक तथा विस्मयादि-बोधक प्रत्ययों में आते हैं । पहले प्र, अभि आदि संस्कृत प्रत्ययों को दिखाया है । प्रति के प्रयोग के उनके उदाहरण देखिए : दिवसंप्रति, प्रतिपदादि, इन्हें प्रति मलयालम के कडिञ्ञ, ओर्क, इन्ने, वेरु, पोले, मेटे, उटने, शेषम आदि प्रत्ययों का प्रयोग करके दिखाया है ।

संज्ञा के लिंग वचन तथा कारक का प्रवर्तन उसमें है । लिंग : पुल्लिंग में 'अन्' स्त्रीलिंग में अ, इ, ई और नपुंसक में अं सामान्य लिंग भी स्वीकार किया गया है : पैतल । लिंग भेद के कई नियम बताए गये हैं ।

वचन : इसके संबन्ध में भी कई नियम बताए गये हैं । अ में अं होनेवाली संज्ञाओं में कन्मार या कळ् प्रत्यय जोड़कर बहुवचन बनाये जाते हैं :- राजावं राजाक्कन्मार, प्रार्थं प्रार्थकळ् । नपुंसक नामों में बहुवचन का प्रयोग नहीं : पत्तुमान (दस दिशा) ।

कारक : लिंग के जैसे दृष्टि से भी आठ कारकों को स्वीकार किया है । सात शब्द विभक्ति सहित उदाहृत हैं जैसे वृक्षम्, पुरुषन्, मतिल्, कट्टला, पल्लि, कुतिरा और पशु ।

संज्ञा बनाने के बारह नियम बताये गये हैं :

कारन् - तोट्टक्कारन , ळं - कच्चळम , अन् - मलयन् , आन् - शीर्षवान् , आन् - कवियन ,
ष - पापि , शालि - नीतिशालि , अन् - देवकन् , अम - दशियम् (कड़प्पन) , अ (संवृत-
उकार) - प्राप्ति वीट् , क्रियानाम अ - स्नेहिक्क, अकन, अकक् आदि - स्नेहकुन्नवन (प्यार करने-
वाला / वाली)

सर्वनाम :

1. पुरुषवाचक : ञान(मैं), नी (तू)
2. प्रश्नवाचक : आर, एन्तु (कौन)
3. निश्चयवाचक : अवन्, अवळ् (वह)
4. संबंध वाचक : एन्टे वीट् (मेरा घर)
5. कृदंत सर्वनाम : वन्नवन (आया हुआ आदमी) (पैरेन्थन की ही लेखक ने यह नाम दि
6. अनिश्चित सर्वनाम : ओक्क, एल्लां(सब), ओरुत्तन (कोई)

क्रिया : क्रिया के चार विभाग होते है (1) सकर्मक (2) अकर्मक (3) प्रेरणार्थक (4) कर्मवाच्य । मलयालं की सहायक क्रियाएँ काल दिखाने में अंग्रेजी की अपेक्षा सरल होती है । क्रिया की बनावट की चार प्रवृत्तियाँ होती है : (1) धातु से उन्नु, तुन्नु, कुन्नु मिलाकर : अटिक्कुन्नु (मारता है) । संस्कृत से आए हुए नपुंसक संज्ञाओं में क्कुन्नु, पेटुन्नु मिलाकर : उपदेशिक्कुन्नु(भाषण देता) , स्नेहपेटुन्नु (प्यार करता) । (3) चेय्युन्नु जोड़कर : वेल चेय्युन्नु (काम करता) । (4) उं और चेय्युन्नु जोड़कर अवन् अवने अटिक्कुं चेय्युन्नु (वह उसे पीटा करता है)

काल: वर्तमान काल में 'उन्नु' प्रयुक्त होता है । संकेतार्थ - आकुन्नु, विधायक में आकट्टे , आशुवित्तं , अनुमति - स्नेहिक्काम् । इनका विवरण भी दिया गया है ।
'उं' जोड़कर भविष्य का रूप बनाया जाता है - पोकुं । अपूर्णवर्तमान, पूर्णवर्तमान, पूर्ण भूत और अपूर्ण भूत के उदाहरण :
(1) केट्टिट्टुण्ट् (सुना है) (2) स्नेहिच्चिरुन्नु (प्यार करता था) (3) स्नेहिच्चिट्टुण्टायिरुन्नु (प्यार किया था) (4) स्नेहिच्चिरुन्नु ।
कृदंत : वर्तमानकालिक कृदंत और भूतकालिक कृदंत के उदाहरण दिए गए है :- स्नेहिक्कुन्न, स्नेि

क्रिया नाम : भाववाच्य और पुरुषवाच्य : सहायिक्क (मदद करना), सहायिक्कुन्नवन (मदद - करने वाला) ।

प्रेरणार्थक : आडुन्नु (झूलता) आट्टुन्नु (झुलाता), पारुन्नु पारिक्कुन्नु (उड़ता उड़ाता)

कर्मवाच्य : पेटुक जोड़कर कर्मवाच्य बनाते है । इसकी लंबी सूची दी गयी है ।

पुरुषवाचक क्रिया नाम् कविताओं में प्रयुक्त होते है ।

विधि - निषेध : (1) विधानक में केणं, उक्कुं, आवु जोड़ते है (2) निषेध में रुटा, रुवाा, आ वरिका, अरुता के प्रयोग होते है (चाहिए, मत, नही आदि)

अनुप्रयोग : क्रिया रूप में अधिक प्रकाश डालने केलिए विटुन्नु, कोळ्ळुन्नु, पोकुन्नु आदि अनु- प्रयोग प्रयुक्त होते है ।

विशेषण : विशेषण बनाने के सात नियम दिए गए है - (1) अन्तिम 'अं' जोड़कर लोके लोक > लोककार्यं । (2) उळ्ळ जोड़कर : उत्साहिक्कुमार्‍ (3) विशेष करके : आट्टु कळुवन, वीट्टुकार्यं (4) ते जोड़कर : कीश्टाते (5) अट्टुत्त जोड़कर भूमिक्कु अट्टुत्त (6) कुन्ना पिरिक्कुन्ना पैतल ।

तुलना दिखाने केलिए काट्टु, कानुं, पल, यट्टु जोड़ते हैं । ओळ्ळं भी आता है । उत्तरावस्था दिखाने को 'एट्टवुं' जोड़ते है ।

संख्या शब्दों का परिचय भी दिया गया है । क्रिया विशेषण : आयिट्टु जोड़कर समय, रीति आदि क्रियाविशेषण - इविटे, दूरे, नाळे, पोलु आदि क्रिया विशेषण है ।

वाक्य रचना : इस भाग में लेखक ने शब्दों के प्रयोग का पूरा विवरण दिया है । वाक्यों में संज्ञाओं के साथ विभक्ति का प्रयोग तथा क्रियाओं का प्रयोग सोदाहरण दिया है । पिन्ने, उं, तन्‍ आदि प्रयोगों को भी साफ दिखाया है । क्रिया के काल, क्रियानाम, कृदंत आदि का विवरणात्मक प्रयोग दिखाया है । यह विभाग पहले बताए गए सभी नियमों का प्रयोगात्मक रूप है ।

कई व्याकरणिक व्याख्याओं में पीट लिंग के अनुयायी है । ग्रंट ने लिंग का व्याकरण देखा होगा । पर उन्होंने ग्रन्थारंभ में बताया है कि एक विदेश का लिखा हुआ व्याकरण ही मलयाली में ~~गई~~ है वाक्य रचना भाग में व्याकरणिक नियमों का उत्तम प्रयोग ~~भी~~ दिखाया ~~हुआ~~ है ।

परिशिष्ट में लेखक ने कई बातें दी है । अलंकारों में उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों को सोदाहरण समझाया गया है । विराम चिह्नों की आवश्यकता पर जोर दिया गया है । ज्योतिष संबन्धी कुछ बातें भी परिशिष्ट में है । प्राचीन राजशासन, निमन्त्रण पत्र के नमूने भी दिये है । इस ग्रन्थ को प्रामाणिक नहीं कह सकते, पर मलयालम व्याकरण के क्षेत्र में इसका स्थान अमूल्य है ।

गारथ्वेट का मलयाल व्याकरण संग्रह :

यह स्कूलों के उपयोग के लिए लिखा हुआ एक व्याकरण ग्रन्थ है । 1931 तक इसके सोलहवीं बार पुनः प्रकाशन हुआ है । इसके पैंसठ विभाग है । वाक्य से वर्ण तक वाली पद्धति अपनायी हुई है । उनका कथन है कि भाषा में व्याकरण की प्रधानता होती और लिपि में भी वाक्यों की प्रधानता होती है । इसलिए यह व्याकरण वाक्यों से शुरू किया होता है।

उनके अनुसार शब्दों का विग्रह देखिए : केळ्क्कुन्नतिनाल : केळ् - धातु, क्क - उपसर्ग, उन्न - वर्तमानकाल प्रत्यय, अ - तद्धमपूर्ण, तु - नपुंसक प्रत्यय - इन - वैशिष्ट्य प्रत्यय, आल - तृतीय विभक्ति प्रत्यय । लेखक ने भाषा को वाक्कु कहा है : नम्मुटे वाक्किनु मलयाळ वाक्कु एन्नु पेर (हमारी भाषा मलयाळ है)

[1]पदकाण्ड : शब्दों के संज्ञा, क्रिया और अव्यय तीन रूप दिए है ।

नामविकारें :

1. संज्ञानाम[2] - व्यक्ति वाचक
2. प्रतिसंज्ञानाम - सर्वनाम
3. संख्या नाम - संख्या नाम
4. प्रतिसंख्यानाम - अनिश्चित सर्वनाम
5. चोद्यप्रतिसंख्यानाम - प्रश्नवाचक सर्वनाम
6. सर्वार्थ प्रतिसंख्यानाम - अनिश्चित संख्यावाचक : एल्लावरुं, आरुं, एतुं ।

लिंग, वचन, विभक्ति : सर्वनाम के एकवचन तथा बहुवचन की सूची दी है ।
विभक्ति प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी और सप्तमी है ।

- -

(1) शब्द (2) संज्ञा

समास : समास कई प्रकार के होते हैं । अव्ययीभाव, पूर्वचन्द्रमसार आदि उदाहरण देकर दिए हैं । चूंटुपेर जैसे आ तोट्टम (वह वाटिका) में पुरुषार्थ चूट्टसमास (निर्देशक समास) होते हैं । प्रश्न समास : एन्तुरा (कौन सा घर) संख्या समास : नालु पशु (चार गायें)

क्रिया : काल : (1) वर्तमान - उन्नु

(2) भूतकाल - त, तु

(3) भविष्य - उं, उ, ऊ

विधिरूप : वा (आ) एकवचन , वरुविन (आओ) बहुवचन ।

संभावना : वन्नाल (आता तो) आदरसूचक - वन्नालुं - वन्नालु (आइए)

अपूर्णक्रियाएँ : शब्दन्यूनम् और क्रिया न्यून ।

क्रियानाम : नाम तथा क्रिया के रूप में ।

क्रिया गुरुवचन : चेय्यल्लम्

कन - प्रत्ययान्त होता है : नटक्कुन्नु , पोकुन्नु - अन्त प्रत्यय ।

अनुवाद (अनुज्ञावाचक) निषेध (निषेध)

उण्टु, वरुता, अल्ला आदि न्यून क्रियाएँ हैं । कर्तरि तथा कर्मणि प्रयोग भी दिखाया गया है ।

विशेषण : आख्यात विशेषण और कर्म विशेषण भी उदाहरण हैं ।

अक्षरकाण्ड : 13 स्वर और सभी व्यंजन स्वीकार किये गये हैं । (ऋ, लृ और लॄ छोड़े हैं)

सन्धि : लोप, आगम, द्वित्व को स्वीकार किया है । उदाहरण भी दिए हैं ।

अन्त में पदपरिचय तथा वाक्य विग्रह दिखाए हैं ।

इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि लेखक ने वाक्य को लेकर वर्ण तक की उल्टी पद्धति स्वीकार की इसमें कोई नई बात नहीं । जैसे नामकरण से विदित है वैसे यह एक संग्रह मात्र है । सन्धि के कुछ विलक्षण नामकरण आए हैं विद्यार्थियों के लिए यह उपयोगी ही है ।

(1) योरोपियों के लिए मलयालम का एक प्रागतिक व्याकरण : एस.जे.फ्रोहनमेयर :

एस.जे.फ्रोहनमेयर का लिखा हुआ व्याकरण ग्रन्थ है 'योरोपियों के लिए मलयालम का प्रागतिक व्याकरण' । यह 1859 में प्रकाशित हुआ । इसका पुनः प्रकाशन 1913 में और

- -

1. ए प्रोग्रेसिव ग्रामर आफ़ दि मलयालम लाग्वेज फॉर यूरोपियन्स:

1919 में वह अंग्रेज़ी में लिखा गया है। योरोपीय विद्यार्थियों के लिए लिखे जाने के कारण इसमें मलयालम शब्दों का अनुवाद अंग्रेज़ी, लाटिन, ग्रीक और जर्मन में दिया गया है। लेखक ने साहित्यिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, राष्ट्रीय तथा न्यायालय संबन्धी विषयों की उदाहरण के लिये लिया है। उन्होंने लिखा है 'मलयालम' तथा तमिळ् का अटूट संबन्ध है। तमिळ् की क्रियाओं में जो लिंग वचन प्रक्रिया देखी जाती है वह प्राचीन मलयालम में भी होती है।

मलयालम के विकास में पादरियों की देन महत्वपूर्ण है। मलयालम में बैबिल् अनूदित किया गया, पाठ्य पुस्तकों के निर्माण में सरकार को सहायता दी, समाचार पत्रों के प्रकाशन में योगदान दिया। लेखक ने अपने व्याकरण में पूर्ववर्ती वैयाकरणों में - बेली, स्प्रिंग, पीटर - पीट, गार्नेट तथा गुंडर्ट का, देशीय वैयाकरणों में वार्णाशलम, कोवुण्णि नेडुंगाडी, पाच्चुमूत्तत् ए.आर. राजराजवर्मा और शेषगिरिप्रभु का नाम अपने व्याकरण में सूचित किया है। उन्होंने लिखा है 'योरोपीय, वैयाकरणों के व्याकरण अपूर्ण तथा त्रुटिपूर्ण रहे इसलिए एक नया व्याकरण लिखता हूँ।

इस व्याकरण में इक्कीस पाठ होते हैं। पाठ 19 और 20 में मलयालम की उप - भाषाशैलियों पर प्रकाश डालकर उनके नियम देते हुए उनकी व्याख्या की है। पाठ 21 में कविताओं की पंक्तियाँ दी गयी है और अन्त में अभ्यास दिये गये हैं। लेखक के अनुसार मलयालम में 54 अक्षर होते हैं : 18 स्वर और 36 व्यंजन। परंपरा के अनुसार ऋ, ॠ, ऌ स्वीकार किये हैं। ए, ओ, ऐ स्वीकृत है पर ङ न का भिन्न रूप स्वीकार नहीं किया गया है। मलयालम में दो तरह की अक्षर माला प्रचलित है : (1) तमिळ अक्षरमाला जिसे वट्टेषुत्तु या कोलेषुत्तु कहते हैं। (2) आधुनिक अक्षरमाला जो संस्कृत लिखने में उपयोग करते है और जिसे आर्य एषुत्तु कहते हैं। ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, अं, अः तथा ख, ग, घ, छ, ज, झ, ठ, ड, ढ, थ, द, ध, फ, ब, भ, श, ष, स, ह संस्कृत से लिये हुए हैं। मलयालम ने संस्कृत से कई शब्द स्वीकार किये अतः इन अक्षरों की आवश्यकता पड़ी। लेखक ने अन्य वैयाकरणों के जैसे विषयों को क्रमबद्ध नहीं किया है।

अंग्रेज़ी में 'मन' के स्थान पर मलयालम में 'कल्' देख सकते। यही अधिकांश कारक कहते है। इसे शब्दों से जोड़ने की निम्न रीति होती है : वीट् + कल् वीट्टुकल(घर में) संवृत उकार लुप्त हो जाता और ट का द्वित्व होता। तलशेरि + कल् तलशेरियिल् - 'य' का आगम हो गया है। अंग्रेज़ी में संबन्ध बोधक, शब्द के पहले प्रयुक्त करते हैं, पर

मलयालम में यह विशेषण शब्द के अन्त में जोड़ते : एन्टे वीट्, अम्मयुटे पेर आदि (मेरा घर, माँ का नाम) ।

निषेध 'इल्ला' और 'अल्ला' के बारे में लेखक लिखते हैं 'इल्ला' 'उण्ट्' का निषेध है और 'अल्ला' 'आण' का निषेध । इन दोनों के प्रयोग में काफी ध्यान देना है : निन्टे अच्छन् मलयन् अल्ला (तुम्हारे भाई अच्छे नहीं), वीट्टिल अच्छन् इल्ला (घर में पिताजी नहीं) (पृ.24) । सम्बन्धकारक दिखाने केलिए न्टे, उटे, क्कु या नु प्रत्यय जोड़ते हैं । 'उ स्वीकार करनेवाले शब्दों का संप्रदान क्कु प्रत्यय ले लेता न्टे का नु प्रत्यय स्वीकार करता[2]। सम्बन्ध स्वामित्व को दिखाता है और 'उटयवन' स्वामित्व को दिखानेवाला शब्द है ।
वीट् शब्द की सभी विभक्तियों में दिखाया है :

कर्ता	वीट् (घर)	अधिकरण	वीट्टिल (घर में)
कर्म	वीटिने (घर को)	अपादान	वीट्टिल निन्नु (घर से)
संप्रदान	वीटिनु (घर को)	अधिकरण संप्रदान	वीट्टिलेक्कु (घर को)
संबन्ध	वीटिन्टे (घर का)	करण	वीटिनाल, वीटिनोटु (घर से)

संबोधन वीटे (हे घर) (पृ.44 - 45)

केरल पाणिनि ने ओड़ की संबोधिका तथा अधिकरण संप्रदान को आधारिकाधार बताया है ।
भूतकाल : टान्त तथा रान्त क्रिया धातुओं में क्कुन्नु मिलाकर वर्तमान काल बनाया जाता है । भूतकाल 'न्नु' जोड़कर बनाया जाता है :- नटक्कुन्नु (चलता) नटन्नु (चला), पऱक्कुन्नु(उड़ता पऱन्नु (उड़ा) । जिनके वर्तमान 'ुक्कुन्नु' या 'ञ्ञुन्नु' होते उनमें 'त्तु' जोड़कर भूतकाल बनाये जाते : पार्क्कुन्नु (रहता) पार्त्तु (रहा), कोटुक्कुन्नु (देता) कोटुत्तु(दिया) । अन्त में 'ट्टु' जोड़ते हैं : केल्क्कुन्नु(सुनता केट्टु(सुना)। भूतकालिक विशेषण के रूप में 'आरे' का प्रयोग देखा जाता है । आर का अर्थ है मार्ग -आरे वषिय (मार्ग से) 'ए' तो अधिकरण 'इल' का रूप है । केवलारे । आवा (हुआ), आकुन्ना (होता), आकुं (होगा) विशेषण प्रत्यय होते जो 'आका' से आए है । इन प्रत्ययों को जोड़कर विशेषण बना सकते हैं :

- -

1. दि हिस्टरी आफ् दि ग्रमाटिकल थियरीज़ इन मलयालम - के.एम.प्रभाकरन केरल विश्व-विद्यालय प्रकाशन 1975 पृ : 666
2. यह ठीक नहीं एन्टे एनिक्कु होता, अवन्टे तो अवनु ठीक है ।

' क्रूरनाय मनुष्यन्' (पृ.59) (क्रूर मनुष्य)

आसन्नभूत : ञान स्नेहिच्चिरिक्कुन्नु , अवा, स्नेहिच्चिरिक्कुन्नु(मैंने/उन्होंने प्यार किया है

पूर्णभूत : ञान् स्नेहिच्चिरुन्नु , अवर् स्नेहिच्चिरुन्नु । (मैं ने/उन्होंने प्यार किया था

एनिक्कु दाहिक्कुन्नु (मुझे प्यास लगती है) यहाँ कर्ता संप्रदान कारक में प्रयुक्त है । केरलपाणिनि तथा शेषगिरिप्रभु ने इसे 'निर्कर्तृक' कहा है ।

'पेरच्चम' के बारे में लेखक कहते हैं कि अंग्रेज़ी में ऐसा प्रयोग नहीं है पर जर्मन, ग्रीक आदि भाषाओं में देखे जाते हैं । पृ.63) आधि और आसिद्धोधि के अर्थमें होते हैं । ञान् वरुन्नुण्टु' उर्दू वर्तमान काल को दिखाता है । लेखक ने इसे प्रोग्रेसिव फार्म बताया है । मुन-विनयेच्चम का रूप ग्रीक में साधारण है पर अंग्रेज़ी में वह क्रियाविशेषण ही होता है । सहायक क्रियाओं की लंबी सूची दी गई है (यह मलयाळ्मुटे व्याकरण तथा अन्य व्याकरणों में भी प्राप्त है) विवेचन सर्वनाम अ, इ, उ, र से आए हैं । अवन्, इवन्, एवन्, 'उ' का प्रयोग अब नहीं है ।

मलयालम में कई आचार प्रधान शब्द होते हैं (पूर्व वैयाकरणों ने भी इसे दिखाया है) कृदन्त तथा तद्धित की सूची दी गयी है (यह भी पूर्व के व्याकरणों में देख सकते हैं) सन्धि में संस्कृत तथा मलयालम सन्धियों को दिखाया है ।

समास :

1. द्वन्द्व - मातापितावक्कळ - एकवचन : चराचरं ।
2. कर्मधारय - नीलकण्ठन्[1], नीलगिरि
3. तत्पुरुष - नरपति
4. द्विगु - नवरत्न
5. बहुव्रीहि - चतुर्मुख
6. अव्ययीभाव - यथोगति ।

संख्या में भिन्न भिन्नों का विशेष वर्णन है : 'ए' मिलाकर भिन्न दिखाते हैं : $\frac{5}{12}$ अंचेपन्तण्टे , $\frac{1}{8}$ मून्नेट्टे । 'इरुपत्तिरण्ड' एक अन्य प्रयोग है $\frac{5}{6}$ आरिल इरुपत्तिरण्डु । अधिकांश के उपयोग करके भिन्न दिखाया जाता : $\frac{2}{7}$ एट्टिल अंचे । (पृ 218) गणितज्ञों तक्के, पिक्के,

- -

1. नीलकण्ठन तो बहुव्रीहि है, नीलकण्ठ हो तो ठीक है ।
2. तूलूर प्रदेश में अब भी इसका प्रयोग होता है ।

पेरुवाक् आदि शब्दों का प्रयोग होता था । गणित का एक प्रश्न : आठ पणों को पच्चीस पल चन्दन मिले तो पाँच पण केलिए कितना चन्दन मिलेगा ? $\frac{25 \text{ पिछे} \times 5 \text{ पेरुक}}{8 \text{ तली}} = 15\frac{5}{8}$ । एन्ताम्, एन्तनम्[2] आदि सर्वनाम के प्रयोग अज्ञात वस्तुओं को दिखाने प्रयुक्त होते है ।

लेखक ने मलयालं के मुहावरों की एक लंबी सूची दी है और संस्कृत तथा मलयालं की कविताओं के छन्दों का वर्णन किया है । कृष्णगाट्टु तथा पतिन्नालुवृत्त की कुछ पंक्तियाँ दी गयी है ।

लेखक ने योरोपियों के उपयोग केलिए ही यह व्याकरण लिखा है । इसमें विशेषकर तीसरे संस्करण में - विषयों को विस्तार से दिखाया है । अधिक से अधिक बातें पूर्वग्रन्थों से लेकर ही इसका विकास किया है । इन्होंने अंग्रेजी में न होनेवाले, ग्रीक, जर्मन आदि भाषाओं में प्रचलित कई बातें मलयालं व्याकरण में दिखायी है । यह विचारणीय काम है । द्राविड भाषाओं की प्राचीनता केलिए यह साक्षी होता है । इसपर विशेषध्यान देना आवश्यक है ।

योरोपीय वैयाकरणों ने इस उद्देश्य से व्याकरण लिखा है कि भारतीय भाषाओं का परिचय विदेशी लोग पा सकें । इसकी आवश्यकता भी थी । पहले व्यापारिक कार्य केलिए फिर राष्ट्रीय अस्तित्व के लिए । जब ईस्टइण्डिया कंपनी को दक्षिण भारत से संपर्क करना पडा तब दक्षिणी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना पडा । अंग्रेजों को विशेषकर इसकी आवश्यकता पडी । इन वैयाकरणों में गुण्डर्ट तथा फ्रोनिमेवाधिरुमपेयिस रहेंगे । गुण्डर्ट ने कई दक्षिणी भाषाओं को पढकर मलयालं में विशेष रुचि रखकर ही अपना मलयाल व्याकरण लिखा । इन भाषाओं को पढने में कितना समय और कितना प्रयत्न किया होगा यह अनुमाननीय है । उन्होंने भाषा-पठन एक कला मानकर किया होगा, आत्मसन्तोष ही उनके इस प्रयत्न का प्रधान फल रहा होगा । व्याकरण के अलावा उन्होंने मलयालं को एक निघण्टु भी प्रदान किया । 1860 में उन्होंने व्याकरण प्रश्नोत्तर नामक एक व्याकरण ग्रन्थ भी लिखा जो विद्यार्थियों के लिए उपयोगी हुआ । 1870 में इसका एक विवर्धित रूप गार्तविट ने गुण्डर्ट की सहायता से तैयार किया जिस में 311 विभाग होते है ।

अपने समयतक प्रकाशित मलयालं ग्रन्थों का अध्ययन गुण्डर्ट ने किया । अपने व्याकरण में उन ग्रन्थों से लिए हुए उदाहरण देकर भाषासंबन्धी नियमों को जोडकर विस्तृत वर्णन किया है

यह मनसाक्ष तथा दृढ़ संकल्प से ही संभव है । जटिलता रही हो या त्रुटियाँ रही हो उनकी देन मलयाल भाषा केलिए अमूल्य दान रहेगी ।

एल.वे.प्रीकमेयार भी शास्त्री तथा मलयालं के विशेष प्रेमी दीख पडते है । उन्होंने अपना व्याकरण 1889 में प्रकाशित किया । पर आगे चलकर उसका संशोधन तथा संवर्धन करते रहे । विदेशी तथा देशी वैयाकरणों के व्याकरण ग्रन्थ पढकर अपनी रचना की कमियाँ पूरा करके दूसरा तथा तीसरा संस्करण तैयार करने में वे सफल हुए । अन्य वैयाकरणों के अनुसरण करने में कोई हीनता अनुभव नहीं की । आवश्यक सभी वस्तुओं को स्वीकार किया और अपने व्याकरण का संवर्धित एवं प्रकाशित किया । उनका उद्देश्य यही था कि अपना व्याकरण विदेशी लोगों की मलयालं पढने में सहायक रहे ।

कई त्रुटियाँ उसमें आ गयी है : कलककातु रामानुजलेनुत्तच्छन, शिवपुराणं तथा स्कन्दपुराणं तुन्चतेनुत्तच्छन की कृतियाँ है आदि[1] ।

एक व्याकरणग्रन्थ के रूप में प्रीकमेयार की रचना प्रामाणिक है ।

भारतीय वैयाकरण तथा उनके व्याकरण :

तोलकाप्पियं : यह मलयालं व्याकरण नहीं, तमिष् व्याकरण है । प्राचीन काल में जैसे उत्तर की भाषा संस्कृत थी वैसे दक्षिण की भाषा तमिष् थी । दक्षिण की आदि मूलभाषा को ही यह नाम दिया गया है । मलयालं ही नहीं दक्षिण की सभी भाषाएँ इसके विभिन्न विकसित रूप है । इसलिए तमिष् का यह प्राचीन व्याकरण किसी न किसी तरह मलयालं तथा अन्य द्राविड भाषाओं से संबन्धित रहता है । अत एव इस व्याकरण को भी इस अध्ययन में स्वीकार किया जाता है । यह व्याकरण तोलकाप्पियर्‌का लिखा हुआ है और रचना काल ई.पू.500 के आसपास माना जाता है । पाणिनि की कृति पाणिनीयं जैसे तोलकाप्पियर की कृति तोलकाप्पियं होती है । सूत्र कारिकाओं या वाक्यों में देकर उनकी व्याख्या की गयी है । ए.आर.राज राज वर्मा ने इस पद्धति को अपने व्याकरण ग्रन्थ में स्वीकार किया है ।

इस ग्रन्थ के तीन भाग होते है (1) एलुत्तत्तिकारं (वर्ण प्रकरण) (2) चोल्लत्तिकारं (शब्द प्रकरण) (3) पोरुळत्तिकारं (अर्थ प्रकरण)। इन में एलुत्तत्तिकारं में वर्णों तथा सन्धियों

---

1. दि हिस्टरी ऑफ दि ग्रमाटिकल थियरीस : पृ. 664.

पर चर्चा है । दोषशिल्पार्ट पदों के बारे में है । पौरूक्तिकाएँ काव्यलक्षण, छन्द, रसालंकार आदि के बारे में है ।

एकृत्तशिल्पार : भाषा में बारह उपिर् (स्वर)[1]होती है । इनके अलावा संवृत एकार संवृत उकार-ःआदि तीन भी होते है । व्यंजन 18 क, ङ, च, ञ, ट, ण, त, न, प, म, य, र, ल, ळ, व, ष, ऱ, और ऩ है इनमें भेद करते है । स्वर चिह्न लगाने की रीति दिखायी है । मिया शब्द की 'ए' संवृत एकार है । मात्रा दो प्रकार होनेवाले शब्दों के दीर्घ के परे तथा अव्ययों के अन्त में स्वरों पर संवृतउकार होता है । तमिळ में इसे ऊपर बिन्दी लगाकर दिखाया जाता है । ह्रस्व के परे स्वर के साथ रहनेवाले स्वरों के बीच में आदर्श आता है। संयुक्ताक्षरों का विवरण भी दिया गया है ।

'[2]उयिरमेय अक्षन मौक्तिमुत्तल आका' : स्वरयुक्त व्यंजन ही पदादि में आता है । उच्चारण स्थानों का वर्णन भी है ।

इन, वाड़, अत्तु, अं, औन, आन, अक्कु, क्कु, अन् ये चारिके होते है ।

सन्धि में आ + इन + ऐ आने (चारिके र लुप्त होता) चौथी विभक्ति का प्रत्यय 'कु' जुड़नेपर इन्, उन्, अन्, आन् का न् ऱ बन जाता है : पोन् + इन् + क = पोन्निक ।

सन्धि में स्वर पर हो जाने पर य, व आगम के रूप में आते है : मणि + अकूक > मणियकूं ।

क, च, त, प उत्तर पदादि में होते तो और उसके पहले का अनुनासिक ङ,ञ,ण, म होते एं + चोला > एञ्चोला । पूर्व पद के अन्त का ल, ळ परे होने पर और ऩ के परे होनेवाला न, ऱ और ऩ बन जाते है : नल + तमिर् > नऱ्ऱमिर् । मुन + निल > मुन्निल । इस तरह नियम तथा उदाहरण दिये गये है ।

विभक्ति : अ, आ, उ, ऊ, ए, ओ स्वरान्त शब्दों में विभक्ति प्रत्यय मिलने पर "इन" बीच में आता है : पला + इन् + ऐ पलाविने (व का आगम होता) । ओकारान्त में औन् चारिके जुड़ता है : को + ऐ = को + उन् + ऐ कोने । इस तरह सन्धियों के विस्तृत वर्णन है ।

- -

1. लीलातिलकम - एम.डी.एस 1961 पृ.4.

2. सूत्र 60 पृ. 13

एकत्रित के अर्थ में गणित में प्रयुक्त ।

पोक्षातिकार : क्रिया और नाम के लिंग वचन में समानता होनी चाहिए : अवन् वन्तान्, अवळ वन्ताळ्, अवर वन्तार । विशेषण, अव्यय, अव्यवि इस क्रम में कहना है : पेरुंतलैवासलन । विशेषता दिखानेवाला शब्द पहले फिर संज्ञा आती है : मुनिवन अगत्तियन ।

विभक्ति : '' विळिकोळ् वतन् कन् विळियोटेट्टे '' संबोधिका के साथ आठ विभक्तियाँ होती हैं । वे ऐवार, ऐ, ओट्, कु, इन्, अतु, कन्, विळि हैं । समासों के समस्तपद भी पहले विभक्ति में आते हैं । विभक्ति प्रत्यय जोड़कर : वात्तनै, वात्तनोटे, वात्तनुक्कु, वात्तनिल, वात्तनतु, वात्तन कन् । 'ऐ' प्रत्यय कर्म को दिखाता है : नाट्टैकात्तान, तीसरी में ओट्, कर्ता, करण दोनों में मिलते हैं । इस भक्ति में 'आन्' प्रत्यय भी है । मन्नुकोटे, वात्तनाल, वाणिपत्तान् आदि । चौथी में कु : वात्तारकु मकळुटैपट्टार (वात्तर को कन्यादान की सम्मति हुई) नट्टार्कुआत्तन, वेंकुआम्पुटैयतु करटं । पाँचवे में 'इन' ककरिन् कर्यु, इतनित् नल्लतु इतु । छठी में 'अतु', एक वस्तु से अपना संबन्ध बताने केलिए इसका प्रयोग होता : एनतु कै, वात्तनतु पौरुळ् । सातवी में 'कन्' : वीट्टिन् कन् इरुन्तान, वेन्तिन् कन् वन्तान । विभक्ति प्रत्यय लुप्त होकर भी समास आता उसे तत्पुरुष कहते । इसके विग्रह में बहुव्रीहि के सभी शब्द आते हैं । पोन्नाटि (सोने से बनाया हुआ) अर्थ के आधार पर विभक्तियों के प्रयोग में अन्तर होता है ।

संबोधन में 'उयिरातिन्मै' (इ, उ, ऐ, ओ) अन्त संज्ञा संबोधन के साधक हैं । इ ई, ऐ आय, उ और ओ ए उ संवृतउकार हो जाते : नम्पी, मड-कार्य, कोवे, वन्ते । ई कारान्त में कोई भेद नहीं होता : तोळी । संबन्ध सूचक संज्ञाओं के अन्त का ऐ कहीं कहीं आ बनता : अम्मै अम्मा । नम्पि के वस्तुओं के संबोधन में रूपभेद नहीं होता : नम्पि केळ् । व्यंजनों में उयिरातिमे (न् र ल ळ) संबोधन के साधक संज्ञा हैं "न अन् रन् इरलि आया कुम्मे"[2]। शब्दान्त का अन् 'आ' होता : चेरन चेरा, सामिप्य होनेपर 'अ' होता चेर (पुरुष) क्रिया संज्ञाओं के अन्त की आन् आर्य होता, भाववाचक संज्ञा के अन्तिम आन् भी आय होता । वन्युत्व दिखानेवाले नान्त का न् ने होता : मकन् मकने । कुट्टिकुत्तु से आरम्भित संज्ञाओं में (अ, इ, उ, ब

- -

1. सूत्र : 63 पृ. 115
2. सूत्र 130 पृ. 135
3. क्रियाविशेषण कृदंत ।

संबोधन नहीं आता । संज्ञाओं के अन्तिम आर और अर 'इर' होता : पाण्मार पाण्मिर । क्रियाओं में ई के साथ 'ए' भी आता : वन्तार वन्तीर । गुणों के साथ भी ऐसा होता करियर करियीर करियीरि ऐ काले आदमी । दूसरों को संबोधित करते समय स्वरों की मात्रा बढ़ाती है : नम्पीइ इ, वात्ता अ अ । अम्मा का संबोधन 'अम्मे' होता है ।

संज्ञा : शब्दों में संज्ञा और क्रिया होती है । द्योतक और भेदक इनके आश्रय में आते हैं । संज्ञाओं में लिंग वचन विभक्ति मिलते हैं । क्रियाओं में विभक्ति प्रत्यय नहीं मिलता, उनमें काल प्रत्यय मिलते हैं ।(3)विनवेच्च के नौ रूप होते हैं ।

अव्यय को इटैनिकक्क कहते हैं । मम्, तिल्, कोन, उं, ओ, ए, एन, एन्रु, मार्र, एर्र आदि अव्यय होते हैं । उरु, तव, नानि, उरु, पुरै, कुरु, केषु, वेक्कल, इम्मल, ववेनु, वाय्तल, ओक्किल तट, कय, नकि, पयुर्व आदि भेदक होते हैं ।

पोरुळधिकारं में काव्यशास्त्र की बातें बतायी गयी हैं ।

लीलातिलकं : यह मणिप्रवाल का लक्षण - ग्रन्थ है, मलयाळ व्याकरण नहीं । केरळ में एक केरळीय से लिखा हुआ ग्रन्थ है यह । पहला सूत्र है 'भाषासंस्कृतयोगो मणिप्रवाळं', भाषा का मतलब है केरळभाषा, उस काल में तमिळ शब्द से ही इसे सूचित करते थे । यह तमिळ, तमिळनाडु के तमिळ से भिन्न है । प्राचीन कवियों ने अपनी कृतियों में भाषा केलिए तमिळ शब्द ही दिया है ।

> ''तमिळमणि संस्कृत पवळं
> कोर्क्कुन्नेन कृत्तमान् वेन्नूल्ले ''

(मणि और प्रवाल लालसूत में पिरोकर बनाईमाला जैसी तमिळ और संस्कृत का छन्दोबद्ध रूप मणिप्रवाळं) इसमें तमिळ का प्रयोग केरळभाषा केलिए होता है । यह भाषा सदियों से प्रचलित तथा विकसित है, उस भाषा में आर्यों की संस्कृतभाषा के सरल शब्दों को मिलाकर एक मिश्रभाषा की उत्पत्ति हुई, इस मिश्रभाषा में साहित्यिक प्रवृत्तियाँ भी शुरू हुईं, इन प्रवृत्तियों के अनियन्त्रित प्रवाह से यह दूषित होने लगी, तभी उसमें नियन्त्रण आवश्यक हुआ, लक्षणग्रन्थ से उस भाषा का नियन्त्रण हुआ, ये सब शताब्दियों का परिणत फल है । इस ग्रन्थ की रचना 1385 और 1400 के बीच में हुई । इन बातों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भाषा-मिश्र का प्रचार चौदहवीं सदी के कई सदियों के पहले ही हुआ है, उसके हज़ारों वर्ष पहले

(3) क्रिया-विशेषण कृदंत

ही केरल की भाषा सुदृढ तथा विकसित हो गई थी। साहित्यिक कृतियों के अभाव से भाषा की प्राचीनता पर शंका करना मूर्खता है। क्या 'चौसर' के पहले अंग्रेजी भाषा न थी?

लीलातिलकं के आठ शिल्प होते हैं। प्रथम शिल्प में मणिप्रवाळलक्षण है। दूसरे में भाषाभेद, अक्षर, पद, विभक्ति, लिंग, वचन, क्रिया के निरूपण होते हैं। तीसरा सन्धियों का[1] चौथे शिल्प में काव्यमीमांसा यानी दोष, गुण, शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा रसों का वर्णन है। व्याकरण का संबंध दूसरे तथा तीसरे शिल्पों से ही होता है। उनके आधार पर व्याकरणिक विशेषताओं पर यहाँ विचार किया जाएगा।

भाषा भिन्ना : देशी, संस्कृत भवा, संस्कृतरूपा च, तत्सम, तद्भव तथा देशी भाषा तीन तरह की होती है। देशी, शुद्धा भाषान्तरभवा तथा भाषान्तरा तथा तीन तरह की होती मुई, कोच्चि, मरं(वृक्ष) कम्मान, नल्लु, चेट्टा आदि अन्य द्राविड भाषाओं के अपभ्रंश होने से भाषान्तर भवा, पोन् (सोना) नाळे (कल) उटल (शरीर) आदि अन्य द्राविड भाषाओं में भी देख सकते इसलिए भाषान्तरसमा है।

संस्कृत में न होनेवाले ऴ, ऱ, ऩ, ष ये चार अक्षर भाषा में होते हैं। इनके अलावा ह्रस्व ए और ओ तथा न भी होते हैं। आम्लवर्ण केरल भाषा में नहीं।(2) (क को छोड दिया है, संस्कृत में ल और ळ के लिए 'ल' का प्रयोग होता। पर केरलभाषा में ल और ळ अलग ही होना चाहिए नहीं तो तला (सिर) तळा (नूपुर) दोनों एक ही होगा।)

विभक्ति : 'ऐर, ए, ओटु, क्कु, निन्नु, उ, इल, विकि, इत्यर्थ' - अर्थ साफ है : षष्ठी के प्रत्यय 'न्नु' होता है - क्कु, रटे, एटे, रे भी आते हैं। विभक्ति प्रत्यय संहार में लुप्त होते : पुलिवाल, कटलाना, षष्ठी और सप्तमी में यह होता द्वितीया में विकल्प से : मालोक्कटु। अन्य विभक्तियों में लोप नहीं।

लिंग : तीन होते हैं, पुल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसक लिंग। अन् पुल्लिंग प्रत्यय, ळ्, च स्त्रीलिंग प्रत्यय तथा अं नपुंसक प्रत्यय होते हैं। अ, इ, ए में नपुंसक में 'तु' आगम है।

वचन : 'एकस्मिन् यथा लिंग,' 'अनेकस्मिन् र, कळ्, मार, मर, पर, वर, वु प्रायेण' अर्थ स्पष्ट है।

---

1. लीलातिलकं, एन.बी.स 1969 पृ : 30
2. ऐसा नहीं कह सकते। गणित में अब भी इसका प्रयोग आम्ल के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

क्रिया : क्रियाओं के साथ लिंग वचन प्रत्यय मिलते है ।[1]

सन्धि स्वरसन्धि, स्वर व्यंजन सन्धि तथा व्यंजन सन्धि - तीन तरह की होती है।

(1) 'सम्प्रसारणयोर्मध्ये य :॰, अदितो : कैवल्यो : व :' इन दोनों सूत्रों से य कार व कार आगमों के बारे में बताए गए है : अ + अ बीच में व आता : आना + अर्त आनवर्त, य भी आता: अ + अपूर्व अव्यपूर्व वहाँ द्विस्व होकर अलपूर्व जैसा सौन्दर्य होता : व + अपूर्व यव्यपूर्व (ऐसा सौन्दर्य) वहाँ भी द्विस्व होता । उके परे स्वर आता तो 'व' काण्यु + अत काण्युवत (वह देखा जाता) । संवृत उकार लुप्त होता : अर्त + स्का अतिल्ला । रू ट् के उ कार, स्वर पर होने पर लुप्त होता और ऱ् ट् द्विस्व बनते है : आऱु + अर्क आऱ्ऱर्क नाट्‌ + अर्क नाट्टर्क ।

स्वरव्यंजनसन्धि : क, च, ञ, त, न, प, म, य, व ये ही पदादि में आते है । इसलिए ये वर्णों का ही सन्धि कार्य में व्यंजन से लिए है । 'ए' के परे क, च, त, प द्विस्व होते है : प्रश्नवाचक सूचक ए के परे ञ, न, म, व भी द्विस्व होते । कहीं कहीं अ, औत्तु च, ई के परे ऊपर के सभी व्यंजन द्विस्व होते । समास में भी क, च, त, प द्विस्व होते । कहीं कहीं अ, आ, च, ई के बाद आनेवाले कवलर अपने पंचवर्ण को आगम के रूप में स्वीकार करते: मा + पू> माम्पू (आम् मंजरी) ।

व्यंजन सन्धि : (1) ण के परे त ट बनता है : कण + तीतु कण्टीतु (देख), (2) ण के परे न ण होता : मुण् + नम्रु मुण्णम्रु (पुरोभाग अच्छी) । (3) ळ के परे न ण होता : वाळ + मेल वाण्मेल(तलवार पर) ॰, (4) म के परे कवलप पंचं को स्वीकार करते : मार्म + कुरिंतु माङ्कुरिंतु (छोटा पेड) । म परे न न होता मार्म + नम्रु मान्नम्रु । कहीं कहीं म् को लोप भी होता वट्टं + पलका वट्टप्पलका(वृत्ताकार तख्त) । च, र, ल, च, ळ के कवलर द्विस्व होते है : पोर्न + कुलिरा पोक्कुलिरा (कूदा खीडा) । दीर्घ के बाद के च के न को लोप होता है : नेटि् + नाळ नेटाळ (चिरकाल) । व्यजनों के परे आदि नो अक्षर हो होनेपर अर्द्धउकार आता है । हृस्व के परे ल, ळ, न्, ण के परे कादि नो अक्षरवाले तो लकग्नल के द्विप्रहोते, संवृत उकार भी आता : कल् + नार्तु कल्लुनार्त (चार पत्थर) । एवु शब्द के परे कादि आते तो ए हृस्व होकर पूर्वपदान्त में संवृतउकार आता है : एवुं +नाषि

सर्वनाम्नि । ल नु के परे ककार आते तो र् का आदेश होता : कल् + कुळ कारकुळ फिर द्वित्व कारक्कुळ । ल परे तो उसका र् आता : पोन् + तामरा पोन्ऱामरा (स्वर्णकमल) द्वित्व होकर पोऱ्ऱामरा । बाकी प्रयोग से समझना है : वलिय + मला वन्मला (बड़ा पर्वत) आदि ।

व्याकरण संबन्धी इतनी ही बातें इस ग्रंथ में है । इसमें सन्धिप्रकरण मुख्य है इसलिए उसका पूरा विवरण यहाँ दिया गया है । इस ग्रन्थ में सूत्र तथा वृत्ति संस्कृत में ही गयी है । कई पंडितों ने इसकी व्याख्या की है । इलक्कुळ की व्याख्या सामान्यतया स्वीकार किया गया है । इसमें जो व्याकरण नियम दिये गये है वे मलयाळम के ही होते है । इसलिए मलयाळम के प्राचीन व्याकरण ग्रन्थों में इसे भी मान्यता दी गयी है । भाषा में समास प्रयोग साधारण न होने से उस पर विचार नहीं किया गया होगा । वाक्यरचना अंग्रेज़ी पद्धति के होने से उसे भी स्वीकार नहीं किया गया होगा ।

तोलकाप्पियं तमिळ का प्राचीन व्याकरणग्रन्थ है । इसके सन्धि तथा भाषा संबन्धी कई नियम मलयाळम में देखे जाते है । इसका अध्ययन प्राचीन मलयाळम का रूप तथा प्रयोग समझने में सहायक होता है

मलयाण्मयुटे व्याकरणं रवरेन्ट जार्ज मात्तन

रवरेन्ट जार्ज मात्तन के मलयाळव्याकरण को 'मलयाण्मयुटे व्याकरण' कहते है । इसका प्रकाशन 1863 में हुआ । डा.गुण्डर्ट का मलयाळ व्याकरण इसके पहले प्रकाशित हुआ था । पर ऐसा मालूम पड़ता है कि इन्होंने उसे नहीं देखा हो । गुण्डर्ट ने अपने व्याकरण में अंग्रेज़ी सूत्र देकर मलयाळम में व्याख्या दी है । पर जार्ज मात्तन ने मलयाळम में ही सारा कार्य किया है । इसलिए इस व्याकरण को हम मलयाळम का पहला व्याकरण कह सकते है । जार्ज मात्तन ने तो साधारण लोगों के बीच में रहकर उनकी बोलियों को ध्यान से सुना, पढ़ा, चिन्तन किया और व्याकरण लिखा । इसी कारण से बोलचाल की भाषा में इस व्याकरण का महत्व अधिक होता है ।

लेखक ने अपने व्याकरण को दो काण्डों में विभाजित किया है : (1) पहला काण्ड और (2) दूसरा काण्ड । पहले काण्ड के दो अध्याय होते है - (1) संज्ञा (2) सन्धि । प्रथमत: पहले भाषा तथा व्याकरण का सामान्य निरूपण है । व्याकरण में अक्षरलक्षण और शब्द लक्षण होते है । पहला काण्ड अक्षरलक्षण का है और दूसरा शब्द लक्षण का । शब्द लक्षण काण्ड

के तीन अध्याय होते है (1) संज्ञा (नाम) (2) वचनं (क्रिया) (3) अव्यय । अन्त में व्याकरण शब्दों की सूची दी गयी है ।

[1]व्याकरण भाषा के लक्षणों को बताकर उसके प्रयोगों के प्रमाण दिखाते है । अक्षरों के भेदों तथा उनके उच्चारण विशेषों को संज्ञा [2] कहते है । अक्षर अच् और हल् होते है । अच् स्वर है और हल् व्यंजन । संस्कृत की अक्षरमाला भी दी गई है ।

मलयालम के अक्षर :

अच् : ह्रस्व : अ,ए, इ, ओ उ

दीर्घ : आ, ए, ई, ओ ऊ

हल् : क, च, ट, त, प पांच वर्गों के पश्चात् य, र, ल, व सार्द्धस्वर, श, ष, स, ह ऊष्मा ळ, ष़, ऱ, ऱ्ऱ, ऩ अन्तस्थ । इस स्वर और अन्तिम व्यंजन मलयाळं में होते है । 'ए' और 'ओ' 'इ' और 'उ' के पूर्व रखे गये है क्यों कि उनका संबन्ध उन अक्षरों से अधिक है[1]। अक्षरों का नाम 'कार' मिलाकर कहते है : अकार, ककार आदि । अक्षरों का स्थान भेद दिखाया गया है । अल्पप्राण, महाप्राण आदि विभाजन भी दिखाया गया है । स्वरों में मिलाकर उच्चारण होता है । स्वरचिह्नों की सूची भी दी गयी है । ण, न, म,र,ल,ळ,य ये जब अर्द्धाक्षर होते तब ण्, न्, म्, र्, ल्, ळ्, रूपधारण करते है । इन्हें अन्वारूप कहते है । मलयाळं में अकार तथा एकार के बीच में एक अक्षर होते जिसे 'अर्द्धाच्' कहते है[1] अर्द्धाच् के समान शब्द र और ल में जोड़ने पर ऋ तथा लृ का उच्चारण होता है । संयुक्त वर्णों को भी दिखाया गया है । कई स्थानों में 'अ'कार को 'ए'कार का उच्चारण होता: अव अवे एव एवे आदि वर्णों के उच्चारण में ध्वनिभेदों का सूक्ष्म विवरण दिया है । लेखक ऱ्ऱ, ऩ, ऱ, ळ को मान्यकार कहते है । 'उ'कार का उच्चारण 'ओ' जैसे होता है कहीं कहीं उटल् ओटल , इ को ए का भी इटम् एटम् । त और द अर्द्धाक्षर या संयुक्ताक्षर से जुडने पर 'ल' का उच्चारण होता है : आत्मार्थ आल्मार्थ । 'ने' और ऩ केलिए एक ही लिपि

- -

1. आर्च मालन : मलयाळभाषुटे व्याकरण : एन.बी.एस.पुनः प्रकाशन 1969 पृ : 25
2. लेखक ने संस्कृत शैली को स्वीकार किया है ।

होती है । शब्दों की आदि में, दन्त्य के पूर्व और स्वरों के नीचे 'न' होता है : नीति, अन्त, स्नेह । दन्त्य को छोड़कर बाकी स्वरों के पूर्व और अर्धों के बीच 'न' आता है : न्याय., तिन्ना, अनीति आदि । एन्, तन् में विभक्ति प्रत्यय मिलाने पर 'न्न' का उच्चारण ही होता है । संस्कृत शब्दों में न्न ही उच्चरित है ।

सन्धि : सन्धि का अध्याय काफी लंबा है । वह पांच सर्गों में विभाजित है । सन्धि में लेखक ने संस्कृत तथा मलयालम दोनों को दिखाया है । अदेङ्गुणः वृद्धिरादैच् , एकोयणचि, एचोऽयवायाव आदि सूत्रों को स्वीकार करके बहुत से उदाहरण दिये है । लेखक सन्धिकार्यों को चार रूपों में दिखाया गया है (1) अजन्त अजादि से (2) अजन्त हलादि से (3) हलन्त अजादि से और (4) हलन्त और हलन्त से । सन्धि संबन्ध के बिना भी वर्ण परिणाम होते है : पटुक पेटुक कोकिल् कोयिल् , वर्न कन , कष्ट कष्ट , मार्ग वार्त , सिंह सिङ्ङ , पर्व पर्क , तरुवाम तरान् ।

दूसरा काण्ड : पद लक्षण :

मलयालम में तीन तरह के शब्द होते है : नाम, (संज्ञा) , वचन(क्रिया) , अव्यय । नाम (संज्ञा) के तीन भेद होते है : एक नाम, वर्गनाम और सर्वनाम । एकनाम व्यक्तिवाचक होता है । वर्गनाम सामान्यनाम होते है यानी जातिवाचक । सर्वनाम सब का नाम होता है । नामों का उत्भव रूढि और यौगिक रूप से होते है । कल्ल, पुल्ल, मर(पत्थर, घास, पेड) आदि शब्द रूढि से आए है । पर माङ्ङा, तेङ्ङा (आम, नारियल) यौगिक होते है । यौगिक को लेखक ने कथनाम बताया है : कथनाम गुणनाम और गुणिनाम दो है । कळ्ळन(चोर चुमड(बोझ), वरुम्नवन(आनेवाला) आदि गुणिवाचक है । शुद्धता, लघुता, गमनं आदि गुणवाचक है । लिंग : नामों का रूपभेद लिंग, वचन, और विभक्ति के मेल से है । लिंग तीन होते है : पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक । मनुष्य, असुर, देव के पुरुषों को तथा ईश्वर को

----

1. ज्यार्ज मातन : मलयाण्मयुटे व्याकरण : एन.बी.एस 1969 पृ.3।
2. पूर्ववत् पृ : 33
3. पृ.33 लेखक संवृत उकार को ही यह नाम दिया है । उसे दिखाने की व्यवस्था किसी उस काल में प्रचलित नहीं थी । (उ पृ.55

पुल्लिंग में मनुष्य, देव तथा असुर की स्त्रियों को स्त्रीलिंग में इन दोनों के बाहर होनेवाले निर्लिंग में आते है । इसे नपुंसक लिंग भी कहते है । परस्पर संबन्धित नामों में लिंग समान होना चाहिए : अवन् गुणवान्, अवळ गुणवती, अतु गुणमुळ्ळतु । कहीं कहीं इसका अपवाद होता है अम्मत्तम्पुरान (रानी), पार्वति महाराजावि आदि । वात्सल्य अथवा निन्दा में नपुंसक का प्रयोग होता : अतु (स्त्री) पार्व है, अतु (लड़का) पोरू कष्टुलवाकुन्नु (वह स्त्री गरीब है, वह लड़का गया है) । लिंग भेद अर्थ के अनुसार जानना है : पुरुष - स्त्री, भर्ता - भार्या, पेल्लकम् पेण्णु आदि । कई नामों में आण् या पेण् मिलाकर लिंग भेद दिखाया जाता है : आण् पेत्तल् पेण् पेत्तल् । पुल्लिंग शब्दों में अळ्, अ, इ, नि, ति, च्चि, ट्टि जोड़कर स्त्रीलिंग बनाते है : मकन् मकळ्, दुष्टन् दुष्टा, कळ्ळन् कळ्ळि, शालि शालिनि, कोलन कोलाति, पाचकन पाचिक, कणियान् कणियाट्टि ।

संख्या (वचन) वस्तुओं की एकता या बहुता दिखाने को नामों में जो रूपभेद होते उसे संख्या कहते है । इसके दो भेद है, एक को दिखाने की एक संख्या, एक से अधिक को दिखाने का बहुसंख्या । बहुसंख्या में न आनेवाले कई नाम होते है । एकनाम, गुणनाम, तोलने की वस्तुओं का नाम : कैलास, शुद्धता, चावल, चांदी आदि । कुछ शब्द रूप में बहुसंख्यक होने पर अर्थ में एक संख्यक : दारङ्ङळ् बहुसंख्या दिखाने केलिए कळ्, मार, अर प्रत्यय मिलाते है : शत्रुक्कळ्(कई दुश्मन), कळ्ळन्मार(कई चोर) । निर्लिंगों की बहुसंख्या में कळ् प्रत्यय ही आता है मलकळ्(कई पहाड़), तटिकळ्(कई तने) । अन् आन् अन्त के नामों में अर और आर आते है, वकारान्त नामों में 'व' लुप्त होकर कळ् मिलाया जाता : पिताव पिताक्कळ् । अ, इ, संवृत उ कार अन्त के नामों में कळ् या मार जोड़ सकते : पिळ्ळा पिळ्ळमार[1] अच्चि अच्चिमार या अच्चिकळ् मक्कळ् (बेटे) आचार्यर आदि में बहुसंख्या होने पर भी एकसंख्या का अर्थ होता । निर्लिंगों में बहुसंख्या केलिए एकसंख्या का प्रयोग चलता, संख्या शब्द के बाद एक संख्या ही आती है : नालु पशु (चार गायें) । लिंग जैसे संख्या में भी नामों की एकरूपता आवश्यक है: बुद्धिमान्मार शक्तिमान्मार (बुद्धिमान लोग बलवान होते है) । ञान् ओरु पशुविनेवाङ्ङि, अतिनु पालिल्ला (मैंने एक गाय खरीदी, पर वह दूध नहीं देती है)

---------------------------- 1 ----------

1. पिळ्ळा - केरल की एक जाति, उस जाति के कई लोग ।
2. मलयाळभाषा व्याकरण पृ.73

विभक्ति : वाक्य के पदों से एक संज्ञा का संबन्ध दिखाने केलिए जो रूपभेद बनाया जाता है उसे विभक्ति कहते हैं । मलयालम में आठ विभक्तियाँ होती हैं ।(2)

नाम	प्रत्यय	उदाहरण	अर्थ
प्रथमा	- - -	नदि	कर्ता
द्वितीया	ए	नदिये	कर्म
तृतीया	ओट	नदियोट	सहित-करनेवाले का साथी
चतुर्थी	क्कु	नदिक्कु	लाभ
पंचमी	आल्	नदियाल	कारण
षष्ठी	टे	नदियुटे	अधीनता
सप्तमी	इल	नदियिल	स्थान
अष्टमी	ए	नदिये	संबोधन

नामों के अन्त के म, ट, र संबोधन के सिवा बाकी विभक्तियों में त्त,डु, रा,ए धारण कर प्रत्यय ले लेते हैं : मर मरत्ते, काट काट्टिल्, आर आरिल् । कहीं कहीं प्रकृति और विभक्ति के बीच में 'इन' इटक्ष्य आ जाता है । विभक्तियों के कई उदाहरण तथा विवरण दिये गये हैं ।

नामों की उत्पत्ति : मूलनाम रूढि नाम ही होते है । तद्धित नाम अन्यनाम से आते है : तला तलवन, धन धार्म्य । इसके बहुत से उदाहरण दिये गये है ।

समासनाम : दो या अधिक नामों को मिलाकर एक पद बनाने को समास कहते है । समास तत्पुरुष द्वन्द्व तथा उपसर्ग समास तीन होते है । समास के आदि शब्द को आधेय और उत्तरशब्द को आधार कहते है । आधार - आधेयों का संबन्ध तरह तरह के होते है । समास नाम के पहले प्रयुक्त विशेषण आधार का विशेषण होगा : अच्छा राजपुत्र - राजा का अच्छा पुत्र । ऊंजसे मिलाने वाले समास द्वन्द्व समास होते है : रामलक्ष्मणन्मार - रामनुं लक्ष्मणनुं । उपसर्गों से समासित होनेवाले उपसर्ग समास होते है : अ, अति, अनु, अप, अव, अभि, आ, निर, दुर, नि,परि प्रति, प्र, वि, सु, सम, स्व, सत, यथा ये सब उपसर्ग है । इनके साथ संज्ञा के मिलने पर उपसर्ग समास बनते है ।

सर्वनाम : ञान् , नी, अवन्, तान् ये पुरुषार्थ सर्वनाम है । ञान् कहनेवाला , तमिल में यान्, इसका विकृत रूप रून - एन्ने, एनिक्कु आदि रूप । ञङ्ङळ्, नम्मळ, नाम, नीङ्ङळ् आदि उसका बहुसंख्यक है । नी सुननेवाला है । निङ्ङळ् उसका बहुवचन है । अवन् अन्यार्थ है, लिंग भेद में अवळ् बन जाते है । अवर द्विलिंग होता है । मटावन्, इन्नवन् भी अन्यार्थक होते है । एवन्, एवळ्, एत् आदि पृच्छक सर्वनाम होते है । चिला, पला, एल्ला आदि बहुत से सर्वनाम होते है ।

संख्यानाम : ओन्नु, रण्टु आदि शब्दों में लिखा है । साथ मलयाळं अंक भी दिखाया है : ൧, ൨ आदि ।

आचार शब्द : ञान (मैं) केलिए नाम (हम) नी (तुम) केलिए तान्, तङ्ङळ्, निङ्ङळ अवन (वह) केलिए अवर अद्देहं, अविटे, अङ्ङ्, अङ्ङुन्न आदि आदर सूचक शब्द तीनों पुरुषों में प्रयुक्त होते है ।

वचन : क्रिया केलिए लेखक ने वचन का प्रयोग किया है । धातु से क, क्कुक प्रत्यय लगाकर भाववनाम बनाते है : अरि अरिका(जानना) , चरि चरिक्कुक (चरना), क्कुक कभी कभी क्क में बदलता है : नटक्कुक नटक्क(चलना)। वचन मूलवचन तथा तद्धितवचन दो होते है । वा वरिका(आना), नट नटक्कुक(चलना) आदि मूलवचन है । नटत्तुक(चलाना), अकट्टुका (दूर करना) आदि तद्धित वचन है । मूलवचन का कर्ता तद्धित वचन में कर्म होता है : अवन वरुन्नु(वह पास आता) अवने वरुत्तुन्नु(उसे पास लाता) । वचन शुद्धवचन, वाच्यवचन दो होते है । वाच्यवचन, भाववचन, क्रिया वचन तीन होते है । क्रियावचन अकर्मक, सकर्मक, कारित और कर्मणि चार होते है[1] ।

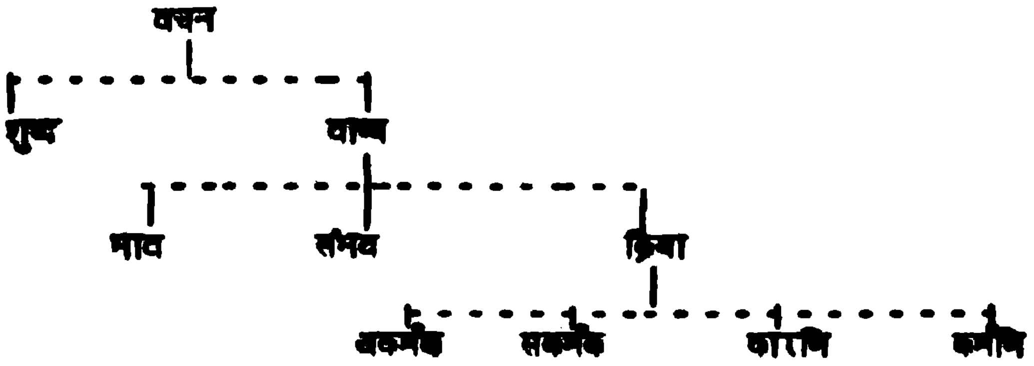

---

1. मलयाळस्फुट व्याकरण : पृ 115

शुद्धवचन : आकुन्नु(होता), अल्ल (नहीं होता) , भाववचन : उण्ट्, इल्ल •, संभवक्चन : उण्टाक, भविक्क(हो) संभविक्क, वरिक(आ), पोक(जा) , क्रियावचन : नटक्क(चलना), ओटुक (दौड़ना), पठिक्क(पढ़ना) , अकर्मक : चाटुन्नु (कूदता) , तुळ्ळि(नाचा) , सकर्मक : अटिच्चु (पीटा), शिक्षिच्चु(सज़ा दिया) , कारित : वीखुक वीऴ्ककुक(गिरना गिराना), मेयुक मेय्ककुक(चरना चराना), राजावु शिपायियेक्कोण्ट् अटिप्पिच्चु (राजा ने सिपाही से पिटवाया) । कर्मणिप्रयोग में क्रिया की द्वितीया प्रथमा में और प्रथमा पंचमी में बदलती है । सकर्मक से ही कर्मणिवाचक आता है । सलोमन देवालयत्ते पणिकिच्चु सोलोमनाल् देवालयं पणिक्कप्पेट्टु(सोलोमन से देवालय बनाया गया)

वचन की दो अवस्थाएं होती है : निराधार निला(स्थिति) और पराधार निला । जहाँ आधार के बिना वचन अकेले रहता है वहाँ निराधार निला है । जहाँ वह आश्रित होता वहाँ पराधार निला होती है । निराधार निला की ज्ञापकावस्था और आशंसावस्था होती है । अवन् स्नेहिक्कुन्नु (वह प्यार करता) , अवळ् स्नेहिक्कप्पेटुन्नु (वह स्त्री प्यार की जाती) । ज्ञापकावस्था के भूत, वर्तमान, भविष्य तीन काल होते है । वचन बीते हुए काल का हो तो भूत होता जिसे पूर्वकाल भी कहते है । ञान् एऴुति , अवर वायिच्चु(मैं ने लिखा , उसने पढ़ा) । वचन इसी समय का होनेपर वर्तमान काल होता है : ञङ्ङळ् एऴुतुन्नु(हम लिखते) , निङ्ङळ् वायिक्कुन्नु (तुम पढ़ते) । वचन का काल आनेवाला है तो उसे भविष्यकाल कहते है : नी एऴुतुं (तुम लिखोगे) अवन् वायिक्कुं (वह पढ़ेगा) ।

तु, त्तु, ट्टु, न्नु, च्चु, ञ्ञु, न्नु, ञ्ञु, णु और इ में से कोई एक प्रत्यय जोड़कर भूतकाल बनाया जाता है । उन्नु प्रत्यय मिलाकर वर्तमानकाल बनाया जाता और उं जोड़कर भविष्य काल । आशंसावस्था में आज्ञा या आग्रह प्रकट होता है: नन्म चेय्वान् पठिक्किन् (भलाई करना सीखो) 'नी' से क्रियाधातु का प्रयोग ही होता : नी पो(तू जा) साथ के साथ भविष्य के उं जोड़कर पोकुं(जाओ), वरू (आओ) आदि प्रयुक्त होते है । निङ्ङळ् में उं जोड़कर 'इन्' जोड़ने से निङ्ङळ् पोकुविन् होता है । तङ्ङळ् में आलुं जोड़ते : तङ्ङळ् पोयालुं बनता है (आप जाइए) अन्त में अट्टे जोड़कर ञान् पोकट्टे(मैं जाऊं), अवन् निल्क्कट्टे(वह खड़े रहे), ञङ्ङळ् एऴुतट्टे (हम लिखे) प्रयुक्त होते है । आकट्टे, काट्टे, के प्रत्यय भी जुड़ जाते है : नी पोयाट्टे(तू जा), निङ्ङळ् वन्नाट्टे (तुम आओ), एऴुतिक्के(लिखो) आदि ।

पराधार क्रिया : जो क्रियाएँ अपने आधार के लिए दूसरी वचन पर आश्रय करती उन्हें पराधार क्रिया कहा जाता है । ये अ, उ, न, ल अन्त के होते है । वर्तमान काल के 'उन्नु' के स्थान पर 'अ' करके इसे बनाया जाता है । पऱक्कुन्नु पऱक्क (उड़ता), नटक्कुन्नु नटक्क (चलता) आदि । अवन वयर् निऱय चोऱुण्टु (उसने पेट भर भात खाया)। चाटिच्चाटि नटन्नु (कूदता कूदता चला) । मऴ हेरि हेरि वरुन्नु(वर्षा अधिक अधिक होती) ।

नामांश[2]: वर्तमान काल नटक्कुन्नु, उससे नटक्कुन्न और भूतकाल के पऱ्ऱु से पऱ्ऱ(कहा हुआ) नामांश होते है । चत्त सिंहं(मरा शेर), पऱ्ऱ वाक्कु(कहा आदमी), वन्नवर्(आया लोग)

सहायक : वचन[3] : आका, उण्ट, इरिक्का, आक, कळिक, कोळ्क, वेका, इटुक, कळक, पोक, वरिक, तरिक आदि सहायक वाचक होते है । ये काल भेद में प्रयुक्त कर सकते है । अवन पोयिरिक्कुन्नु(वह गया है), अवन पोयिरुन्नु(वह गया था) , अवन पोयिरिक्कुं(वह गया

अव्यय : नामों तथा वचनों के संबन्ध दिखानेवाले क्रिया एवं भेद के शब्दों को अव्यय कहते है । उ, ओ, ए ये मूल अव्यय होते है । वरे, मुन्पु, मुतल, मूलं आदि नामाव्यय होते है । कुऱिच्चु, वेण्टि, एन्नु, तोट्टु , मेलोट्ट आदि वचनाव्यय होते । अट्टे, अतिकिल, अल्लोर्ट, अन्नं, अनन्तर, अभिकं आदि तद्धिताव्यय होते है । लेखक ने इनके प्रयोग के बारे में लंबा विवरण दिया गया है ।

पदशोधन : इस भाग में पदपरिचय दिखाया है । एक वाक्य देकर उसके सभी शब्दों का परिचय दिया गया है । अन्त में व्याकरण शब्द की सूची अंग्रेजी समान शब्दों के साथ दी गयी है

समीक्षा : 'मलयाऴ्मत्तिन्टे व्याकरणं' मलयाळं में लिखा हुआ पहला व्याकरण है । इसका लेखक जार्ज मात्तन का जन्म कोट्टयं के पास पुलिक्कोट्टिल में हुआ । उनके पिता मात्तन तरकन् थे और माता अन्नम्मा । जार्ज मात्तन का जन्म 1819 सितंबर 25 को हुआ । इनके जन्म के पहले ही पिता की मृत्यु हुई । इसलिए वे अपने चाचा कुरियन कत्तनार के संरक्षण में रहे । कुरियन कत्तनार वैदिक थे । उनके शिक्षण में लेखक ने सिरियन भाषा पढ़ी । आगे चलकर

---

1. अन्य वैयाकरणों ने इसे विनयेच्चम कहा है ।
2. यह पेरेच्चम ही होता है ।
3. ये सहाय क्रियाएँ होती है ।

लेखक भी वैदिक बने । कोट्टयं के पुरातन सिमिनारी में भर्ती होकर अंग्रेज़ी, ग्रीक, एब्राया, संस्कृत आदि भाषाएँ पढ़ी । 1837 में उच्च शिक्षा केलिए मद्रास गए । उस काल में यात्रा केलिए रेल या अन्य सुविधाएँ नहीं थीं । पैदल तथा कहीं कहीं बैलगाड़ी में बैठकर एक महीने में मद्रास पहुँचे । वहाँ के ग्रामर स्कूल में भाषाएँ, दर्शनशास्त्र तथा गणित पढ़े । अच्छे विद्वान होकर वापस आए । कई साल तक मावेलिक्करा में वैदिकवृत्ति, भाषा तथा समाज की सेवा करते रहे । फिर ऊट्टी तथा मद्रास में काम करते रहे । 1870 मार्च 4 को उनकी मृत्यु हुई ।

रट.जार्ज मात्तन ने कई लेख तथा ग्रन्थ लिखे । उनका यह व्याकरण 1863 में प्रकाशित हुआ । कई साल पहले ही उसे पूरा करके प्रेस में दिया था । पर छापने की सुविधा न मिली । गुंडर्ट के मलयालं व्याकरण 1851 में प्रकाशित हुआ । पर रवरेन्ट जार्ज मात्तन ने उसे नहीं देखा होगा । तिरुवितांकोर दीवान माधवराव ने लेखक का बड़ा अभिनन्दन किया और इस व्याकरण का सर्वाधिकार सरकार को दिला दिया ।

यह व्याकरण गुंडर्ट के व्याकरण से संक्षिप्त है । इसमें जटिलता नहीं देखी जाती । ऋ, ॠ, लृ, लॄ को पूर्ण रूप से छोड़ दिया । 'ṟṟ' को एक स्वतन्त्र अक्षर के रूप में स्वीकार किया गया है । स्थान स्थान पर तमिल व्याकरण तथा संस्कृत व्याकरण पद्धति को स्वीकार किया है पर व्याकरण पूर्ण रूप में योरोपीय - पद्धति का होता है । सन्धिकार्य में संस्कृत तथा मलयालं दोनों के उदाहरण दिये हैं । कई संस्कृत नियम भाषा शब्दों में भी निर्धारित किए गए हैं । य और व के आगमन का वर्णन भी है । अर्द्ध उकार यानी संवृत उकार को उन्होंने अर्द्धाच् नाम दिया गया है । उसके लिए कोई चिह्न नहीं दे सके । विवृत 'उकार' का प्रयोग भी किया गया है । उस समय के प्रकाशनों में ऐसी रीति प्रचलित थी । नपुंसक लिंग केलिए निर्लिंग का नाम दिया है । विभक्ति पर जटिलता नहीं दिखायी गयी है । आठ विभक्तियाँ संस्कृत शब्दों में दिखायी गयी हैं । संबोधना केलिए अष्टमी विभक्ति का नाम दिया है । विभक्ति प्रत्ययों को सीमित करके दिखाया है । क्रिया केलिए 'वचनं' शब्द दिया है । विनयेच्चम तथा पेरेच्चम के लिए क्रमशः वचनाधेय तथा नामाधेय नाम दिए गए हैं । सहायक क्रियाओं की लंबी सूची देकर प्रयोग भी दिखाया है । अव्ययों का भी लंबी सूची दी है तथा उनका प्रयोग भी दिखाया है ।

संक्षेप में मलयालं भाषा का यह पहला व्याकरण सर्वथा गणनीय तथा पठनीय होता है । रवरन्ट जार्ज मात्तन का यह कार्य अभिनन्दनीय है ।

केरल भाषा व्याकरण और केरल कौमुदि :

केरलभाषा व्याकरण पाच्चुमूत्तत्तु का लिखा हुआ है । इसका प्रकाशन 1876 में हुआ । मूत्तत्तु संस्कृतभाषा के प्रकाण्ड पंडित थे । साहित्य ही नहीं आयुर्वेद, ज्योतिष आदि शास्त्रों के भी पंडित थे । वे तिरुविताङ्कूर महाराजा आयिल्यम तिरुनाळ के आश्रित थे । संस्कृत पद्धति के अनुसार ही उन्होंने अपना व्याकरण लिखा । इसे पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दो भागों में विभाजित किया है । पूर्वभाग में अक्षर, सन्धि, पद तथा समास को दिखाया है । उत्तरार्द्ध में धातु, क्रि प्रयोग और अलंकारों को दिखाया है । व्याकरण के संबन्ध भी वे बताते है कि लोग अपनी भाषा का प्रयोग सामान्य रूप में कर सकते है परन्तु उसके ठीक प्रयोग केलिए व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है । जंगल को साफ करके जैसे एक अच्छी सड़क बनायी जाती वैसे व्याकरण का ज्ञान भाषा प्रयोग में सिद्धि देता है । संस्कृत तथा तमिऴ, व्याकरणों से ही इतनी विकसित और पुष्ट हो गयी है। पर मलयाळं अब भी इतनी विकसित नहीं, मलयाळं में तमिऴ और संस्कृत के शब्द ही नहीं बल्कि कन्नड, तुळु आदि के तद्भव तथा तत्सम शब्द भी होते है : तला(सिर), इल्लम्(घर) मना आदि ।

मलयाळं में 16 स्वर और 36 व्यंजन होते है । वर्णों को उच्चारण स्थान सहित दिखाया गया है । ऱ, ऴ और ळ प्रतिवर्ण होते है । संस्कृत में ल और ळ के प्रयोग में भिन्नता नहीं, पर मलयाळं में वे भिन्न ही है । न तथा ऩ के भेद दिखाए गए है । संस्कृत के ऋ तथा लृ मलयाळं में नहीं होते । ह्रस्व ए और ओ मलयाळं में भी होते है । अक्षर को दिखाने केलिए 'कार' जोड़ते है : अकार, इकार । चिल्लों के उच्चारण में अर्द्धमात्रा होती है । 'अ'कार विवृत और संवृत दो तरह के होते है । 'अतु' का अ विवृत है और 'गजं' 'ग' के अन्त का 'अ' संवृत है । स्वर शुद्ध तथा अनुनासिक दो तरह के होते है ।

सन्धि : लोप संधी का उदाहरण देखिए : आ + एटा आटा (तू आ) ज, व और य आगम होते है : वाक्कं + नन्नु वाक्कुनन्नु(अच्छी बात) (संवृत 'उ'कार विवृत होता) वाटाविपिटे (इधर आ) 'व' आगम, वेटायोरिक्कलु(कभी नहीं जुड़ता) 'य' आगम । द्वित्व आगम का रूपान्तर है : मर + पट्टा मरप्पाळा, पर पराक्रम अव्यय हो तो द्वित्व नहीं होता तला + नोवि तलनोवि (सिरदर्द) । आदेश में स्वर को भी स्वीकार करते है । अल्ला एटो अल्लेटो(ओ, वह नहीं)अ, ए हुआ । मणल + तरि मणत्तरि(रेत का कण)यहाँ ल, त हो ग

पदकाण्ड में पदों के चार विभाग दिये गये है (1) संज्ञा (2) अव्यय (3) समास तथा (4) क्रिया । संज्ञा के दो भेद होते : वस्तुनाम और क्रिया नाम । वस्तुनाम : (1) संकेतनाम : राम , (2) सर्वनाम : एल्लावर , (3) उद्दिष्टनाम अवन् , अवळ् (4) संख्या नाम : ओन्नु । प्रत्यय मिलाकर क्रियानाम बनाये जाते है : उण्णु > उण्णुक (खाना) इरिक्कु > इरिक्कुक (बैठना)

अव्ययों की सूची अर्थ के साथ - 80 - दिये गये है । लिंग वचन विभक्ति भेद न होने से उन शब्दों को अव्यय कहते है । आवि, अल्ला, पक्ष आदि ।

नामरूप तद्धित - प्रत्यय मिलाकर बनाये जाते है : मूढ + त्व मूढत्वं, मूढता, मौढ्यं । कारन् , वन्, मान्, इकार प्रत्ययों का भी उदाहरण दिया गया है । प्रति (हर एक) दिखाने केलिए 'रा' जोड़ता है : उरिरा(रात्रा) क्रिया नाम बनाने केलिए अ,अल् या मा प्रत्यय जोड़ते है निल् + अ निला (स्थिर रहना) एन + अल एन्नाल , वेळ् + मा वेण्मा (सफेदी)

लिंग वचन प्रत्यय : पुल्लिंग केलिए 'अन्' स्त्रीलिंग केलिए अ, इ, उ, ति, चि, और अळ् : मकन्(पु) मकळ् (स्त्री) । नपुंसक के दो भेद दिखाये है : पु नपुंसक और स्त्री नपुंसक । जो संस्कृत शब्द अ, इ, उ अन्त में नपुंसक : गजम्, कपि, और वायु (ये पुं नपुंसक) होते है । इसके अपवाद होते है 'ङ्ङळ्' और 'कळ्' बहुवचन प्रत्यय होते है ।[1]

कारक : संस्कृत नामकरण ही दिया गया है : प्रथमा , द्वितीया आदि/प्रत्ययों की संख्या अधिक है । इसमें लेखक ने वास्त प्रयोग को स्वीकार किया है । शब्दों के रूप दिये गये है । कर्ता, कर्म आदि भी दिये है । संबन्ध (षष्ठी) में कई भेद दिखाए गए है । जन्य संबन्ध, प्राधान्य संबन्ध अवयव संबन्ध और वाच्य संबन्ध । इनके अलावा कारक षष्ठी तथा कर्तार षष्ठी को भी दिखाया है । सप्तमी में तिरुवनन्तपुरत्तु, काट्टिले आदि विभक्त्याभासों का विवरण है ।

विशेषण : आया, इट्टु आदि जोड़कर विशेषण बनाये जाते है । विशेषणों की द्विरुक्ति भी होती है : वेळु-वेळे, कर्म-कर्म आदि । संख्याएँ एक से नौ तक की दिखायी गयी है: ओर, इर, मू नाल, अन् , आर, ए, एन और तोन्ना ।

समासकाण्ड : शब्दों को युग्म बनाने की प्रथा को समास कहते है । समास आलुप्त और लुप्त दो तरह के होते है । लुप्त समास अव्ययीभाव, बहुव्रीहि, तत्पुरुष, द्वन्द्व, उपमित और क्रिया समास छे तरह के होते है । कट्टिङ्कल(देहाती), केट्टिट्टट्टू(सुनकर) अव्ययीभाव होते क्यों कि उत्तरपद अव्यय होते है । मतियारा(काफी नहीं होता) वन्नुपोकुन्नु(ऐसा ही रहता है) आदि क्रिया समास है ।

(1) संस्कृत के स्त्रीलिंग शब्द जो मलयालम में नपुंसक होते - माला, धारा आदि - स्त्रीनपुंसक होते हैं ।

उत्तरकाण्ड

- - - -

इस में धातुओं के विवरण हैं । प्रेरणार्थ क्रियाओं का रूप भी दिखाया गया है ।

काल प्रत्यय 1. भूत - इ पोयि (गया) उ कटन्नु (पार किया)

(2) वर्तमान - उन्नु कटक्कुन्नु (पार करता है)

(3) भविष्य - इसके चार रूप होते हैं (1) विधि - ई कटक्कुं (पार करेगा)

(4) अनुवाद - आम कटक्काम (पार करो) (5) आसन्न - अर्थ कटक्कणं (पार करना)

(6) प्रार्थना - अवे कटक्कणे (पार कीजिएगा)

भूतकाल : लेखक ने धातुओं को पांच गणों में विभाजित किया है : न्नु, त्तु, च्चु, ञ्ञु, इ और उ।

1. न्नु > कटन्नु (पार किया) 4. ञ्ञु > परंञ्ञु (कहा)

2. त्तु > पकुत्तु (बाँट दिया) 5. इ > नल्कि (दिया)

3. च्चु > भाविच्चु (पैदा हुआ) 6. उ > इट्टु (रखा)

प्रेरणार्थक तीन तरह के होते हैं (1) अनुवर्तन (2) कर्म (3) हेतु

(1) राजाविनिकोण्ड् कोटुप्पिच्चु (मन्त्री ने राजा से दिलवा दिया) अनुवर्तन ।

(2) भृत्यनेकोण्ट् अटिप्पिच्चु (नौकर से पिटवाया) कर्म ।

(3) बालचालकोण्ड् पुलम्पिच्चु (डरा के दौड़वाया) हेतु ।

अनुमत्यर्थ में कनि, क्कनि, आकुन्न, जुड़ते हैं : पोक्कनि, पोकेण्मे, पोयालुम् (कृपया जाइए) आट्टे प्रत्यय : पोकट्टे (जाने दो)

क्रिया भेद : (1) भूत अव्ययान्त क्रिया और (2) भावि अव्ययान्त क्रिया, (ये पूर्वकालिक तथा निमित्तार्थ होते हैं)

अव्ययान्त क्रिया : पलवाह् (कहा तो), निषेध अव्ययान्त चेय्याता (नहीं किया)

अव्ययान्त क्रिया संभावनार्थ में प्रयुक्त होती है ।

पेरेच्च : 'अ' प्रत्यय मिलाकर पेरेच्च बनाते हैं : वेट्टियवाळ् (काटी तलवार) मूटिय तुणि (ढका हुआ कपड़ा)

भाव प्रत्यय : अ, इ, मु, पु, वा, मा, उका, अल्, आम ये भाव प्रत्यय हैं ।

उदा : निला, केटि, मातु, तेम्पु, वेरवा, ओर्मा, पातुका, नटक्कल, उयर्च ।

कविताओं में शब्दों का विशेष प्रयोग होते है । इसके कई उदाहरण दिये है । मणिप्रवाळं पर प्रकाश डालते है, संस्कृत तथा मलयाळं - मोती तथा पविळं - का मिश्रण है ।

अलंकार काण्ड में संस्कृत तथा मलयाळं के शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों को दिखाया है । इन्हीं पर भी प्रकाश डाला गया है ।

- - - - - - -

केरलकौमुदी :

टी.ए.कोवुण्णिनेडुंगाडी का लिखा हुआ व्याकरण है 'केरलकौमुदी' । इसका प्रकाशन 1878 में हुआ । इसके लेखक संस्कृत तथा मलयाळं के बड़े पंडित थे । मद्रास के प्रेसिडन्सी कालेज तथा तिरुवनन्तपुरं के महाराजास कालेज में भाषाध्यापक रहे । केरल पाणिनीयं के प्रकाशन तक यही मलयाळं का प्रामाणिक व्याकरण रहा । मलयाळं में संस्कृत - पद्धति के अनुसार लिखा हुआ व्याकरण ग्रन्थ है यह । हम देख सकते है कि लेखक ने संस्कृत, मलयाळं तथा तमिळ तीन भाषाओं से आवश्यक साधन जुटाये है । प्रारंभ में मलयाळं की उत्पत्ति के बारे में वर्णन देखिए -

संस्कृत हिमगिरि गलिता
द्राविड-वाणी - कलिन्दजा मिलिता ।
केरल भाषा गंगा
विहरतु मे हृत्सरस्वदासंगा ।।[1]

केरल भाषा उच्चारण में संस्कृत जैसे ही होती है, व्याकरण में तमिळ का अनुसरण करती है । इस ग्रन्थ में 16 आलोक होते है । पहला आलोक अक्षरालोक है । इसमें अक्षरों के बारे में बताते है । लेखक के अनुसार मलयाळं में 55 अक्षर होते है । ह्रस्व ए, ओ, ऋ और लृ को भी स्वीकार किया है । तमिळ तथा संस्कृत वर्णमालाओं का अन्तर दिखाया है ।

सभी नियम कारिका या सूत्रबद्ध है । दूसरे आलोक में अक्, हक्, अच् और हल् शब्दों का विवेचन है । तमिळ में स्वरों को 'उयिर' और व्यंजनों को 'मेय' कहते है । ऋ ॠ लृ ॡ अं अः तथा अतिखर्, मृदु और घोष संस्कृत से लिये हुए है । मलयाळं में न और ऩ को एक

- -

1. केरलकौमुदी का मंगलश्लोक । द्राविड संस्कृत से नहीं, संस्कृत द्राविड से मिलकर बहना था ।

की लिपि होती है । ऩ शब्दों के आदि में न आता । ठ,ढ,ण,ऴ या ळ भी आदि में नहीं आते हैं। तीसरे आलोक में शब्दों के बारे में बताते हैं। शब्दों का रूढि तथा योगरूढि दो भागों में बाँट सकते हैं। प्रकृति में प्रत्यय जोड़कर शब्द बनाते हैं। सन्धि और समास का भेद दिखाया गया है । सन्धियाँ चार होती है : लोप, आगम, आदेश और द्वित्व । नामों को सुबन्त कहते और क्रियाओं को तिङन्त । तमिळ में इन्हें पेर और विना कहते हैं। अव्यय नाम या क्रिया से पृथक् हुए शब्द होते है । संस्कृत वैयाकरणों ने षष्ठी को छोड़कर बाकी विभक्तियों को कारक बताया गया है । लेखक ने भी इसका अनुसरण किया है । विनयेच्च और पेरेच्च के रूप दिखाए है ।

कर्ता, क्रिया तथा कर्म (ये तीन) वाक्य रचना के साधन है । श्लेष, यति, प्रास आदि काव्य लक्षणों को भी दिखाया है ।

चौथे आलोक में सन्धि का वर्णन है । पहली 12 कारिकाओं में संस्कृत सन्धियों का विवरण है । 'इकोयणचि' आदि पाणिनीय सूत्रों के आधार पर 'इकिमय' आदि सूत्र भी दिये है संस्कृत सन्धियों के आधार पर उडु + इन्दन ऊडुन्दन [1] पर, पटा + आळ् पटाळ नहीं होता, वहाँ तमिळ के अनुसार पटयाळ् ही होता है । मलयाळ की सन्धियों का विस्तार से परिचय दिया गया है । लोप, आगम, आदेश तथा द्वित्व केलिए काफी उदाहरण दिये गये है

पाँचवाँ आलोक शब्दों के बारे में है । शब्दों को जाति, संज्ञा, गुण क्रिया-चार भागों में विभाजित किया है । तत्सम, तद्भव तथा देश्य दूसरा विभाजन है । विदेशी शब्दों को स्वीकार नहीं किया है । शब्दों में वर्ण परिणाम आता है : वर्ण वन्न, पक्ष पक्क ये तमिळ नियमों से परिणत है । आदिस्वर लुप्त करके उलर्क लोर्क, अरचन राजा, मतिर मन्त्र, कारियं कार्य । लेखक बताते है कि तत्सम शब्दों का प्रयोग करना अच्छा है ।

छठा आलोक पदालोक है । इसमें शब्दों का विभाजन संस्कृत व्याकरण पद्धति के अनुसार हुआ है (1) नाम (2) क्रिया और (3) अव्यय । नान्नूल के अनुसार (1) पेर (2) वटच्चोल (3) तिरच्चोल (4) विनच्चोल (5) इटच्चोल (6) उरिच्चोल के रूप भी दिखाये है इनमें पहले तीन नामों में, विनच्चोल को क्रिया में और अन्तिम दो अव्यय में मिलाये जा सकते है

---

1. अक : सवर्ण दीर्घ : (इ + इ = ई)

सातवें आलोक में नामविभाजन है । नाम(संज्ञा) आठ तरह के होते है : प्रातिसंज्ञा, कृदंत, तद्धित, समास, भाववनाम, क्रियानाम, संख्यानाम और सर्वनाम । हर एक का उदाहरण दिया गया है । कारकों को लेखक ने संस्कृत के अनुसार प्रथमा, द्वितीया आदि संज्ञाएं दी गई है संस्कृत ऋ कारान्त शब्द मलयाळं में दु अन्त के होते है : पिता पितावं, माता मातावं आदि संस्कृत शब्दों में मलयाळं विभक्ति प्रत्यय मिलाने की रीति कहीं कहीं देख सकते है । कारकों को दिखाया है : कर्ता, कर्म, कारणमासाहित्य, संप्रदान, अपादान, संबन्ध और आधारा ।

विभक्ति प्रत्यय :

कर्ता	- प्रत्यय नहीं ।	अपादान	- स्थकाल्, ल्लनिन्नु
कर्म	- ए	संबन्ध	- कु, न्टे, उटे
करण	- आलिक्कोण्टु, ओटे, उटे, आलि	अधिकरण	- काल्, ल्ल्
संप्रदान	- क्कु, न्नु	संबोधन	- ए

संस्कृत शब्द जो अः अन्त के होते है वे मलयाळं में विसर्ग रहित तथा 'अन' जुडकर बनते है : जैसे - रामः रामन्, रामन्मार । इकारान्त और उकारान्त संस्कृत शब्द विसर्ग रहित कैसे बनते है देखिए - कविः कवि, गुरुः गुरु । आन्त शब्दों का स्वर ह्रस्व होता माया माय नारी नारि । अन्य विकार पितृ पिता पितावं, राजा राजावं, धीः धी देवाः देवावं या देवकळ, गोः गोवं । कान्त तथा तान्त संस्कृत शब्द का अन्त व्यंजन द्वित्व करके प्रयुक्त होते है : आपद आपत्तु, भिषक् भिषक्कु ।

तद्धित प्रत्यय : अन्, इ, आळ्, त्ति, च्चि, टि्ट और शालि दिए गये है । मलयाळं में नाम से क्रिया तथा क्रिया से नाम समासित होते है : अटिच्चुतळ्ळ (सपर्वई करना) वेंदूपुक्कल (गुरुपू तनम्, त्तम्, इ, प्पम, म, व ये भाववनाम प्रत्यय है । उदा : मूढतनं, आयत्तं, केळि, वलिप्पं, नम्मा, वेळिच्चं(मूर्खता, पुरुषत्व, प्रसिद्धि, भलाई, रोशनी) ।

एला, चिला ये सर्वनाम है, पर आरानु(कोई) आदि असमितावाची होते है ।

क्रियालोक : संस्कृत क्रियाओं का रूप दिया गया है । मलयाळं में कालवाची प्रत्यय ये है : उन्नु, अं, त, ट, टु, इ, हन, ऊ, उ, आन, ए, आळ्, किल्, ल्ल् । इ, उ भूतकाल प्रत्यय है, उं भविष्य प्रत्यय, ओं भी भविष्य को दिखाता है । लेखक ने 400 धातुओं को काल प्रत्यय जोडकर दिखाया है । निषेध केलिए आ, अल्ला, इल्ला जोडते है । तमिष् में लिंग वचन प्रत्यय मिलाने की प्रथा है ।

नौवाँ आलोक अव्ययों का है। अविटे (वहाँ) अप्पोल् (तब) अङ्ङु (वहाँ) अङ्ङने (वैसे) अत्र (उतना) आदि अव्यय होते हैं। दसवाँ आलोक विशेषणों का है। कटु, नल्ल्, पेरु, वेण् आदि कई विशेषणों को सोदाहरण दिखाया है। ग्यारहवाँ आलोक वाक्यों के बारे में है। गंवारों की भाषा, पत्र पत्रिकाओं की भाषा, साहित्यिक भाषा तथा कविता के उदाहरण देकर इसपर प्रकाश डाला गया है। पेरेच्च, विनयेच्च, उं आदि जोड़कर वाक्यों को बढ़ा सकते हैं। कर्मणि प्रयोग को पटुविना कहते हैं। 'पटु' सहायक क्रिया है, मलयालम में भावेप्रयोग नहीं है। द्विकर्मक क्रियाओं के बारे में वर्णन है। लिंग, वचन, कारकों पर और भी कई बातें बतायी गयी हैं।

समासालोक में तत्पुरुष के आठ विभाग दिखाये गये हैं। सात कारकों तथा नञ् तत्पुरुष, कर्मधारय के सात भाग दिखाये हैं। द्विगु के दो भेद हैं, बहुव्रीहि के सात भेद हैं: द्वन्द्व तथा अव्ययीभाव के भी दो - दो भाग हैं। तेरहवें आलोक में संस्कृत तथा मलयालम छंदों का वर्णन है। चौदहवें में अलंकारों और पन्द्रहवें में धातुओं का विवरण है। सोलहवाँ आलोक अभ्यासों का है।

केरलभाषा व्याकरण 1876 में और केरलकौमुदि 1878 में प्रकाशित हुए। दोनों के लेखकों ने अपना अपना व्याकरण एक ही समय में लिखा होगा। लेकिन इसका कोई लक्षण नहीं कि वे एक दूसरे से परिचित थे। जार्ज मात्तन का मलयाण्मयुटे व्याकरण इन दोनों के पहले प्रकाशित हुआ था। पाच्चुमूत्तत् ने जार्ज मात्तन का व्याकरण देखा होगा। मात्तन के व्याकरण की कुछ प्रतियाँ तिरुवितांकोर राजमहल में[1] थीं। तिरुवितांकोर सरकार ने उसके प्रकाशन का अधिकार भी ले लिया था। मूत्तत् ने अपने व्याकरण में पूर्वकाण्ड और उत्तरकाण्ड का प्रयोग शायद मात्तन के व्याकरण से ही लिया होगा। मूत्तत् ने संस्कृत पद्धति में ही अपना व्याकरण लिखा है। परंपरा के अनुसार ही उन्होंने वर्णों को स्वीकार किया, सिद्धान्त कौमुदी के आधार पर उच्चारण स्थान तथा अन्य व्याकरणिक प्रक्रियाएँ स्वीकार कीं। बालप्रबोध की बातों को भी उन्होंने स्वीकार किया।

---

1. मलयाण्मयुटे व्याकरण : पुनः संस्करण 1969, एन.बी.एस: प्रभात पुस्तकालय मात्तनतराकन पृ : 8

केरलकौमुदि व्याकरण का रूप विकसित रूप है । नेहुंगाडी ने भी संस्कृत पद्धति को ही स्वीकार किया । पर मलयाळं के सिद्धान्तों पर वे अधिक प्रकाश डाल सके । वर्णों में तमिळ पद्धति के अनुसार मलयाळं के वर्णों पर प्रकाश डाला गया है और संस्कृत से स्वीकार किये गये वर्णों को भी अलग दिखाया गया है । नेहुंगाडी ने मलयाळं भाषा की उत्पत्ति के बारे में जो सिद्धांत अपने मंगल श्लोक में दिखाया है वह बिलकुल मणिप्रवाळं के लिए बाधक होता है । पर उन्होंने आगे चलकर तमिळ पद्धति को तथा मलयाळं को प्रधानता देते हुए स्वीकार किया । उनका व्याकरण मलयाळं व्याकरण का विकसित रूप कहा जा सकता है । विभक्ति प्रत्ययों के बारे में उन्होंने भी मूलतत्व का अनुसरण किया है । समास प्रकरण काफी लंबा बना है । एक भाषाध्यापक के नाते उनके व्याकरण में क्रमबद्धता होती है ।

इन दोनों का व्याकरण परंपरा के अनुसार तथा संस्कृत-पद्धति के अनुसार होता है ।

व्याकरणमित्रं

पं.शेषगिरि प्रभु का लिखा हुआ मलयाळं व्याकरण है 'व्याकरणमित्रं' वह 1904 में प्रकाशित हुआ वह शेषगिरि प्रभु तथा पं कृष्णन दोनों के सहयोग से लिखा हुआ था । पर 1919 में इसका परिष्कृत तथा विस्तृत संस्करण शेषगिरि प्रभु ने प्रकाशित किया । शेषगिरि प्रभु राजमन्द्री ट्रेनिंग कालेज में प्रधानाचार्य थे । अंग्रेज़ी तथा संस्कृत के वे प्रकाण्ड विद्वान थे । संस्कृत व्याकरण पद्धति के अनुसार ही यह ग्रन्थ लिखा हुआ है, पर वाक्य रचना भाग अंग्रेज़ी पद्धति के अनुसार है । प्रथम संस्करण के आमुख में महाकवि उळ्ळूर ने लिखा[1] है 'केरलपाणिनीयं के परिष्कृत तथा विस्तृत संस्करण 1917 में प्रकाशित हुआ । उस ग्रन्थ पर प्रभु ने अपनी टिप्पणि भाषापोषिणि - मासिक[2] पत्रिका में लेखों के रूप में प्रकाशित करा दिया । ये लेख बहुत ही वैज्ञानिक तथा ओजस्वी थे । ये पाणिनि की अष्टाध्यायी के लिए पतंजलि महाभाष्य जैसे साबित हु प्रभु ने अपने लेखों में भाषाशास्त्र, व्याकरण, तुलनात्मक पद्धति आदि का अच्छा परिचय दिया है

---

1. व्याकरणमित्रं - तीसरा संस्करण 1919 - प्राक्कथन पृ 3-4 महाकवि उळ्ळूर
2. तलशेरी में इस समिति का कार्यालय था ।

भाषापोषिणि समिति ने उन्हें मलयाळं में व्याकरण लिखने की प्रेरणा दी । लेखक ग्रन्थ के आरंभ में बताते है - ' कलाओं की माता है भाषा , भाषाओं की माता है व्याकरण , अतः व्याकरण भाषाओं की माता है ' ।

लेखक ने निम्नकोटियों के व्याकरणों पर प्रकाश डाला है :

(1) निर्देशक व्याकरण : शब्द विभाग तथा उनका प्रयोग दिखानेवाला ।

(2) उपपादक व्याकरण : भाषाशास्त्र तथा न्यायशास्त्र से ऊपर की बातों पर प्रकाश डालनेवाला

(3) कालिक व्याकरण : प्राचीन प्रयोगों से लेकर भाषा - विकास का सार समझानेवाला ।

(4) आनुवंशिक व्याकरण : अन्य भाषाओं से तुलना करके भाषाज्ञान देनेवाला क्रमाणी ।

(5) दार्शनिक व्याकरण : अन्य भाषाओं के व्याकरणों का तुलनात्मक अध्ययन ।

व्याकरणमित्रं तीन काण्डों में विभक्त है । शिक्षाकाण्ड, परिनिष्ठाकाण्ड और वाक्यकाण्ड । शिक्षाकाण्ड में (1) संज्ञा प्रकरण (2) उच्चारण प्रकरण (3) सन्धि प्रकरण है । संज्ञा प्रकरण में वर्ण तथा लिपि परिचय होते है । लेखक ने मलयाळं में संस्कृत वर्णों को ही स्वीकार किया है और ऱ, ळ, ऴ को प्रतिवर्ण नामकरण देकर जोड़ा है । उच्चारण के बारे में भी संस्कृत व्याकरण पद्धति को स्वीकार किया है । प्रतिवर्णों का मध्यम में मिलाया है । लेखक कहते है कि ऋग्वेद में ड् और ढ् का उच्चारण ळ और ह के जैसे होता जो मलयाळं में भी देख सकते : वड्ग वळ्ग , गुडा गुळा , सम्राड् सम्राळ आदि । 'ळ' संस्कृत में द्राविड से आया होगा । तमिळ पद्धति के अनुसार मलयाळं की वर्णमाला भी दिखायी है । शब्दों के आदि 'अ'कार विवृत होता पर मध्य अं कार संवृत । संस्कृत के आन्त शब्द मलयाळं में 'अ' अन्त होता , तेलुगु में भी ऐसा होता है । पर तुळु और तमिळ में क्रमशः ए और ऐ बन जाते : गंगा(सं) गङ्ङ(म•ते) गंगे (तु) गंगै(त) कन्नड में भी 'ए' होता है : गंगे । अकारान्त संस्कृतशब्द मलयाळं में वु अन्त होते : पिता पितावु , माता मातावु आदर आदरवु । आन्त अव्यय उसी रूप में रहता है : सदा । मृड्, य, र, ल तथ अन्, अर् , अन्त प्रत्यय के पूर्व 'अ' 'ए' बन जाता: वय वेय , अवन् अवेन् । 'उ' विवृत और संवृत दो तरह के होते है । ए और उ को ट वर्ग या माध्यम के पहले होते व ए और ओ का उच्चारण ले लेते । एला एला , उटल ओटल आदि । ए का उच्चारण कहीं कहीं 'य' होता है । ऐ और औ के उच्चारण में भी

कहीं कहीं अन्तर होता है । शब्द का पहला स्वर या द्वित्वस्वर के सिवा अन्य स्थानों में खर मृदु हो जाते हैं : अतु अदु, कटं कडं । अनुनासिक के परे खर मृदु के जैसे और मृदु अनुनासिक जैसे उच्चरित होते हैं : पंचमं पञ्चमम्, कंपं कंबं, अञ्जनं अञ्ञनं । ळ को ळ् लिखते हैं : नार्व नाळ् । संस्कृत के त् का मलयाळं में ल् जैसे उच्चरित होता है : पत्मा पल्मा, उत्सव उल्सव ।

सन्धि : आगम आदेश और लोप तीन सन्धियों को स्वीकार किया है । द्वित्व आगम ही है ।

आगम : अ + अन् अवन् । लोप : चेय्तु + कोण्टु चेय्तोण्टु ।

कारम + आयि कारायि ।

मला + अन् मलयन् । आदेश : पो + कटलि पोंकटलि ।

अ + कर्ळ अक्कर्ळ । कन् + तु कन्टु ।

संस्कृत सन्धियों को सोदाहरण दिया है । स्वरसन्धि, व्यंजनसन्धि तथा विसर्ग सन्धि पाणिनि के अनुसार दिखाया है ।

परिनिष्ठाकाण्ड : इसमें प्रातिपदिक धातु, समास, भेदक और अव्यय पाँच भाग हैं ।

प्रातिपदिक नाम वाक्यों में कर्ता, विशेषण या कर्म के रूप में रहनेवाले हैं । इनके लिंग, वचन, विभक्ति भेद होते । कर्ता कारक और कर्म कारक के सिवा बाकी कारक क्रिया विशेषण हैं । संबन्ध तो कारक नहीं, विशेषण है । शब्द तो अव्युत्पन्न तथा व्युत्पन्न दो तरह के होते हैं (रूढ़ी और यौगिक को ही ये दिखाते हैं) नाम (संज्ञा) के चार भाग दिखाये गये हैं (1) संज्ञा नाम (2) सामान्यनाम (3) समूहनाम और (4) मेयनाम (यह विभाजन अंग्रेज़ी-पद्धति के अनुसार है) तद्धितनामों को संज्ञानामों में रखा गया है । भावनाम : गुण को दिखाते हैं : माधुर्य । क्रियानाम : क्रियाओं से बनाये हुए नाम : उयर्च्च वरवु ।

सर्वनाम : (1) पुरुषार्थक : ञान (मैं) नी (तू) (2) निर्देशक : अवन्, इवळ्, अतु । (3) प्रश्नार्थक : एवन्। अ, इ, उ को चुट्टेळुत्त, कहते हैं । इन में 'उ' का प्रयोग मलयाळं में नहीं । पुल्लिंग प्रत्यय : अन्, आन् स्त्रीलिंग : अळ्, आळ्, इ, ति, अ विशेषणों में लिंग प्रत्यय जोड़ने की प्रथा प्राचीन काल में थी, पर अब मलयाळं में कम है । वचन : कळ्

सभी लिंगों में प्रयुक्त करते और अर्, मार सुबुद्धि पुल्लिंग नामों से : आकुलम्, सखिम्, अवर्, मंद्रातिरिमार । दो वचन प्रत्यय मिलाकर : अवारकम् का प्रयोग होता है । अर् आदर सूचक बहुवचन भी होता । तोल या परिमाण नामों में बहुवचन प्रत्यय नहीं मिलते । विशेषणों से भी बहुवचन प्रत्यय न मिलते, पर सामान्य नामों के विशेषणों में बहुवचन प्रत्यय मिलते : अळ्कुकम् ।

कारक : प्रथमा - विशेष प्रत्यय नहीं

संबोधन - ए, आ, ए

द्वितीया - आल ए

तृतीया - आल

चतुर्थी - कुन्नु

पंचमि - ओट्, ओट्, निन्नु

षष्ठी - उटे, टे

सप्तमी - इल, कल

सभी संज्ञाओं से न मिलनेवाले तथा कुछ विशेष अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले विभक्त्याभास होते है । सप्तमी, षष्ठि तथा चतुर्थी में ये आते है । अकत्तु (स० विभक्त्याभास) आट्टिन्पाल (क०क्रिआ) नाट्टिलेवु (च.वि.आ)

गति : सहायक शब्दों को विभक्तियों के साथ मिलाकर प्रयुक्त करते । ये नाम या कृति से बनते है । कार्यं अवन् कार्यं, पाट्टि रामने पाट्टि आदि ।

धात्वधिकार : शब्दों के प्रकृति - प्रत्यय अलग अलग करके जो अविभाज्य हो जाते उसे धातु कहते है । धातु का अर्थ होता है, पर यह प्रयोग से ही समझ में आता है । अटिट अटि उण्टायि (वहाँ प्रहार हुआ) यहाँ 'अटि' का अर्थ है प्रहार, 'अवने अटि' यहाँ प्रहार करने का हुक्म है । धातुएँ द्रव्य, गुण क्रिया को दिखाती है । भाषा का मूलतत्व धातु है । धातुओं के रूपविकार को वर्ग विकरण कहते है ।

क्रियालक्षण : आख्यात के रूप में प्रयुक्त करने योग्य शब्दों को क्रिया कहते है । इन शब्दों में व्यापार तथा काल दिखाने की शक्ति होती है । यह काल, लिंग, वचन, पुरुष आदि का अर्थ

दिखाती है । व्यापार के समय दिखानेवाले रूप को काल कहते है । 'उन्नु' जोड़कर वर्तमानकाल व, तु मिलाकर भूतकाल और 'उ' जोड़कर भविष्य बनाये जाते है ।

पुरुषप्रकरण : पुरुष उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष और अन्यपुरुष तीन होते है । कर्ता के अनुसार क्रिया में लिंग और वचन का प्रयोग होता है :

		वर्तमानकाल	भूतकाल	भविष्य
उत्तमपुरुष	एकवचन	कोट्टुक्कुन्नेन(देता हूँ)	कोट्टुत्तेन	कोट्टुप्पेन
	बहुवचन	कोट्टुक्कुन्नों	कोट्टुत्तों	कोट्टुप्पों
मध्यमपुरुष	एकवचन	कोट्टुक्कुन्नाय	कोट्टुत्ताय	कोट्टुक्कुवाय
		कोट्टुक्कुन्नीर	कोट्टुत्तीर	कोट्टुक्कुवीर

अन्यपुरुष का प्रत्यय अन् अ + अन् अवन् 'अवन पोकुन्नवन' इसमें पुनरुक्ति दोष होने से उसे छोड़ दिया । उत्तमपुरुष ान् पूर्व रूप एन से आया है । एड्-ड-ड् बहुवचन, नों का ओं बहुवचन प्रत्यय हो गया । नी मध्यमपुरुष एकवचन, उसका बहुवचन 'नीर' स्त्रीलिंग प्रत्यय 'आळ' । भविष्य एकवचन पुल्लिंग को अन्, ओन और स्त्रीलिंग को 'आळ' प्रत्यय होते है । भविष्य बहुवचन में अर, आर और ओर प्रत्यय होते। नपुंसक को प्रत्यय नहीं है ।

अपूर्ण क्रिया प्रकरण : किसी अपूर्ण क्रिया को नाम से अर्थपूर्ति आती उसे शब्दन्यून कहते है । मलयालं में इसे पेरेच्चं कहते है । पोकुन्नु पोकुन्न, एकारान्त शब्दों में 'य' आता है : पाटि पाटिय । क्रियापुरुषनाम : शब्दन्यूनों से निर्देशक सर्वनाम जोड़कर क्रिया पुरुष संज्ञा बनायी जाती है : चेय्युन्नवन (वर्तमान) चेय्तवन् (भूत) चेय्युमवन (भविष्य) । अन्य क्रिया से अपूर्ण क्रिया का अर्थ पूर्ण करनेवाली क्रिया को क्रियान्यून कहते है । वह विनयेच्चं होता है : पाटिक्काकिन्नु, चेय्तुपरयुं । आखि - इ लुप्त होकर आक्कोचि, पोक्कोचि । दूसरे भविष्य में 'आन्' प्रत्यय आता है । पोक + आन् पोकान् । कलक्रियाओं का 'क्कु' प्पु होता है : इरिक्क + आन् इरिप्पान । क्रिया नामों से 'गति' भी जुड़ती है । यथा नित्य स्तुत्यूय आदि । बहुत से भाव रूप अब केवल क्रिया विशेषण अव्यय बने हुए है : आके, ओक्के, एन्ना ।

कृदंत प्रकरण : धातुओं से संज्ञाओं को बनाने के प्रत्ययों को 'कृत् प्रत्यय' कहते है : ये प्रत्यय मिलकर बननेवाले शब्दों को कृदन्त कहते है । अं अकलं(दूरी) अयु कक्कुं (चोरी),

तन - तम नटत्तम् (चाल) , म ओर्म (याद) , प्पं अटुप्पं (सामीप्य) । कर्ता आदि अर्थों को दिखाने अन्, न आदि प्रत्यय जोड़ते हैं : कळ्ळन (चोर) । संस्कृत लकारों का पूरा विवरण दिया गया है ।

तद्धित प्रकरण : पदनिर्माण केलिए प्रातिपदिकों से जोड़नेवाले प्रत्ययों को तद्धित कहते हैं । तन्, तरं, त्तं, म ये ~~इन प्रत्ययों को लेखक ने~~ तन्मात्र प्रत्यय होते हैं : कळकत्तं, वचकत्तं । अन 'अनुकूल' इस अर्थ को दिखानेवाला 'तद्धित्' होता है : आळन, आळि, कारन, आदि शब्दस् होते हैं : मलयाळन, मलयाळि, मुतलाळि आदि (मलयाळं भाषाभाषी, धनी)

संख्याएँ और संख्यातद्धित : अचेतन वस्तुओं के नामों से संख्या शब्द जुड़नेपर बहुवचन प्रत्यय नहीं आता : परन्तु पत्तुकोल्लं(दस साल), आरु उरुप्पिका(छः रुपया) । संख्याओं के भिन्नों को भी दिखाया गया है : अरा $\frac{1}{2}$, काल $\frac{1}{4}$ आदि । 4 $\frac{3}{4}$ को नालुमुक्काल ऐसे पूर्ण संख्याओं के साथ भिन्न जोड़ते हैं । संख्याओं से आए हुए तद्धितनामों को संख्यानाम कहते हैं : ओरुवन, इरुवर (दो आदमी) , ओरुत्ति(एक ~~आदमी~~ औरत) बहुवचन केलिए 'पेर' जोड़ते हैं : पत्तुपेर । संख्याओं से 'आं' प्रत्यय जोड़कर बनानेवाले शब्दों को पूरणि कहते हैं , उन प्रत्ययों को पूरण कहते हैं । नालां, आरां आदि ।(चौथा, छठा आदि) । पूरणियों से अन्, तु प्रत्यय मिलाकर पूरणनाम बनाया जा सकता है - ओम्पामन, मून्नामतु । पूरणी में 'अत्ते' जोड़कर विशेषण बनाया जा सकता है - ओम्पामत्ते, रण्टामत्ते आदि ।

पूरणि विशेषणों से अन् , अळ् , अतु लिंग प्रत्यय जोड़कर ~~जोड़कर~~ ओम्पामत्तेवन , मून्नामत्तेतु आदि नाम बना सकते हैं । संख्या तथा परिमाण के अनिश्चित रूप दिखाने केलिए एल्लावरुं (सब के सब), मिक्कवरुं (अधिक से अधिक) आदि का प्रयोग होता है ।

समास : निकट संबन्ध के शब्दों को एक साथ मिलाकर एक शब्द बनाने की प्रवृत्ति को समास कहते हैं । समास के शब्दों को 'घटक शब्द' कहते हैं और घटक शब्दों के संबन्ध बतानेवाले वाक्य को विग्रह कहते हैं । पूर्वपद के अन्त्य प्रत्यय लुप्त होनेवाले 'लुक्' और न लुप्त होनेवाले को अलुक् समास कहते हैं । समास चार हैं (1) तत्पुरुष (2) द्वन्द्व (3) बहुव्रीहि (4) अव्ययीभाव । कर्मधारय और द्विगु तत्पुरुष का ही रूप होता है ।

1. तत्पुरुष : उत्तरपदार्थ प्रधान : वाकप्पू(केले का फूल), पुलित्तोल (बाघ-चर्म)
2. कर्मधारय : पूर्वपदविशेषण जैसे : चेन्तामरा(लाल कमल), वेण्चामरं (श्वेत चामर) ।
3. नित्यसमास : कुछ समास ऐसे रहते हैं कि उनके शब्दों से अर्थ साफ नहीं दिखायी पड़ता ऐसे समासों को नित्य समास कहते हैं :- आट्टुवञ्चि(नदी की नाव) , मूटुपटं (पर्दा) ।

4. रूपक समास : एकता का आरोपण करके दो नामों को समासित करना : संसारसागर ।

5. उपमितसमास : पूर्व शब्द को उत्तर शब्द से उपमित करना : पार्थिवेन्द्रन, मुनिपुंगवन ।

6. द्विगु समास : संख्या पूर्व कर्मधारय ही है यह । यह नित्य समास होता है । कभी-कभी संख्या उत्तरपद का विशेषण होता : एळुलोकं (सात दुनियाएँ), सप्तस्वरं ।

7. बहुव्रीहि : समानाधिकरण के दो शब्दों को समासित करके एक अन्य शब्द को दिखानेवाला सामासिक । व्यधिकरण में भी बहुव्रीहि आता है : आयुधपाणि, पद्मनाभन् आदि ।

8. मध्यमशब्द लोपि : मध्यम शब्दों को छोड़नेवाला : मरत्तोणि, नेय्य कृमन ।

9. द्वन्द्व समास : 'उं' निपात को जोड़कर समासित करनेवाला : कैकालुकळ, अच्छनम्मार ।

10. अव्ययीभाव समास : नामों को समासित करके क्रिया विशेषण करनेवाला : भक्तिपूर्वं ।

11. नञ् समास : न के बाद हलादि शब्द के आनेपर 'न' 'अ' बनता है : न भयं अभ स्वरादि हो तो 'अन' आता : अ संदेहं अनिश्चितं ।

12. बहुनदीकं रामलक्ष्मणन्मार आदि में लिंग समास होते हैं ।

13. क्रिया और संज्ञा के समास को क्रिया समास कहते हैं : भयप्पेट्टुक(डर जाना), वधितेय्युव (मारगिरा) ।

वाच्य : वाच्य दो है : कर्तरि प्रयोग और कर्मणि प्रयोग । मलयालम में कर्मणि प्रयोग कम है 'पेट' जोड़कर कर्मणि प्रयोग करते है : कुट्टिकळ् सत्यं पर्युन्नु कुट्टिकळ सत्यं पर्यप्पेटुन्नु । कर्म - कर्तृ क्रियाओं का वर्णन किया गया है : पात्रं उटञ्ञु (बर्तन टूटा) रामन पात्रं उटच्चु (राम ने बर्तन तोड़ दिया) ।

प्रकार : (1) निर्देशक, (2) नियोजक, (3) विधायक, (4) अनुज्ञायक चार प्रकार होते है ।

उपवद : नामों तथा क्रियाओं में अर्थ-विशेष केलिए सहायक क्रियाएँ जोड़ती है : अवन् पोयक्कळ्ञ्ञु उपवद, भेदक, पूरण, काल तीन तरह के होते है : कोटुत्तुकळ्ञ्ञु, उण्टाकणं, वन्निट्टुण्टु (दे देता, होना चाहिए, आया है)

भेदक : इसमें नामविशेषण तथा क्रिया विशेषण आते है । संस्कृत के अनुसार विशेषण तथा विशेष्य शब्दों का प्रयोग किया है । नामविशेषण, धातुज, सार्वनामिक, संख्यावाचक, पारिमाणिक

गुणवाचक, कृत्रिम होती है । क्रियाविशेषण, काल, स्थान रीति, परिमाण, तुलना, साम्य, संख्या, विशेषण और कारण होती है । भेदक विशेषण । इन सब केलिए बहुत से उदाहरण दिये गये हैं

अव्यय : किसी शब्द को सुननेपर उसका चित्र हमारे मन में आता है, ऐसे शब्द वाचक हैं और जिनका रूप मन में नहीं आता उन्हें द्योतक कहते हैं । अव्यय वे द्योतक हैं जो वाचक शब्दों से छिपाए हुए हैं । उं, ओ, ए आदि निपात होते हैं । अव्यय जो शब्दों या वाक्यों को जोड़ते वे घटक होते हैं ।

वाक्यकाण्ड

इसे आकांक्षाकाण्ड भी कहते हैं । वाक्य में योग्यता आकांक्षा और आसक्ति दोनों चाहिए । विभक्ति के अर्थ साफ दिखाने केलिए कारकों का विवरण संस्कृत तथा मलयाळं वाक्यों को दिखाकर दिया गया है ।

शब्द परिचय तथा वाक्य विग्रह के नियम बताये गये हैं । विरामचिह्नों की सूची भी दी गई है । मलयाळं में स्वकि, अन्यस्वार तथा बाह्य तीन तरह के शब्द होते हैं । बाह्य में भारतीय तथा विदेशीय दोनों आते हैं । विदेशीय शब्द अरबी, फ़ारसी, ग्रीक, पोर्तुगीज तथा अंग्रेज़ी के होते हैं । सम्भव शब्दों की एक सूची भी है । अन्त में भाषा की उत्पत्ति के बारे में भी कुछ सिद्धान्तों को दिखाया है ।

समीक्षा : ऊपर के संक्षेप से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रभु ने अपने समय तक के सभी व्याकरण ग्रन्थों को देखा है अध्ययन किया है और विचार विमर्श किया है । देशी तथा यूरोपीय वैयाकरणों के सिद्धान्तों का मण्डन किया है और कहीं कहीं खण्डन करके स्वसिद्धान्त स्थापित किया है । उन्होंने अपनी कृति में संस्कृत तथा मलयाळं दोनों के सिद्धान्तों को समन्वित किया है । उनकी राय है कि मलयाळं में संस्कृत शब्दों के बहुतायत प्रयोग होने से संस्कृत व्याकरणिक सिद्धान्तों का ज्ञान मलयाळी को अवश्य होना चाहिए । इसी कारण सन्धि, समास, वाक्यरचना, शब्दोत्पत्ति आदि भागों में संस्कृत सिद्धान्त तथा उदाहरण दिये गये हैं ।

मलयाळं में क्रिया के पुरुष लिंग वचन के लोप के बारे में उन्होंने जो कारण बताया वह बिलकुल सच मालूम पड़ता । उनका कहना है कि अवनें वन्नान, अवळ् वन्नाळ् आदि प्रयोगों में पुनरुक्तिदोष होता है । अन् अळ् आदि लिंग प्रत्यय कर्ता तथा क्रिया दोनों में दिखाने की क्या

आवश्यकता है ? इसी नीति पर मलयाळम में लिंग वचन प्रत्ययों को छोड़ दिया, यह कथन नीतियुक्त तथा विश्वसनीय होता है ।

कारक तथा विभक्ति के संबन्ध में कई भाषाओं में जटिलता देखी जाती है । लेखक ने इन जटिलताओं को हल करके सरल बनाने की कोशिश की है । पर इसमें वे कहाँ तक सफल हुए यह विचारणीय है । उन्होंने संस्कृत तथा तमिष् पद्धतियों को स्वीकार किया पर स्थान स्थान पर ऐसा दीख पड़ता है कि वे संस्कृत पक्षपाती हो गए हैं । उदाहरणों में भी संस्कृत के अभिनिवेश अधिक होने से पाठक ऊब उठते हैं । वाक्य रचना में उन्होंने अंग्रेजी पद्धति को स्वीकार किया है जो भी हो लेखक की प्रवृत्ति सर्वथा प्रशंसनीय होती है । भविष्य के मलयाळ व्याकरण केलिए यह मार्गदर्शक ही नहीं सहायक भी रहेगी । प्रभुजी ने एक असाध्य महान्कार्य किया है ।

केरलपाणिनीयं : ए.आर. राजराजवर्मा :

यह मलयाळम का प्रामाणिक व्याकरण ग्रन्थ है । व्याकरणमित्रम का प्रकाशन इसके बाद हुआ तो भी केरळपाणिनीयं सर्वोत्कृष्ट स्थान में प्रतिष्ठित हुआ है । इसका प्रकाशन 1896 में हुआ, परिशोधित तथा परिवर्धित संस्करण 1917 में हुआ । श्री. राजराजवर्मा महापंडित केरलवर्मा के भतीजे तथा प्रिय - शिष्य थे । श्री केरलवर्मा आधुनिक मलयाळम के युगप्रवर्तक माने जाते हैं । राजराजवर्मा कई भाषाओं के प्रकांड पंडित थे । वे तिरुवनन्तपुरं महाराजास कालेज के संस्कृत तथा द्राविडभाषाओं के प्राध्यापक तथा संस्कृत कालेज के प्रधानाचार्य आदि गौरवपूर्ण स्थानों में विराजमान रहे थे । विद्यार्थियों को पढ़ाने केलिए समय समय पर बनी हुए रेखाओं के आधार पर उन्होंने इस महाग्रन्थ की रचना की । प्राथमिक, माध्यमिक तथा हाईस्कूल के विद्यार्थियों केलिए प्राथमिक व्याकरण, माध्यमिक व्याकरण तथा शब्दशोधिनी का प्रणयन भी उन्होंने किया । उनके लिखे हुए अलंकार ग्रन्थ 'भाषाभूषण' वृत्तशास्त्रग्रन्थ 'वृत्तमंजरी' और गद्यशैली का मार्गदर्शक 'साहित्यसाह्यं' प्रतिष्ठा पा चुके हैं । मणिदीपिका नामक एक संस्कृत व्याकरण भी उन्होंने लिखा ।

केरळपाणिनीयं के चार काण्ड होते हैं : (1) शिक्षा काण्ड (2) परिनिष्ठा काण्ड (3) आकांक्षा काण्ड और (4) निरुक्तिकाण्ड । सिद्धान्तों को कारिकाओं में दिखाया है ।

उन्होंने सूत्र - वृत्ति - भाष्य रीति को स्वीकार किया[1] है । पीठिका में भाषा पर प्रकाश डाला है । जैसे केरल और उसकी भाषा, भाषा का कालविभाजन, वर्णमाला, शब्द परिवर्तन आदि

प्राक्केरल : ऐतिहासिक रूपरेखा : पहले देशनाम था मलयाळं । भाषा का नाम मलयाण्मा था । आगे चलकर देशनाम भाषानाम बन गया । यह देश मलैनाड, केरल, भार्गव - क्षेत्र, मलिबार, मलबार, दिमिलिक आदि कई नामों से प्रसिद्ध है । तमिल रचनाओं में इस देश को 'चेरनाड' बताया गया है । इस भाग में (1) वेणाड, (2) पूळिनाड, (3) कर्कनाड (4) कितनाड (5) कुट्टनाड (6) कुटनाड (6) मलयमनाड ये सात देश थे । इनमें कई नाम अब भी प्रचलित है । परशुराम की कहानी में भी सप्तकोंकण का उद्धार बताया है । वे शायद ये ही हो । भूगर्भशास्त्रियों का मत है कि केरल समुद्र से ऊपर आया हुआ भू भाग है । अवान्तर प्रलय तथा मत्स्यावतार की कहानी इसे दिखाती होगी । सिन्धु समतल से आर्य दक्षिण भारत विशेषकर केरल में आये होंगे । संस्कृत के उच्चारण में केरलियों की कुछ विशेषताएँ देखी जाती है : सह्राह्न्या सह्याज्ञ्या, वषट्, वषळ आदि । पहले आये हुए आर्य द्राविडों के आचार स्वीकार किये होंगे । पीछे आए हुए आर्य इन्हें भ्रष्ट समझे और अलग रखे । शायद वे ही वेदाधिकार न होनेवाले नम्बूतिरि - वर्ग होंगे ।

भाषा : केरल के आदिवासी तमिळर होंगे । साहित्यिक भाषा चेंतमिळ हो गई । बोलचाल की भाषा तो कोडुंतमिळ रही । मलयाळं कोडुंतमिळ का विकसित रूप है । आर्यों के आने पर संस्कृत शब्द मलयाळं में प्रविष्ट हुए पर भाषारूप तमिळ के अनुसार ही रहा । तमिळ द्राविड परिवार की एक भाषा है । इस परिवार में तेरह भाषाएँ होती है । तमिळ - मलयाळं एक ही भाषा का रूपान्तर है । तमिळ कन्नड निकट संबन्धी है ।

आर्यों की संख्या अधिक हो जाने पर संस्कृत भाषा का प्रभाव मलयाळं में अधिक पड़ने लगा । क्रमशः संस्कृत के कारक, क्रिया तथा अव्यय शब्दों को लेकर 'मणिप्रवाळं' नाम की नयी भाषारीति का आविर्भाव हुआ । साहित्य में इसका बड़ा प्रभाव पड़ा ।

---

1. सूत्र 92 : 'सर्वनामस्तिनु मकनु अनक्कनु' सर्वनामों में अन्, अळ् और तु लिंग प्रत्यय होते है । अवन्, अवळ्, अतु : मकन (अन) पुल्लिंग मकळ (स्त्री)

द्राविड तथा संस्कृत : संस्कृत के संपर्क से मलयाळं में कोई अन्तरंग परिवर्तन न हुआ। इसे दिखाने केसिक लेखक ने संस्कृत शब्दों की तुलना करके तमिळ, मलयाळं, कन्नड, तेलुगु तथा तुळु के कई शब्द दिखाए है। व्याकरण की विशेषता दिखाके लेखक लिखते '(1) संस्कृत में सात कारक, तीन वचन तथा कई प्रत्यय होते है। द्राविड भाषाएं सीधी - सादी होती, द्राविड में निर्देशिका का कोई प्रत्यय नहीं होता, वचन दो ही होते है, प्रत्यय अलग होने से वचनों में विभक्ति प्रत्यय अलग रखने की आवश्यकता नहीं। विभक्ति का संबन्ध दिखाने 'गति' होती है। (2) द्राविड भाषाओं में आत्मनेपद, परस्मैपद, कर्तरि, कर्मणि भावे प्रयोग नहीं है। क्रियाओं का काल भी सीमित है। निषेध, समुच्चय और विकल्प का प्रयोग भिन्न है। पर द्राविडभाषाओं में क्रिया के साथ लिंग वचन प्रत्यय मिलाना है।

(3) व्याक्षेपक सर्वनाम द्राविडभाषाओं में नहीं। उसका काम कृदंत करता है। द्राविड में अलिंग बहुवचन होता, अचेतन वस्तुओं में लिंग तथा बहुवचन प्रत्यय नहीं जोड जाता।

(4) संस्कृत भाषा के महाप्राण तथा ऊष्मा द्राविड भाषाओं में नहीं है। द्राविड के ழ, ற, ன संस्कृत में नहीं।

(5) द्राविड भाषाओं में विशेषणों के साथ लिंग, वचन तथा कारक प्रत्यय नहीं जोडे जाते। संस्कृत में ये प्रत्यय होते है।

(6) द्राविड भाषाएं जीवित है, संस्कृत मृतभाषा है।

(7) उदात्तस्वर द्राविडभाषाओं में नहीं।

(8) टिप्पणी में भाषाओं का विभाजक दिखाया है :[1]

(1) प्राकृत कक्षा (शैशव) चीन की भाषा।

(2) संश्लिष्ट कक्षा (लडकपन) तमिळ, मलयाळं।

(3) वैकृत कक्षा (यौवन) संस्कृत।

(4) अपग्रथित कक्षा (बुढापा) अंग्रेजी।

---

1. केरळपाणिनीयं पीठिका पृ. 13

लेखक कहते है कि मलयाळं कौमारदशा से यौवन में प्रवेश करती है । स्वामित्व दिखानेवाला 'उटय' एक स्वतन्त्र शब्द था । अब संबन्ध विभक्ति प्रत्यय टै या उटै हो गया, ऐसे ही येल् शब्द से 'अर्थ' प्रत्यय हो गया । चलिल् निन्नु से पंचमि प्रत्यय 'इन्नु' हो गया ।
तमिष और मलयाळं : मलयाळं कोटुंतमिष का रूपान्तर है । एक ही भाषा प्रदेश भेद से उच्चारण तथा अर्थ में भेदभाव ले लेती है । दक्षिण भारत कई देशों में विभाजित थे

तेनपाण्डि, कुट्टं, कुटं, कर्का, वेणपूषि
पन्दियरुवा वतन् वटक्कुन्नाय
सीतं मलनाट् पुनाट् चैंतमिषु से -
रेतमिल पन्निरु नाट्टेन [1]

इनमें कुट्टम्, कुटं, कार्का, वेण्, पूषि पांच केरल में थे । मधुरा में चेंतमिष प्रचलित थी । उसके चारों ओर कोटुंतमिषु के प्रदेश थे । राष्ट्रीय तथा भौगोलिक भिन्नताओं के कारण भाषा भी भिन्न हो गई। लेखक तमिष और मलयाळं के प्रधान भेद दिखाते है (1) अनुनासिकातिप्रसर (2) तवर्गविमर्द (3) स्वरसंवर्ण (4) पुरुषभेदनिरास (5) विलोपसंग्रह और (6) अंगभंग ।

अनुनासिकातिप्रसर : निङ्कळ् (तुम) ङक ङ्ङ, न्त न्न, म्प म्म ।

तवर्गविमर्द : 'त' वर्ग को 'च' वर्ग आदेश के रूप में आता : त च, न्त ञ्च न ञ, न्न ञ्ञ ।

स्वरसंवर्ण संवृत उकार को विवृत उकार, ऐ अ और अ, ए और इ - उ में बदलते : कट्टु कट्ट, मये मया, पुरावु पिरावु ।

पुरुष प्रत्यय तमिषु में वन्तान् मलयाळं वन्नु ।

विलोप एक समय पर प्रयुक्त शब्द कालान्तर में अप्रयुक्त होते है । इन शब्दों में

---

1. दक्षिण में बारह देश थे । केरळपाणिनीय पीठिका पृ.14 अर्थ : तेन, पाण्डि, कुट्टम, कुटं, कर्का, वेन, पूषि, पनाडियरुवा, वतन, सीतं, मलनाड, पुननाड इन बारह देशों में प्रचलित भाषा कोटुंतमिषु थी ।

प्रकृति - प्रत्ययों को बिना जोड़े प्रयुक्त किये जाते : जैसे उ' तमिष भविष्य प्रत्यय को मलयाळं में 'ऊ' बनाकर प्रयोग किये जाते : वरुं वरू ।

अंगभंग : द्राविड़ में प्रचलित प्रकृति - प्रत्यय सुविधा के लिए मलयाळं में अक्षरों का लोप करके प्रयुक्त किये जाते : प्रयोजिका का 'क्कु' तथा संबन्धिका का 'टै' इस तरह के हैं । लेखक ने केरलभाषा के विकास को तीन कालों में विभाजित किया है ।

1.	बाल्यकाल	कोडुन्तमिष्काल	आदिकाल	ई.825 से 1325 तक
2.	कौमारकाल	मलयाण्माकाल	मध्यकाल	1325 से 1575
3.	यौवन काल	मलयाळकाल	आधुनिककाल	1575 से - - -

बाल्यकाल तमिषु के अधीन में रहा । कई गीत तथा रामचरित इस काल की रचनाएँ हैं । मध्यकाल में संस्कृत संपर्क हुआ : कण्णशरामायण इस काल की रचना है, वटक्कनपाट्टुकळ भी इस काल की रचना है । यौवन में मणिप्रवाळं की कई रचनाएँ हुईं । मलयाळं (शुद्ध मलयाळं) में भी कई रचनाएँ हुईं । दो धाराओं की कृतियाँ इस काल में हुईं । गद्यशैली का भी आरंभ हुआ ।

अक्षरमाला : मलयाळं अक्षरमाला में 16 स्वर और 37 व्यंजन हैं । ळ, ष और ऱ द्राविड मध्यम हैं और ऩ द्राविडानुनासिक । व्यंजनों में 'अ' लगाकर उच्चारण करते हैं । 'अ' को छोड़कर उच्चारण करने का चिह्न अर्द्ध चन्द्राकार है । उच्चारण की वर्ण कहते और उसे दिखाने के चिह्न को लिपि कहते हैं । भारतीय भाषाओं में अक्षरमाला लिखी जाती, यूरोपीय भाषाओं में वर्ण - माला । तमिष में व्कार नहीं इसलिए अतिखर तथा घोष नहीं । मृदु (ग, ज, ड, द, ब) के लिए विशेष लिपि नहीं, पर ध्वनि है संस्कृत में न होनेवाले ऱ, ष, ळ, ऱ्र और ऩ मलयाळं में हैं । ऋ और ऌ द्राविड़ में नहीं ।

वर्णविकार : अकार शुद्ध, तालव्य तथा ओष्ठ्य तीन तरह के होते हैं । तालव्य तथा ओष्ठ्य अकार ~~शुद्ध, तालव्य तथा ओष्ठ्य~~ के साथ य और व जुड़ जाते हैं : का कार्य पू पूर्व । 'ह' कहीं कहीं 'ए' हो जाता है इला एला ।

सन्धि : पाणिनि के अनुसार लेखक ने पदमध्यसन्धि, पदान्त सन्धि और उभयसन्धि दिखायी है ।

पदमध्यसन्धि	मरं + इल	मरात्तिल (पेड़ में)
पदान्त सन्धि	पोन् + पू	पोत्पू (सोने का फूल)
उभयसन्धि	मणि + अ्या + इल्	मणियियाविल् (सुन्दर कमरे में)

वर्णों के आधार पर स्वर के साथ स्वर मिलाने पर स्वरसन्धि, स्वर के साथ व्यंजन मिलाने पर स्वरव्यंजनसन्धि, व्यंजन स्वर से मिलानेपर व्यंजनस्वरसन्धि और व्यंजन व्यंजनों से मिलाने पर व्यंजन सन्धि होती है ।

स्वरसन्धि	मय + अक्ला	मयक्कला (वर्षा नहीं)
स्वरव्यंजनसन्धि	तामर + पूर्व	तामरप्पूर्व (कमल - सर)
व्यंजनस्वरसन्धि	कन् + इल्ला	कण्णिल्ला (आंख नहीं)
व्यंजन सन्धि	नेल् + मणि	नेन्मणि (धान का दाना)

सन्धि में वर्णों का जो विकार होता है उसके अनुसार लोप, आगम, आदेश तथा द्वित्व होते है ।

एक वर्ण का लोप, लोपसन्धि, एक नयेवर्ण का आना आगम सन्धि, एक के स्थान पर दूसरे वर्ण का आना आदेश तथा वर्ण का द्वित्व, द्वित्वसन्धि होती है ।

लोपसन्धि	अर्त + इल्ला	अतिल्ला (वह नहीं)
आगम	मय + इल्ला	मयविल्ला (वर्षा नहीं)
आदेश	स्न् + नूरु	स्न्नूरु (आठ सौ)
द्वित्व	अविटे + पोयि	अविटेप्पोयि (वहाँ गया)

इस तरह भिन्न उपाधियों में विभिन्न रूप बना सकते [1] । द्वित्व तथा आगम एक ही होती है ।

सन्धि का उद्देश्य उच्चारण की सुविधा है ।

शब्दविभाग :

किसी अर्थ को दिखानेवाले वर्णसमूह को शब्द कहते है । यही प्रकृति होती है । प्रयोग केलिए सज्जित शब्द को पद कहते है । पद, वाचक और द्योतक दो होते है । द्रव्य,

---

1. तोलकाप्पियं में सन्धियों का लंबा वर्णन है पृ 30 से 100 ।

क्रिया तथा गुण को संज्ञा कहते हैं। क्रियाओं को दिखानेवाले कृति होते हैं। भेदक गुणों को दिखाते हैं। द्योतक संबन्ध दिखाते हैं। द्योतक, अव्यय और निपात दो होते हैं। निपात ही सच्चे अर्थ में द्योतक होते हैं। शब्दों के प्रशित रूप अव्यय होते हैं। विभक्ति को दिखानेवाले द्योतक गति और वाक्यों को मिलानेवाले घटक होते हैं। वाक्यार्थ पर प्रकाश डालनेवाले द्योतक 'व्याक्षेपक' होते हैं।

गति - 'कोट्ट' (से) 'उट्टे) (का, के, की)

घटक - राम और कृष्ण रामनु कृष्णनु

व्याक्षेपक - ता, ही, उब्द, अब्बी आदि।

इन तीनों के अलावा जो द्योतक होते हैं उन्हें 'केवल' कहते हैं : ओ, सन्ने आदि। संज्ञा तथा क्रिया विकारी है। भेदक अविकारी है। भाषा में कृतियों की संख्या सबसे अधिक है, संज्ञा उसके बाद, फिर भेदक की संख्या, अव्यय उनसे कम, निपात तो तीन, चार ही होते हैं। संज्ञा, द्रव्यनाम, गुणनाम, और क्रिया नाम तीन तरह की होती हैं। द्रव्यनाम, संज्ञानाम, सामान्य-नाम, सर्वनाम और मेयनाम चार तरह के होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का नाम संज्ञा नाम, जाति का सामान्य नाम, सब का नाम सर्वनाम, और जाति व्यक्ति भेद न होनेवाले मेयनाम होते हैं : पानी, मिट्टी, सोना आदि।

सर्वनाम :

1. एन - उत्तमपुरुष
2. निन् - मध्यमपुरुष
3. आ }
4. इ } विवेचक सर्वनाम
5. उ } (अन्य पुरुष)
6. औरु }
7. ए } व्याक्षेपक
8. या }
9. ए }
10. आर } चोद्य(प्रश्न) सर्वनाम
11. एम्तु }
12. चिला } नानार्थक सर्वनाम
13. पला }
14. एन्ना - निषेध ''
15. एल्ला - सर्वव्याप्ति ''
16. तन - स्वव्याप्ति ''
17. मिक्का - अंशव्याप्ति ''
18. मट्रु - अन्यार्थ ''
19. वल्ला - अनास्थाव्याप्ति ''

क्रियापद को वृत्ति कहते हैं। एकवस्तु एक स्थिति में रहती है, ऐसी क्रियाएँ अकर्मक होती है। एक कोई काम करता है, वहाँ कर्म है, इसलिए सकर्मक होती है।

दौड़ना - दौड़ाना, उठना - उठाना, देखना - दिखाना इस तरह क्रियाओं के दो रूप होते हैं। इसमें कर्ता बिना प्रेरणा के होनेवाला पहला रूप केवल तथा प्रेरणा से होने वाला दूसरा रूप प्रेरणार्थक होता है। कुछ क्रियाएँ अर्थ के अनुसार केवल और रूप के अनुसार प्रयोजक (प्रेरणार्थक) होती है। केवल प्रकृति में 'क्कु' होनेवाली कारित तथा अन्य अकारित होती है। केळ्क्कुन्नु (सुनता) कारित है, मुंगुन्नु (डोलता होता) अकारित है। अकारितों में 'क्कु' और कारितों पर 'प्पि' जोड़कर प्रेरणार्थक बना सकते है। जो वृत्तियाँ वाक्यों में प्रधान होकर स्वतन्त्र रूप में रहती है उन्हें करोति वृत्ति और अन्यों को कुर्वत् वृत्ति कहते हैं। अप्रधान वृत्तियों के दो भेद होते (1) क्रियांग और नामांग। इन्हें विनयेच्च और पेरेच्च कहते हैं।

अर्थभेद को दिखानेवाले शब्द 'भेदक' होते है। भेदक को विशेषण भी कहते है। ये नामविशेषण, क्रियाविशेषण तथा भेदकविशेषण तीन होते है। भेदक (1) शुद्ध (2) सार्वनामिक (3) सांख्य (4) विभावक (5) पारिमाणिक (6) नामांगज और (7) क्रियांगज होते हैं।

प्रकृति तथा प्रत्यय : प्रकृति में प्रत्यय मिलाकर पद बनाते हैं। कहीं कहीं प्रकृति और प्रत्यय जुड़ते समय बीच में 'अंग' आता है : मरत्तिन्टे - मरं प्रकृति न्टे प्रत्यय और 'त्त' घटनिखा 'मरत्तिल' अंग होता है। संज्ञाओं में लिंग, वचन विभक्ति प्रत्यय जुड़ते हैं। वृत्तियों में काल प्रत्यय आता हैं, निपात तथा भेदक के कोई प्रत्यय नहीं होता।

नामविचार : लिंग प्रकरण : मलयाळं में तीन लिंग होते है, पुल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग पुं स्त्री भेद न होनेवाले नपुंसकलिंग के होते हैं। मनुष्यों में ही पुं स्त्री भेद माना जाता है। जानवर, चिड़ियाँ, पेड़ - पौधे सब नपुंसक होते हैं। अकारान्त संज्ञाओं में ही लिंग प्रत्यय मिलाये जाते हैं। पुल्लिंग में 'अन्' स्त्रीलिंग में 'इ' और नपुंसक में 'अं' मिलाये जाते हैं। मलयाळं की लिंग व्यवस्था बिलकुल शास्त्रीय माना जा सकता। संस्कृत में यह व्यवस्था जटिल होती है। सर्वनामों में लिंग प्रत्यय 'अन्' 'अळ्' और 'तु' होते है क्रियाओं में अन् ,आन्,अळ् और आळ् जुड़ते है। पूजक बहुवचन में आन् और आळ् का प्रयोग होता है।

अत्ति अच्चि (तालव्यादेश है) आड् + टिट्ट आट्टि (मूर्धन्यादेश है)

वचन प्रकार : संस्कृत में तीन वचन होते है । पर द्राविडभाषाओं में दो ही वचन होते : एकवचन और बहुवचन । शब्दों का अपना रूप एकवचन होता है । बहुवचन तीन तरह के होते है : सलिंग बहुवचन, अलिंग बहुवचन और पूजक बहुवचन । सलिंग बहुवचन 'मार' और अलिंग बहुवचन 'अर्' जोडकर बनाते है । नपुंसक में कळ् आता है । अ,इ,ए सर्वनामों में 'अ' प्रत्यय जोडकर बहुवचन बनाते है : अ + अ अव, इ + अ इव, ए + अ एव । अर् और कळ् दोनों प्रत्ययों को जोडने पर 'अर्' का रेफ लुप्त हो जाता है : शिष्यर + कळ् शिष्यकळ् । कळ प्रत्यय के पूर्व ओष्ठ्य स्वर होता तो 'क' द्वित्व होता है : भ्राता + कळ् भ्रातक्कळ् ।

संख्या विशेषण के बाद नपुंसक शब्दों के साथ बहुवचन प्रत्यय नहीं जुडता ।

उत्तम पुरुष सर्वनाम की प्रकृति 'एन' है । यह दीर्घ होकर एन हुआ, फिर 'य' होकर यान हो गया । यान् नान् होकर मलयाळम में 'ञान्' का रूप प्रतिष्ठित हुआ । निर्देशिका में ही यह रूप होता, बाकी विभक्तियों में एन ही रहता है । मध्यमपुरुष 'नि' और स्वावाची 'तन्' निर्देशिका में दीर्घ होकर नी और तान हो गये । उद्देशिका में 'एन' 'तन' में 'इ' और निन में 'अ' जोडकर एन्निक्कु (मुझे), तनिक्कु (तुम्हें), निनक्कु (तुझे) की रूप निष्पत्ति हुई । बहुवचन में ञान् (मैं) ञनक्कळ् ञङ्ङळ् (हम) हो गया । प्राचीन रूप 'नाम्' से नाम् नीम का रूप प्रचलित हुआ । यह बहुवचन तथा पूजक बहुवचन दोनों में प्रयुक्त है । 'तम्मळ्' तीनों पुरुषों का क्रोडीकृत रूप है । स्वावाची 'तन्' तङ्ङळ्, तान्ङळ् आदि रूप भी ले लेता है । 'नी' का बहुवचन निङ्ङळ् भी प्रचलित है ।

अ, इ, उ और ए में अ, दूर का 'इ' निकट का उ बीच का तथा ए प्रश्न का चिह्न है । 'एन्तु' 'ए' का अनुनासिक रूप है, एन्तु (क्या) 'ए' का और आर् (कौन) पुं स्त्री अलिंग बहुवचन का रूप है । आर् का प्रयोग एकवचन में भी आता है । चिला(कुछ) पला(कई), वल्ला (कोई), एल्ला (सब) नपुंसक बहुवचन होते हैं । ओरु ओन्नु संख्यावाचक का रूप भेद है । मट्रु (दूसरा), मिक्का(सब के सब) आदि भी सर्वनाम होते है ।

तमिल में क्रियाओं से लिंग वचन प्रत्यय मिलाने की प्रथा है । मलयाळम में वह नहीं । तमिल में इस सिद्धान्त की प्रतिष्ठा होने के पहले ही मलयाळम उससे अलग हो गयी होगी । अर्, मार् ये दो प्रत्यय पुं स्त्रीलिंग संज्ञाओं से बहुवचन सूचित करने को जोड़ते हैं । नपुंसक में 'अ' तथा कळ् प्रयुक्त होते । ये सभी द्राविड भाषाओं में प्रचलित है ।

विभक्तिप्रकरण : अन्य शब्दों का संबन्ध दिखाने केलिए संज्ञाओं में जोड़नेवाले प्रत्यय को विभक्तिप्रत्यय कहते है । मलयाळम के विभक्तियों का नाम, प्रत्यय आदि नीचे दिखाये जाते हैं।

	विभक्ति	कारक	प्रत्यय	उदाहरण
1.	निर्देशिका	कर्ता	प्रत्यय नहीं	रामन्
2.	प्रतिग्राहिका	कर्म	ए	रामने
3.	संयोजिका	साक्षि	ओटु	रामनोटु
4.	उद्देशिका	स्वामि	क्कु, उ	अवक्कु, अवनु
5.	प्रयोजिका	हेतु	आल्	भाग्यत्ताल
6.	संबन्धिका	स्वत्व	उटे	रामनुटे
7.	आधारिका	अधिकरण	इल्, कल्	मेसयिल्

स्वरान्त संज्ञाओं में 'इन' जोड़कर विभक्ति प्रत्यय मिलाया जाता है : राजाव + इन् + ए राजाविने, इन के बिना भी प्रयुक्त होते - राजावे (राजा को) 'इन्' का प्रयोग विकल्प होता आधारिका में 'इन्' नहीं जुड़ता : राजाविल् । उद्देशिका में 'इन' नित्य होता है : राजाविनु । 'अन्' के बाद 'इन्' नहीं आता । अवनु । टान्त तथा ऱान्त संज्ञाओं में 'इन्' जुड़ने पर ट या ऱ का द्वित्व होता है : तोट्टिल (नाले में) चोऱ्ऱिन्(भात में) । अन्यन्त संज्ञाओं की उद्देशिका में 'उ' और संबन्धिका में 'टे' प्रत्यय आते हैं । रचनाक्रम ऐसा होता है लिंग प्रत्यय के बाद वचन प्रत्यय फिर विभक्ति प्रत्यय जोड़े जाये । ऊपर की सात विभक्तियों के अलावा संबोधित करने का संबोधक भी होता है । नपुंसक संज्ञाओं में प्रतिग्राहिका प्रत्यय नहीं जोड़ा जाता क्यों कि उसके बिना ही अर्थ-सिद्धि होती है : मरं मुरिच्चु ।

लेखक विभक्ति प्रत्ययों की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हैं । प्रतिग्राहिका 'ए' कन्नड के अ से आया है । तेलगु के तोटु से मलयाळम में ओटु आया, 'क्कु' सभी द्राविड

भाषाओं में उद्देशिका विभक्ति प्रत्यय होता है। आल् गुंडर्ट के अनुसार वह 'आकुक' से आया है आकुक आवल् आल्। स्वामित्वाची शब्द 'उट' से उटे आया है। उसी से उल् तथा कल् से कल् हुए हैं। यहाँ तेलुगु में धार केलिए तथा कन्नड़ तमिल में स्थान केलिए प्रयुक्त है। संबोधिका की निर्देशिका का रूपान्तर समझ लेना है, स्वरान्त संज्ञाओं में दीर्घ जुड़कर वह बनाया जाता है। कहीं कहीं प्रत्ययों से विभक्ति नहीं दिखायी जा सकती। तोट्टु, वरे, कोण्टु, वेण्टि, मूलम्, निमित्तं आदि गतियों को जोड़ना पड़ता है, उन्हें समास विभक्ति कहते हैं।

विभक्त्याभास प्रकरण : विभक्तियों में और कई विकास देख सकते हैं। (1) खिल सभी संज्ञाओं से नहीं, कुछ ही संज्ञाओं से मिलनेवाली विभक्ति, (2) लुप्त : प्रत्ययों का लोप होता (3) द्वित्व : एक विभक्ति पर अन्य विभक्ति जुड़ जाना। आधारिका का कल् प्रत्यय कई संज्ञाओं में नहीं जुड़ता, बहुवचन में कभी नहीं आता, वह खिल है। 'अं' अन्त संज्ञाओं में अनुस्वार लुप्त होकर 'त्तु' जुड़ जाता है : कालत्तु (सबेरे) 'होनेवाले' के अर्थ में भी यह प्रत्यय आता : कार्य्यत्तु (रूप में) यह 'लुप्त' है। वेलत्तिल + ए + क्कु वेळ्ळत्तिलेक्कु : द्वित्व का उदाहरण है। मलयालम में एक ही शब्द प्रकृति भी हो प्रत्यय भी : उटय।

कारक : संज्ञा और वृत्ति का संबन्ध कारक है। क्रिया जिन वस्तुओं से होती है सब क्रिया के कारक होते हैं। क्रिया के दो भाग होते : व्यापार तथा फल। व्यापार करनेवाला कर्ता और फल भोगनेवाला कर्म होता है। जहाँ कहीं व्यापार और फल एक पर ही रहते, ऐसी क्रिया को अकर्मक कहते हैं। फल का प्रतिग्रहण करनेवाला कर्म होता है, इसी कारण से उस विभक्ति का नाम प्रतिग्राहिका हो गया है। क्रिया के निर्वहण केलिए कर्ता जिसकी सहायता ले लेता वह साक्षी है। वही कर्म का स्वामि होता। जिसके बारे में बोलते वह उद्देश्य है, उसे क्या होता है वह विधेय है। क्रिया का उपकरण कारण है। कर्मणि प्रयोग में कारण के अर्थ में प्रयोजिका आती है। मलयालम में कर्मणि प्रयोग परम्परागत नहीं। वह संस्कृत से आया है आधार ही अधिकरण कारक होता है। कई क्रियाएँ द्विकर्मक होती हैं। केवल क्रिया का कर्ता प्रयोजक प्रकृति में कर्म हो जाता है। अध्यापक शिष्यों को पुस्तक पढ़ाते हैं - इसमें पढ़ाने का फल शिष्य को मिलता है। उद्देशिका को स्वामि कारक होता : देश, दिक्, काल, संख्या आदि व्यवस्था भी इससे छोड़ी है। एक समूह के कुछ भाग अलग दिखाना प्रयोजिका या आधारिका का

काम है : रष्टात् औम्नं या रष्टिलोम्नं । तुलना में आधारिका आती है : अतिह् शतगुर्न (उसमें सौ गुना) । कारकों का संबन्ध विवक्षा के अधीन में होता है । भिन्न दृष्टि से देखने पर भिन्नता देखी जाती है ।

तद्धित प्रकरण : संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार संज्ञा तथा भेदकों से उत्पन्न शब्दों को तद्धित तथा धातुओं से उत्पन्न शब्दों को कृत् कहा जाता है । संस्कृत में कृत - तद्धित कई प्रकार के होते हैं । दशरथ का बेटा दाशरथि (तद्धित), दर्शन करनेवाला द्रष्टा(कृत) । भाषा में इनकी संख्या बहुत कम है । आवश्यकता के अनुसार संस्कृत से शब्दों को स्वीकार करते थे इसलिए संस्कृत के नियमों को स्वीकार करना पड़ता है । पाणिनि ने इसका विस्तृत रूप दिखाया है भाषा में आनेवाले कृत् - तद्धितों का विवरण दिया जाता । (1) तन्मात्रा प्रत्यय : सौन्दर्य भिन्न भिन्न अंगों का निश्चित स्तर से होता है । हर एक अंग की ठीक ठीक योजना से सौन्दर्य होता है । यह तन्मात्र होता : भेदक में तन्मात्र दिखाने केलिए 'मा' ' लगाते हैं, संज्ञाओं में 'त्तं' प्रत्यय आता है : पुतु पुतुमा (नयापन)मूढ मूढत्तं (मूर्खता) । संस्कृत में 'त्वं' का प्रयोग होता मृदु मृदुत्वं । (2) वह होनेवाले अर्थ में प्रयुक्त तद्धित 'तद्वत् तद्धित' है भटि भटिवन । इसमें लिंग प्रत्यय मिलाया जाता है । संख्या शब्दों में 'आम' प्रत्यय मिलाकर पूरणार्थक बनाते है ओम्नु ओम्नां । इन्हें पूरणि तद्धित कहते हैं । अ और इ सर्वनामों को देशार्थ में 'ट्टु' कालार्थ में 'प्पु' परिमाणार्थ में 'त्र' जोड़कर तद्धित बनाते है : अट्टु, अप्पु, अत्र आदि । प्राचीन मलयालम में 'त्र' के स्थान पर तिरा का प्रयोग होता था : अत्तिरा, इत्तिरा आदि । ऊन्नः (प्रकार) तमिल शब्दों में 'ए' लगाकर अङ्ङने, इङ्ङने, आदि रूप हो गये । पोतुतु का तु लुप्त होकर अप्पोळ्, इप्पोळ् आदि कालवाचक शब्द निकले हैं ।

धातुविकार प्रकरण : क्रिया की उपाधि दिखाने धातुओं के जो विकार कराए जाते उन्हें धातु के रूप कहते हैं । उपाधियाँ ये हैं : (1) प्रकृति (2) स्वभाव (3) काल (4) प्रकार (5) प्रयोग (6) पुरुष (7) लिंग तथा (8) वचन ।

प्रकृति : 'राजावु मन्त्रिकोण्टु राज्यं भरिप्पिक्कुन्नु' (राजा मन्त्री से राज कराता) इस वाक्य में राजा की ही प्रधानता होती है । राजा प्रयोजक कर्ता तथा मन्त्री प्रयोज्य कर्ता होता है ।

इस तरह धातुएं प्रयोजक तथा केवल प्रकृति की होती है । शासन करता शब्द भरिक्कुन्नु केवल प्रकृति और शासन कराता शब्द भरिप्पिक्कुन्नु प्रयोजक प्रकृति होती है ।

स्वभाव : स्वभाव से क्रियाएं (धातुएं) कारित और अकारित होती है । पाणिनि ने चुरादिगण मे ण्यन्त की जो धातुएं दिखायी है वे ही कारित होती है । योरोपियों ने इन्हें कमजोर क्रियाएं कही है ।

काल : जो हुआ वह भूत, हो जाता वह वर्तमान और जो होगा वह भविष्य, इस तरह काल तीन होते हैं । वर्तमान केलिए उन्नु, भूत केलिए 'इ' और भविष्य केलिए 'उं' प्रत्यय होते है जिलसुन्नु, जिलसि, जिलसुं तीन काल के उदाहरण है । स्वरान्त या चिल्लन्त धातु में भूतकाल केलि 'इ' के बदले 'तु' आता है : केळ् + तु केट्टु (सुना) , कारित धातुओं का 'तु' त्तु होगा और अकारित में न्नु । तालव्य अकारान्त धातुओं का 'त्तु' या 'न्नु' तवर्गोपमर्द से क्रमशः 'च्चु और 'ञ्ञु' होते । उकारान्त अकारितों में शुद्ध 'तु' आयगा : पोरु पोरुतु (लड़ा) कर(रोना) घु करञ्ञु, नट(चल) + न्नु नटन्नु(चला) । क, ट, टान्त पूर्व स्वर धातु का 'तु' लुप्त होकर द्वित्व होता और मूर्धन्यादेश से : इट् + तु इट्टु (रखा) , अरु अऱ्ऱु (कट गया) स्वरादि कारित धातुओं में काल प्रत्यय के पूर्व 'क्कु' जुड़ता : इरि + क्क + उन्नु इरिक्कुन्नु(बैठ इरिक्कुं । पर भूतकाल में इरि + न्नु इरिन्नु इरुन्नु । वाक्य सामान्यतः दो तरह के होते विधिमार्ग तथा निषेधमार्ग । मलयाळं में विधि और निषेध केलिए मलयाळं के आख्यातों का रूप भेद होता है । संस्कृत में न, मा आदि प्रयुक्त कर निषेध दिखाता है । बोलचाल की भाषा में वन्नु (आया) - वन्निल्ला (नही आया) आदि प्रयोग होते । पर प्राचीन साहित्यिक रूप में वाराञ्ञु, वरा, वरा आदि देख सकते । निषेध में 'क्कु' प्रत्यय विकल्प में आता है : केळाञ्ञु केळ्क्काञ्ञ पर अब संस्कृत के अनुसार वन्नु - वन्निल्ला, वरुं - वरिल्ला आदि प्रयोग ही चलता है ।

भविष्य केलिए 'उ' प्रत्यय भी होता है । आन्, पिन्, क्रियार्थ या 'एन' मध्यम पुरुष बहुवचन आदि रूपों में 'कु' के स्थान पर 'प्पुं' आता है । यही प्पुं कही व तथा म में बदल जाता है : नटक्कु नटप्पिन , चेय् चेय्वु , काम् काम्मु । सार्वकालिक कार्यों के दिखाने केलिए आर्यभाषाओं में वर्तमान काल का प्रयोग होता पर द्राविड भाषाओं में भविष्य का प्रयोग करत

इसलिए इसे रातिमावि भी कहते हैं । वर्षा में पानी बरसता है (आशीर्ति) वर्षा में पानी बरसेगा (द्राविड शैली) प्रार्थना, उपदेश आदि स्थानों में भविष्य का उं ऊ बनता है : पट्टु, वेयू आदि ।

मलयाळं में पुरुष प्रत्यय के बिना ही क्रिया का प्रयोग होता है । पर कविताओं में यह प्रत्यय कहीं कहीं देख सकते ।

प्रकार : क्रिया जिस अर्थ को दिखाती है उसे प्रकार कहते हैं । ये नियोजक, विधायक, अनुज्ञायक और निर्देशक चार प्रकार के होते हैं । निर्देशक क्रिया का साधारण प्रयोग है, नियोजक केलिए आट्टे, आलं, उ प्रत्यय होते । विधायक तथा अनुज्ञायक को अणं और अं प्रत्यय होते हैं । 'आवु' प्रत्यय प्रशंसा द्योतक होता है ।

प्रयोग :- धातु के प्रयोग में जिस कारक की प्रधानता होती उसके अनुसार कर्तरि प्रयोग, कर्मणि प्रयोग तथा कारणे प्रयोग (भावे प्रयोग) होते हैं । भावे प्रयोग मलयाळं में नहीं होता, कर्मणि प्रयोग भी साधारण नहीं है ।

प्रकृति :- धातुओं के केवल तथा प्रयोजक प्रकृतियाँ होती है । केवल में प, प्पि, त्तु जोड़कर प्रयोजक बनाये जाते है : कळिक्कुन्नु(खेलता) कळिप्पिक्कुन्नु(खिलाता), पणियुन्नु(करता) पणियि (कराता), इरिक्कुन्नु(बैठता) इरुत्तुन्नु(बिठाता) । अकारित को कारित बनाने से प्रयोजक बनते है : उटकुन्नु उटक्कुन्नु ।

नामधातु : 'इ' प्रत्यय मिलाकर संज्ञाओं को धातु बनाते हैं : वंपु वंपिक्कुन्नु(बड़ा होता) । स्वरान्त संज्ञाओं में 'इ' प्रत्यय मिलाने की आवश्यकता नहीं : तटि तटिक्कुन्नु (मोटा बनता), कारि कारिक्कुन्नु, पुक पुकक्कुन्नु । 'एट्' प्रत्यय मिलाकर : पणिप्पेडुन्नु ।

अनुप्रयोग : अन्य धातुओं की सहायता केलिए उनके साथ प्रयुक्त होनेवाली धातु को अनुप्रयोग कहते है । अनुप्रयोग तीन तरह के होते : भेदकानुप्रयोग, कालानुप्रयोग तथा पूरणानुप्रयोग । अर्थ की विशेषता दिखानेवाला भेदकानुप्रयोग काल को दिखानेवाला कालानुप्रयोग (~~तथा जिन धातुओं का प्रयोग काल को दिखानेवाला कालानुप्रयोग~~) तथा जिन धातुओं का प्रयोग पूरणानुप्रयोग होते हैं । मलयाळं में कोळ्, इ, कळ्, इरि, वरं आदि कई अनुप्रयोग होते हैं ।

निषेध : निषेध दिखाने केलिए 'अल्ला', 'इल्ला', 'आ' का प्रयोग करते । कहीं कहीं ओल्ला का प्रयोग भी चलता है । निषेधक और अनुज्ञापक में वथ्था, कूटा, अरुर्त, ओला इनमें यथोचित प्रत्यय मिलाया जाता है । चेय् हरि भादि में 'तु' नपुंसक प्रत्यय मिलाकर 'अ' जोड़नेपर 'चेय्यात' पेरेच्चं बनता है, ए निपात के योग से विनयेच्चं भी होता है : चेय्याते । निषेधवाच्य बनाने केलिए दो मार्ग होते हैं, (1) निर्देशक में अल्ला, इल्ला, निषेधक और विधायक में ओला और अरुर्त, अनुज्ञापक में 'वहिया' का अनुप्रयोग (2) 'आ' प्रत्यय को मिलाकर ।

समुच्चय : पदार्थों का समावेश समुच्चय होता है । मलयाळं में धातुओं को नट् विनयेच्चं बनाकर समुच्चयार्थ का उं जोड़कर 'चेय्युक' सामान्य क्रिया से काल आदि की दिखाते प्रयुक्त करना है । आटुकयुं पाटुकयुं चेय्तु (नाचा और गाया) ।

अंगक्रिया : कुतिरा ओटि (घोड़ा दौड़ा) ओटि क्रिया से हमारे मन में उसके दौड़ने और दूर तक जाने का चित्र प्रतिबिंबित होता है । ऐसी भूतकाल की क्रिया होने पर हमारे मन में वर्तमान के रूप में वह चित्र आता है । भूतकाल की क्रियाओं को साध्यक्रिया कहते हैं । 'ञान् कुतिरयुटे ओट्टं कण्टु'(मैंने घोड़े की दौड़ देखी) इन दोनों वाक्यों के अर्थ में काफी भेद होता है । देखने के बाद उसके बारे में और कुछ सोचने लगता है । दौड़, देखा क्रिया का कर्म है, ऐसी क्रियाओं को 'सिद्ध क्रिया' कहते हैं । जब एक क्रिया सिद्ध होती है तब उसे क्रिया नहीं बताई जा सकती इसलिए 'दौड़' क्रिया से बनाई हुई संज्ञा है । साध्य क्रिया के अंगि और अंग दो भाग होते हैं वरं कोट्टुत्तु(अंगि) कोट्टुत्त वरं (अंग) नाम के अधीन हैं नामांग और क्रिया के अंग क्रियांग होते हैं अगस्त्य मुनि ने इन को पेरेच्चं और विनयेच्चं के नाम दिये हैं । पाणिनि ने इन्हें शब्दन्यून और क्रियान्यून बताये हैं । आख्यात के अन्तिम स्वर लुप्त करके 'अ' जोड़ने पर पेरेच्चं बन जाते हैं: चेय्युन्नु(करता) चेय्युन्न(करता हुआ), चेय्तु(मिलाया) चेय्त(मिलाया हुआ) । इत्यादि में प्रत्यय की आवश्यकता नहीं : वरुंकालं (आनेवाले समय)

विनयेच्चम् : विनयेच्चं के पांच भेद होते हैं । मुन्, पिन्, तन्, नट्, पाक्षिकं । भूत आख्यात दुर्बल हो जाने पर 'मुन् विनयेच्चं' होता है : वन्नुचेर्न्नु(आ गया) । पिन् विनयेच्चं बनाने केलिए धातु में या भविष्यकाल रूप में 'आन्' जोड़े जाते हैं : उण्णान् पोयि (खाने गया) । ए या ऐ जोड़कर तन् - विनयेच्चं बनाते हैं : चेय्ते या चेय्यवे । नट् विनयेच्चं में केवलक्रिया का प्रयोग ही होता : चेय, चेय्क, चेय्युका । 'उकिल' प्रत्यय मिलाकर पाक्षिक विनयेच्चं बनाये जाते हैं : चेय्युकिल(करते तो) । भूतकाल रूप में 'आल्' जोड़कर भी पाक्षिक विनयेच्चं बना सकते चेय्ताल (किये तो) ।

'कृत्' : क्रिया से संज्ञा बनाने केलिए 'कृत्' प्रत्यय जोड़ते हैं । कृत् कृतिकृत् और कारककृत् दो होते हैं । केवल क्रिया को 'कृतिकृत्' कहते हैं । अल्, तल्, प्पं आदि बीस प्रत्यय दिखाये गये हैं । इनमें कुछ प्रत्यय जोड़कर कृतिकृत् बना सकते : चेय + अल > चेय्दल (करना) पार + प्पं पार्प्पं (रक्षण) निल् + अ निला (स्थिति) पूर्वसवर्ण, तालव्यादेश आदि प्रक्रियाएँ करने चाहिए । अ या इ प्रत्यय जोड़कर कारककृत् बनाते है : चति + अ+ अन् चतियन् (धोखेबाज़) 'अन्' लिंग प्रत्यय है । नोन + अ + अन् नोन्बन् (भूखा) । 'इ' तो समासों में आती है : मरंचाटि - मरत्तिल चाट्टम्वन् (बन्दर)

भेदकाधिकार :- तमिळ वैयाकरणों ने भेदक को गुणनाम बताया है । चे, चेम्, आदि शब्द संस्कृत के नित्य समास के रूप में पूर्व पद होकर ही रहता है । वे स्वतन्त्र नहीं, इसलिए उन्हें अलग विभाग देना नहीं, तमिळ वैयाकरणों का मत यह है । इस महाकाव्य में भेदक को एक अलग विभाग माना है । भेदक, नाम विशेषण, क्रिया विशेषण और भेदकाविशेषण तीन है । चेम्पवर (नाम विशेषण) चेय्य , विरर्दु (क्रि.वि) कोट्टु, नन्नु (भे.वि) नामविशेषण को 'आक' और गुण क्रियाओं को 'आयि' प्रत्यय जुड़ते है । केमनाय सद्या (बहुत अच्छी दावत) (ना.वि.) केमनायि कोट्टाटि (बहुत अच्छा मनाया) क्रि.वि.) । संख्या भेदक क्रमशः ओर्, इरु, मु - - - आदि होते है । इरु कभी इरं या ईरं भी होता •, नो केलिए महाकाव्य में तोन्पतु होना चाहिए, आगे चलकर उम्पतु हुआ । तोम्नूरु, तोळ्ळायिरं भी ऐसा है । सहस्र का ऊन्न जोड़कर आयिरं हो गया । लक्ष और कोटि तत्सम् होते है । 'आम्' इतिमायि प्रत्यय जोड़कर पूरणियों का प्रयोग करते है : ओन्नाम्, मून्नाम् आदि । अन्नु, इन्नु, अङ्ङु, इङ्ङु क्रियाविशेषण है । कालि कोट्टिसे, अन्ना, इत्र नामविशेषण है ।

निपाताव्ययाधिकार : संज्ञा, कृति और भेदक वाचक है । घोतक के दो भेद हैं, अव्यय और निपात । पहले घोतक में निपात ही होते थे । सम्बन्धविशेषण दिखाने केलिए संज्ञा और कृति से कुछ शब्द लिए गए । वे ही आगे चलकर अव्यय हो गये । अव्यय और निपात एक ही कार्य करते और दोनों के चार भेद है ।

'एन' और 'आकुक' दोनों के रूप तथा विभक्ति अव्यय हो गये है :

एन : एन्न, एन्नं, एने, एन्नाल, एङ्किल ।

आकुक : आय, आकुन्न, आकु, आके, आयि, आयिट्टु, आकिल, आवास ।

गतियों में अधिक से अधिक विन्यविध्य के दूषित हुए होने से अलग होते हैं।

गुणाविन्यविध्य : कोट्ट, कुण्डु, पाट्टु इत्यादि।

धातुक विन्यविध्य : कोट्टल, आवित, जावित, आदि।

तन् विन्यविध्य : तरे, कावे आदि

निपातों की संख्या कम है : उ, ओ, ए, आ, आन्, वें, समुच्चय निपात उ, तान्, विकल्प निपात 'ओ', ये एक ही जाति के और एक ही कारक के शब्दों में जुड़ते हैं।

आकांक्षाविचार : शब्दों के अटूट संबन्ध को आकांक्षा कहते हैं। क्रिया के कारकों के साथ, कारक की क्रिया के साथ, विशेषण विशेष्यों तथा गति विभक्तियों की परस्पर अटूट संबन्ध होता है। आकांक्षा की पूर्ति दिखानेवाले शब्द समूह को वाक्य कहते हैं। वाक्य के दो भाग होते हैं : आख्या और आख्यात। वाक्यों का विभाग करके दिखाने की प्रथा को वाक्यविग्रह या अन्वीक्षार कहते हैं। कर्ता और उसके परिच्छद आख्या, क्रिया तथा उसके परिच्छद आख्यात होते हैं।

पदक्रम : कर्ता, कर्म, क्रिया यही वाक्यों में पदों का क्रम होता है। विशेषण क्रम विशेष्य के पहले होता है, गति, जिस विभक्ति का अर्थ दिखाती उसके पीछे प्रयुक्त आती है। एक ही विभक्ति के अनेक पदों को 'उ' समुच्चय से जोड़कर गति का प्रयोग करना चाहिए : कात्तुं मन्नुं कोट्टु (हवा और वर्षा से)

पौरुत्त : कर्ता और क्रिया का लिंग, वचन, पुरुष समानभाव मलयालं में लुप्त हो गया है। पर विभाजक भेदकों से विशेष्य के अनुसार विशेषण में एप भेद दिखाना पड़ता है : विद्धनाय ब्राह्मणन् (बूढ़ा ब्राह्मण), विद्धियाय स्त्री (बूढ़ी स्त्री), मिटुक्काय कुट्टिकळ (होशियार लड़के) नपुंसक में बहुवचन प्रत्यय नहीं आता : अन्यायमाय कार्यङ्ङळ् (अन्याय कार्य) संस्कृत शब्द भाषा में प्रयुक्त होने पर प्रक्रिया मलयालं के अनुसार होता : उन्नतमाय वृक्षं (ऊँचा पेड़)।

समासप्रकरण : विभक्ति आदि की सहायता के बिना शब्दों के परस्पर बन्ध दिखाने की प्रवृत्ति को समास कहते हैं। घटक पदों के भेद के अनुसार :

(1) क्रियांग क्रिया के साथ - कोट्टाटुक (मनाना)

(2) नाम क्रिया से - कैवेटियुक (त्याग करना)

(3) नामांग नाम के साथ - पेट्टम्मा (जननी)

(4) नाम नामांग के साथ - तेनिमुवाणि (मधुवाणि)

(5) नाम नाम के साथ - पोन्कुटं (सोने का घड़ा)

(6) भेदक नाम के साथ - वेण्चामरं (वेण्चामर)

घटक पदों की प्रधानता के अनुसार :

(1) तत्पुरुष - उत्तरपदार्थ प्रधान > तलवेदना (सिरदर्द)

(2) बहुव्रीहि - अन्यपदार्थ प्रधान > चन्द्रशेखरन् (

(3) द्वन्द्व - सर्वपदार्थ प्रधान > अच्छनम्ममार (माँ बाप)

अव्ययी भाव तथा द्विगु भाषा में नहीं। विशेषण विशेष्य भाव से समासित करने पर 'तत्पुरुष' होता है। यह समानाधिकरण तथा व्यधिकरण दोनों में होता है। समानाधिकरण में कर्मधारय होता। संस्कृत में इसे अलग दिखाया गया है। मलयालम में यह निर्देशार्थ में प्रयुक्त होता। अन्य विभक्तियों के साथ भी तत्पुरुष आता है। उपपद, मध्यपद लोपी, कारक तत्पुरुष ये सब तत्पुरुष के अन्तर्गत होते हैं। 'वह होनेवाला' इस अर्थ से बहुव्रीहि समास है। यह भी उपमागर्भ, उपमालुप्त, उपमानलुप्त आदि कई तरह के होते हैं। विशेष्य के समुच्चय में द्वन्द्व समास होता है। संस्कृत में अलुक् समास भी होते : लिंग वचन विभक्ति प्रत्यय लुप्त न होनेवाले समासों को अलुक् समास कहते हैं : उरस्तोम्।

शब्दोत्पत्ति : कोई एक मनोवृत्ति दिखानेवाला शब्द समूह वाक्य होता है। वाक्य का विग्रह करने पर शब्द मिलते हैं। भाषा का प्रधान तत्व पद(शब्द) होता है। संज्ञा, वृत्ति, भेदक ये ही पद होते हैं। द्योतक पद नहीं। भेदकों की संख्या कम है, संज्ञाओं की संख्या उससे अधिक है। धातुएँ ही सबसे अधिक होती है। सबसे पहले क्रियाकार धातु या संज्ञा का अस्तित्व हुआ होगा। फिर भेदकों की उत्पत्ति हुई होगी। प्रत्यय जोड़कर रूपभेद दिखाने की प्रवृत्ति इसके बाद ही गयी होगी। मलयालम द्राविड परिवार की एक भाषा है। इस शाखा के कई भाषाएँ होती है। तमिल, तेलुगु, कन्नड और तुलु प्रधान होती है। इन भाषाओं से भी शब्द मलयालम में आए उन्हें आभ्यन्तर कहते हैं। संस्कृत, अंग्रेज़ी, हिन्दुस्तानी, पोर्तुगीज आदि भाषाओं से आये हुए शब्द-बाह्य कहते हैं। आभ्यन्तर के तीन भेद होते हैं : स्व, साधारण और देश्य, मलयालम के शब्द स्व, परिवार के अन्यभाषाओं से आए हुए शब्द साधारण, देशभेद के मलयालम शब्द देश्य होते हैं। बाह्य तत्सम तथा तद्भव दो तरह के होते हैं। संस्कृत के कई शब्द तत्सम रूप में प्रयुक्त होते हैं। लेखक ने इसके कई उदाहरण दिये हैं।

समीक्षा : केरळपाणिनीयं मलयाळं का प्रामाणिक व्याकरण ग्रन्थ है । इसकी पीठिका में लेखक ने भाषा की उत्पत्ति के बारे में अपना मत स्थापित किया है । उनके अनुसार मलयाळं तमिऴ् से जन्मी हुई भाषा है । मलयाळं कोडुन्तमिऴ् का एक स्वतन्त्र रूप है मानते है । इस संबन्ध में महाकवि उळ्ळूर का मत है 'मलयाळम और तमिऴ्' का संबन्ध सूक्ष्म रूप से विवेचन करने पर मलयाळं को तमिऴ् की बेटी या भगिनि न कहकर उसे तमिऴ् की माता या बड़ी बहन कहना लगते[1] है यह मतान्तर प्रकट होता है । इसका कारण यह होगा कि तमिऴ् शब्द का भ्रमात्मक स्वीकार । अब तमिऴ् जिस भाषा को दिखाता वह भी एक मूलभाषा का भेद है । मूलभाषा को तमिऴ् ही कहते, अतः पूर्वापर संबन्ध भ्रम में पड़ गया । इसलिए तमिऴकं दक्षिण भारत का सामान्य नाम रखा, वहाँ की भाषा तमिऴ् स्वीकार किया गया । द्राविड परिवार की सभी भाषाएँ उस मूलभाषा से संबन्धित है । आधुनिक तमिऴ् भी उनमें एक है । उत्तर भारत के साधारण लोग मद्रासी नाम से दक्षिण के लोगों को दिखाता करते है । द्राविड मूलभाषा तमिऴ् और आधुनिक तमिऴ् दोनों को भिन्न समझकर उनके विकास परिणाम पर ध्यान देने से इस समस्या को एक सीमा तक हल कर सकते है । दक्षिण की मूलभाषा के विभिन्न रूप है तमिऴ्, कन्नड, तेलुगु, मलयाळं तथा अन्य दक्षिणी भाषाएँ । साहित्यिक कृतियों के अभाव से किसी भाषा का अस्तित्व समझना भी मूर्खता है ।

लेखक ने वर्णों को संस्कृत वैयाकरण तथा तमिऴ् व्याकरण पद्धतियों के आधार पर दिखाया है । उन्होंने 'ट' वर्ण का अस्तित्व दिखाया है । पर ऱ्ऱ के संबन्ध में कुछ नहीं बताया है । ऱ ऴ, ळ, ङ, ट को स्वीकार किये है । इसलिए डा.गुंडर्ट के जैसे ऱ्ऱ ऱ का विरोध स्वीकार किया होगा । मलयाळं में ऱ्ऱ की प्रधानता होती है । लीलातिलकं में इसे एक द्राविडवर्ण स्वीकार किया गया[2] है ।

---

1. केरलसाहित्य चरित्रम् - पहला भाग पृ : 33
2. लीलातिलकं - दूसरा शिल्प है 75
3. केरळपाणिनीयं - वर्ण प्रकरण - पृ : 204

शब्द भेदों को तमिळ पद्धति के अनुसार स्वीकार किया गया है । वाच्य और पौरुष का विभाग दिखाया है । सन्धि में पदमध्य, पदान्त, उभय तथा लोप, आगम, आदेश, द्वित्व को दिखाया है । तोलकापियर ने चार अध्यायों में सन्धि वर्णन किया है और अन्त में बताते हैं कि सन्धियों का आधार उच्चारण की सुविधा है और उसके कितने ही विकार हो सकते हैं । केरलपाणिनि ने भी बताया है कि उच्चारण की सुविधा ही सन्धि का आधार होती है ।

लेखक ने डा.गुंडर्ट तथा काल्डवल को स्थान स्थान पर उद्धृत किया है । देशी वैयाकरणों को सूचित नहीं किया है । अपने सिद्धान्तों को स्थापित करने के लिए विवेचनात्मक शैली को स्वीकार किया है, बहुतायत उदाहरण भी दिये हैं । कहीं कहीं भाषा-चंक्रमण दुर्बोधक होता और विषय जटिल हो जाता । विभक्ति और कारकों को अलग अलग करके दिखाया है, पर 'क्रियोपकारी तन्नै कारकं' आदि में जटिलता आ गयी है । सन्धि के सिवा शब्दों को समासित करने की प्रथा भाषा में नहीं थी । संस्कृत व्याकरण पद्धति के अनुसार ही अब भाषा में इसका प्रयोग होता ।

मलयाळं ग्रामर एण्ड रीडर
- - - - - - - - - - - - -

डा.के.एं. जार्ज का लिखा हुआ ग्रन्थ है यह । डा.शिकागो विश्वविद्यालय में द्राविड भाषा शास्त्र के विजिटिंग प्राध्यापक थे । जब वे भारत लौटनेवाले थे तब 'अमेरिकन पब्लिशर' ने अमेरिकनों को मलयाळं पढ़ने की एक उपयुक्त पद्धति तैयार करने की प्रार्थना की । इसके अनुसार तैयार किया गया ग्रन्थ है मलयाळं ग्रामर एण्ड रीडर । इसमें पच्चीस पाठ हैं ।

लेखक ने दीर्घ स्वर और अर्धसंवृत व्यंजन दिखाये हैं । अं को स्वर में तथा ऋ, ट, ड़, ळ को व्यंजन में जोड़ दिया है । बोलचाल उद्धृत करते हुए दो व्यक्तियों का भाषण दिखाया है : 'नमस्कार' सुखं तन्ने ? अते, सुखं तन्ने । वर्तमान कालिक क्रिया रूप दिखाकर उदाहरण दिये हैं । बर्ट, होटल, पेन, पार्क, मार्ट आदि शब्द रोमन लिपि में लिखकर अर्थ अंग्रेजी में दिया है । दूसरे में वर्णक्रम और तीसरे में विशेषण दिखाये हैं : वलिय, चेरिय, चारार्क आदि शब्द दिखाये गये हैं । सर्वनामों को भी प्रयोग करके दिखाया है । क्रिया के काल वर्तमान में उन्नु भूत में इ, उ और भविष्य में उं प्रत्यय लगाये जाते । डाक्टर से बातचीत करने का नमूना दिया है । स्वराचिह्न लगाने की विधि दिखायी है । उच्चारण स्थान भी दिखाये हैं । कारक प्रत्यय सोदाहरण दिये गये हैं ।

कृदंत विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते । वर्तमान कालिक कृदन्त, भूतकालिक कृदंत और भविष्यकाल कृदंत होते है : ओटुन्न कुतिरा , ओटिय कुतिरा , ओटुं कुतिरा ।
क्रियाविशेषण के रूप में भी कृदंत का प्रयोग होता : ओटिप्पोयि । निषेध दिखाने "आते" जोडते : ओटाते । आक, पोक, वर, कषि आदि संयुक्त(सहायक) क्रियाएँ है । विधेयार्थ दिखाने इनका प्रयोग होता है ।
क्रिया : अकर्मक, सकर्मक तथा प्रेरणार्थक :
अकर्मक कर्ता के सिवा किसी पर अधिकार न जमाता । अकर्मक को प्रेरणार्थक बनाने पर सकर्मक बन जाता । सकर्मक से दूसरा प्रेरणार्थक बना सकते । ओटुक ओटिक्कुक ओटिप्पिक्कुक ।

क्रियाओं से भी संज्ञा रूप बनाते उन्हें क्रियानाम कहते है । तल, उक, अल् आदि प्रत्यय संज्ञा बनाने में प्रयुक्त करते है ।
कर्मणि प्रयोग में कर्म की प्रधानता होती । विशेषण के रूप में प्रयुक्त कृदंत कर्मणि का अर्थ दिखाता है : रामन कोन्न पशु ।
अन्त में मलयालम अंग्रेजी शब्द सूची दी गयी है ।

एल. वि. रामस्वामिअय्यर

इनका जन्म 1895 में हुआ । मद्रास विश्वविद्यालय से बि.ए.पासकर बि.एल. की उपाधि ली । वकालत में उनकी रुचि न लगने के कारण अध्यापन करने लगे । एरणाकुलम महाराजास कालेज में अध्यापन करते समय उन्होंने भाषा शास्त्र में अपनी प्रतिभा लगा दी । ग्रीक, लत्तीन, जर्मन, एंग्लोसैक्सन, डच, गोथिक आदि योरोपीय भाषाओं में अच्छा ज्ञान कमाया । अरबी, सिरियन, हिब्रु आदि सिमिटिक भाषाओं में भी अच्छा अधिकार प्राप्त किया । विभिन्न भाषाओं के वैदिक अनुवाद पढ़कर ही उन्होंने इतनी भाषाओं पर अधिकार जमाया ।

भाषाविज्ञान के 'मलयालम ध्वनि विज्ञान का एक संक्षिप्तग्रन्थ' 1925 में प्रकाशित हुआ । मलयालम के स्वरों में मध्यमस्वर होते है । अर्धउकार या संवृत उकार मध्यम स्वर है लेखक ने अपनी रचना में दिखायी है । मलयालम के वर्ण विकारों के बारे में 'मलयालम फोनोग्राफी' अप्रकाशित है । प्राचीन तथा मध्यकालीन मलयालम कृतियों से उचित उदाहरणों का उद्धरण करके वर्ण विकारों को शास्त्रीय और ऐतिहासिक दृष्टि से दिखाया है । 'एरुक' एक द्राविड धातु है ।

आधुनिक मलयाळं में वह 'कमलूक' हो गया। इसके संबन्ध में लेखक लिखते है कि 'वेलिवैयुम्' में 'स्कूक' धातु को देख सकते। कास्तु स्कूक कास्कैकूक (किनारे चलना)। वह कालान्तर में का + कैकूक में परिवर्तित हो गया। कैकूक कमकूक भी हो गया।

मलयाळं की उत्पत्ति के बारे में वे कहते है प्राचीन तथा मध्यकाल तमिलु से मलयाळं का संबन्ध हम देख सकते है। मलयाळं की उत्पत्ति उस तमिल रूप से हुई है ......। मलयाळं की रूप घटना, हिस्टारिकल का व्याकरण एल.वि.आर के अन्य ग्रन्थ है। मलयालभाषा संबन्धी उनके लेख बहुत ही प्रधान होते है।

डा. गुण्डर्ट के व्याकरण की त्रुटियों पर उन्होंने एक लेख लिख है। 'गुण्डर्ट ने बहुवचन प्रत्यय 'मार' अवार का रूपान्तर दिखाया है, ऐसे ही 'कळ्' बहुवचन प्रत्यय, संबन्ध प्रत्यय आदि में डा.गुण्डर्ट ने रूपनिष्पत्ति का जो सिद्धान्त दिखाये है ठीक नहीं है'[2]।

लतीन भाषा में लिखित और 1903 में प्रकाशित एक व्याकरण के बारे में वे लिखते है 'जैसे हिन्दु लोग संस्कृत को सर्वमान्य समझते वैसे मिशनरी लतीन को सर्वमान्य समझते है'

एल.वी.आर ने शब्दों को अंग्रेजी व्याकरण पद्धति के अनुसार संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम्, वृत्ति, क्रिया विशेषण, संबन्ध बोधक, समुच्चयबोधक तथा विस्मयादि बोधक - आठ भागों में विभाजित किया है। लतीन व्याकरण पद्धति के अनुसार कारक का रूप दिखाया है, अव्यय के चार रूप दिखाया है। पतुविशाल, पतुवोट, पतुवित, पतुविलनिन्नु। पुल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसक में भी ऐसा दिखाया है। क्रियाओं के वर्णन में भी अध्यार ने योरोपीय पद्धति को स्वीकार किया है।

---

1. प्रो.वि.एस शास्त्री - भाषा पठनम्-ङ्ङ् - एम.बी.एस् पृष्ठ : 108
2. मलयाळं व्याकरण का इतिहास डा. के.एम. प्रभुलचन्द्रन, केरल युनिवेर्सिटि प्रकाशन पृ : 659

बीसवीं सदी के मध्यकाल तक कई व्याकरण ग्रन्थों का प्रकाशन मलयालम में हुआ। ये सब विद्यालयों के उपयोग केलिए प्रकाशित हुए हैं। सब अंग्रेज़ी पद्धति में लिखे हुए हैं। उनमें पद परिचय वाक्य विग्रह आदि की प्रधानता दी गयी है। वाक्यविश्लेषण, प्रत्ययविधान तथा पदविभजन, कर्तरि - कर्मणि प्रयोग आदि के अभ्यास दिये गये हैं। अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों के उपयोग केलिए उसी माध्यम में लिखे हुए कई व्याकरण भी अब प्रकाशित हुए हैं। पर केरल - पाणिनीयं के बाद कोई आधिकारिक व्याकरण प्रकाशित नहीं हुआ है।

जैसे हिन्दी व्याकरणों के बारे में बताया वैसे कई मलयालम व्याकरण ग्रन्थों में भी भाषा - विज्ञान की बातें मिलायी गयी हैं। केरलपाणिनीयं की पीठिका मलयालम - भाषा - विज्ञान से संबन्धित है। उस काल में भाषा विज्ञान का अस्तित्व न होने के कारण ही भाषा संबन्धी सभी बातें व्याकरण में मिलायी गयी हैं। व्याकरण के विकास - कार्य में विदेशियों की देन सर्व-प्रधान होती है। केरलपाणिनीयं के आविर्भाव से मलयालम - व्याकरण का पूर्ण विकास हुआ। पर भाषा की बहाव के कारण केरलपाणिनी से प्रयुक्त कई शब्द व्यावहारिक भाषा से अब लुप्त हो गए हैं, कई नये शब्द आये हैं। इस क्षेत्र में कालानुकूल परिवर्तन आवश्यक हो गया है।

\- - - - - - -

चौथा अध्याय

\- - - - - -

वर्ण प्रकरण

हिन्दी के मूलस्वर अ, इ, उ, ऋ, दीर्घ स्वर : आ, ई, ऊ, संयुक्त स्वर ए, ऐ, ओ, और औ हैं। व्यंजनों में क से म तक पच्चीस स्पर्श य, र, ल, व चार अन्तस्थ तथा श, ष, स, ह चार ऊष्म होते हैं। अनुस्वार और विसर्ग स्वर या व्यंजन नहीं हैं। अनुस्वार एक अलग ध्वनि है पर अनुनासिक की पृथक् सत्ता नहीं। अनुस्वार के उच्चारण में एक मात्रा होती, अनुनासिक की मात्रा नहीं। अनुस्वार और विसर्ग को अयोगवाह कहते हैं। 'ऋ' संस्कृत शब्दों में ही आता है। संस्कृत का ऌ हिन्दी में प्रचलित नहीं। हिन्दी में कुछ नई विकसित ध्वनियाँ ये हैं : क़, ख़, ग़, ड़, ढ़, ज़, और फ़।

मूल - द्राविड़ में वर्णों की संख्या कम थी। ऋ, लृ को छोड़कर सभी स्वर, ए और ओ के ह्रस्व रूप इसमें है, व्यंजनों में स्वर तथा अनुनासिक य, र, ल, व मध्यम तथा द्राविड़ के विशिष्टवर्ण ऴ, ळ, ऱ और ऩ है। भाषा के विकासकाल में मलयालम ने संस्कृत वर्णमाला को स्वीकार किया। ष संस्कृत शब्दों में ही आता है। 'लृ' का प्रयोग नहीं है। द्राविड़ के विशिष्ट - वर्ण भी रखे गये। इस तरह मलयालम में 13 स्वर और 37 व्यंजन स्वीकार किये गये है। इनके अलावा ऱ्ऱ और ऩ्ट दो वर्ण भी होते है।

दोनों भाषाओं ने अं और अः को स्वरों या व्यंजनों में स्थान नहीं दिया। दोनों ने उन्हें 'अयोगवाह' का नाम दिया है। ह्रस्व ए, ओ तथा ऱ, ऴ, ऩ, ऱ्ऱ और ऩ्ट (4) ये सात मलयालम की विशिष्ट ध्वनियाँ है। ऩ और न की एक ही लिपि होती, पर ध्वनि अलग है। दांती का अन्त्य ध्वनि और नाम का पूर्वध्वनि अलग है। अन्य भाषा भाषियों को इनके उच्चारण में ठीक ध्वनि का उपयोग करना कठिन है। मलयालम में ऩ के लिए अलग लिपि प्रचलित थी। पर अब एक ही लिपि से काम चलता है। इसप्रकार ह्रस्व तथा दीर्घ ए और ओ के उच्चारण में भी विवेचना की कठिनाई होती। मलयालम ने ह्रस्व और दीर्घ के लिए अलग अलग लिपियाँ स्वीकार की है। ल और ळ के लिए हिन्दी में साधारणतः एक ही लिपि प्रचलित है। इससे गड़बड़ होने की संभावना है। मलयालम ने दोनों को अलग लिपियाँ स्वीकार की। केरळ - पाणिनि ने 4 (ऩ्ट) को एक विशिष्टध्वनि बताया है। इसके आधार पर उन्होंने अन्यवर्गों के जैसे 4 वर्ग भी बताया है जो स्वर है और जिसका अनुनासिक न्त (ऩ) है। पर ऱ्ऱ को उन्होंने एक स्वतंत्र वर्ण स्वीकार नहीं किया है। डा.गुंडर्ट ने तो 4 और ऱ्ऱ को अलग ध्वनियाँ नहीं मानी है।

मलयालम के उकार दो तरह के होते है : संवृत और विवृत। संवृत - उकार के लिए अक्षर के ऊपर अर्धचन्द्राकार लगाया जाता है। व्यंजनों को अलग दिखाने के लिए यह चिह्न लगाया जाता है। विवृत उकार अक्षर के नीचे लगाया जाता है। संस्कृत में हल् दिखाने के लिए अक्षर के नीचे ् चिह्न लगाया जाता। हिन्दी तथा मलयालम में स्वर मिलाकर ही व्यंजनों का उच्चारण किया जाता है। पर हिन्दी के शब्दों में व्यंजनों का उच्चारण अव्यवस्थित है : 'आम' में 'म' का उच्चारण कमल में 'ल' का उच्चारण 'हल्' जैसे होता है। इसके कारण अन्य

भाषा भाषियों को ठीक उच्चारण करने में कठिनाई हो सकती है ।

व्यंजन - मलयाळं में पाँच अर्द्धाक्षर होते जिन्हें 'चिल्लु' कहते हैं । वे हैं न्, ल् (ल्), ण्, ल्, र् । मलयाळं के सभी शब्द स्वरान्त या चिल्लन्त होते हैं । कहीं कहीं य् और व् आगम के रूप में आते हैं जो स्वरान्त होते हुए भी संवृत में ही उनका प्रयोग होता है । 'लृ' ध्वनि के लिए 'ऌ' लिपि होती है । यह मलयाळं की विशिष्ट - ध्वनि है । र और ण का ण्, न का न्, ल का ल् (ल्) ळ और ळ का ळ् य का य् और म का म् (०) होते हैं ।

समीक्षा :

1. हिन्दी में पाए जानेवाले सभी स्वर मलयाळं में भी हैं । 'ऋ' का उपयोग केवल संस्कृत शब्दों में होता है : ऋषि, ऋण्, ऋतु । ये शब्द दोनों भाषाओं में हैं । दीर्घ ऋ, ह्रस्व ऌ या दीर्घ ॡ दोनों भाषाओं में नहीं होते । अतः, अंतः करण आदि तत्सम रूप में दोनों भाषाओं में प्रयुक्त होते हैं ।

2. 'ऋ' का उच्चारण दोनों भाषाओं में 'रि' जैसे होता है : ऋषि रिषि, ऋतु रितु ।

3. हिन्दी और मलयाळं में ए और ओ ह्रस्व तथा दीर्घ दो प्रकार के होते हैं । हिन्दी में ह्रस्व दिखाने के लिए विशिष्ट - लिपि नहीं होती । इसलिए उच्चारण में दुविधा होती है । मलयाळं में ह्रस्व तथा दीर्घ के लिए अलग - अलग लिपियाँ होती हैं ।

4. ऐ और औ हिन्दी एवं मलयाळं में संयुक्त स्वर माने जाते हैं । पर उनके उच्चारण में कुछ भिन्नता होती है । हिन्दी में अय्(अ + इ) अव् (अ + उ) के समान है । मलयाळं में अ + ए और अ + ओ होते हैं ।

5. हिन्दी में अर्द्धानुनासिक का विशेष - प्रयोग होता है । मलयाळं में इसका प्रयोग नहीं । मलयाळं में इसका मिलता - जुलता अर्द्ध संवृत उकार है ।

6. मलयाळं में पूर्णानुस्वार ही वर्गान्त अनुनासिकों का काम करता है जैसे कंबळं, टिंटु, पंपा आदि । हिन्दी में क, च, ट, त, प वर्गों के व्यंजनों के साथ अनुनासिक ङ, ञ, ण, न, म अब भी प्रचलित है । मलयाळं में भी यह होता है । पर दोनों भाषाओं में अनुनासिक के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग बढ़ता रहता है ।

7. मागधी प्राकृत में 'अ' का उच्चारण संवृत होता है। हिन्दी में भी इसका प्रभाव होता है 'ओ' की ध्वनि इसमें पायी जाती है। मलयालम में भी ओष्ठ्य अकार होता है।

8. हिन्दी में प्रयुक्त होनेवाले अरबी- फारसी तुर्की आदि विदेशी शब्दों में विशेष प्रकार की कण्ठ - तालव्य ध्वनियाँ होती है। इन विशेष ध्वनि को अभिव्यक्त करने केलिए अक्षरों के नीचे बिन्दु डाली जाती है : कलम, गुम आदि। ये ध्वनियाँ अन्य भारतीय अथवा द्राविड भाषाओं में नहीं होतीं। इनका सही उच्चारण कष्ट - साध्य है।

9. ड और ढ के नीचे बिन्दी जोडकर ड़ और ढ़ का विशेष उच्चारण होता वह दक्षिणी भाषाओं में नहीं है।

10. मलयालम में मूर्धन्य 'र' के अतिरिक्त 'ऱ' पाया जाता। इसे शकट - रेफ कह सकते है इसका उच्चारण 'र' से कुछ कुंठित होता है।

जैसे : अरा (आधा) अऱा (कमरा)

नीर (पानी) नीऱ (राख)

नागरी में इस ध्वनि केलिए विशेष लिपि नहीं। द्राविड भाषाओं में इसका महत्व होता है।

11. मलयालम में ऱ के अलावा ऴ, ष़, ऩ, 4(न्ट) ऱऱ पांच विशेषवर्ण भी होते है इनमें ऩ केलिए 'न', 4 केलिए 'न्ऱ' और ऱऱ केलिए दो शकट रेफ का प्रयोग होता। हिन्दी में भी न और ऩ ध्वनियाँ है, पर एक ही लिपि होती है : पानी, नारी।

12. ध्वनि - विकार : दोनों भाषाओं में 'अ' वर्ण की ध्वनि में विकार होता है। मलयालम में 'अ' कण्ठ्य, तालव्य और ओष्ठ्य तीन प्रकार के होते है। हिन्दी में भी कण्ठ्य तालव्य और ओष्ठ्य होते : गन्ध का उच्चारण गेन्ध जैसे होता। कहना हिन्दी में कैहना होता है। पर, परवार आदि शब्दों में 'पो' ओष्ठ्य ध्वनि होती है। मलयालम में हम के अर्थ में 'नाम' शब्द उच्चारण में नोम हो जाता है।

मलयालम में हलन्त शब्द बहुत कम है। अन्य भाषाओं से लिए हुए हलन्त शब्दों को पूर्णान्त बनाया जाता है। इसकेलिए अ या उ शब्द के अन्त में जोडते है। तालव्य में अ और ओष्ठ्य में उ जुड जाते है। जैसे काव् (फल) पू पूव् (फूल) हो जाते। वैसे ही के अनुसार काव् काय काया, पू पूव् पूवु आदि भेद होते। व्यंजनान्त शब्दों में संवृत उकार जोडकर स्वरान्त बनाते है।

ए ऍ : मलयालम में पदादि में या व्यंजन के बाद में 'ए' का उच्चारण 'ऍ' जैसा होता है : एला एला (पत्ता)। किसी किसी शब्द में भ्रम के कारण 'ए' के स्थान पर 'ऍ' भी होती जैसे पिलह् (गर्व)

उ, ऊ : उ में भी दो ध्वनि होती। दोनों भाषाओं में यह विकार देख सकते हैं मलयालम में पुक पोका (धुआँ) हो जाता, उलटे भी उ भी बनता कोला कुत्ता (मारना) मलयालम में उ के ह्रस्व - दीर्घ रूपों के अलावा एक तीसरा वर्ण होता जिसे संवृत उकार कहा जाता है। भाषा में इसकी बडी प्रधानता होती है। प्राचीन लिपि - विन्यास में इसका कोई स्थान नहीं था

'ऋ' का प्रयोग दोनों भाषाओं में संस्कृत तत्सम शब्दों में होता है। ए ऐ ओ औ : इनके बारे में विशेष - बातें नहीं। ऐ को अय् बनाने की प्रथा होती वैयाकरण वय्याकरण। औ शुद्ध - द्राविड में नहीं। पर मलयालम में 'अव्' को 'औ' बनाने की रीति है : अवल्लम् औवल्लम्।

कवर्ग : मूलद्राविड में वर्गों के आदि तथा अन्त्य वर्ण ही होते हैं। संस्कृत से अन्य वर्णों को स्वीकार किया गया है। उसमें कोई विकार नहीं होता। कोमल स्वरों के अन्तागम 'क' को 'ग' का आदेश होता : तट + उम्मु तटकुम्मु तटगुम्मु ०, पी + उम्मु पीकुम्मु पीगुम्मु। तेलुगु में भी यह साधारण प्रक्रिया है।

चवर्ग : मलयालम का 'च' कार उसी ध्वनि में रहता है। ञ कहीं कहीं ञ हो जाता है ञान > ञान (मैं)

टवर्ग : मलयालम में 'ट' वर्ण से शुरू होनेवाला कोई शब्द नहीं। पर कुछ विदेशी तत्सम शब्द डप्पी, टार्च, टिन आदि होते। हिन्दी में टवर्ग में शुरू होनेवाले कई शब्द होते हैं : टुकडा, डब्बा, ढंग, ढक्कन, ठूठ, डोरी, ठीक, डुबारा, ढोल आदि। इन में भी कई शब्द विदेशी मालूम पडते हैं। मलयालम के कई शब्दों के अन्तर्गत 'त्त' 'ट्ट' हो गया है : पत्तर्ण पट्टर्ण (शहर) संस्कृत के 'ड' कार मलयालम में 'ल' या 'ळ' बन जाता : नाडिका नाळिका, सम्राड् सम्राट हिन्दी में भी ऐसी ध्वनि मिलती है। ण और न का परस्पर - विनिमय होता : तुणियुन्नु तुनियुन्नु (तैयार होता) मिनुक्कु मिणुक्कु (सुबे)

तवर्ग : तालव्यादेश से तवर्ग चवर्ग बन जाता । यह मलयाळं की विशेषता है : ऐन्नु अन्नु । 'त्त' 'च्च' बन जाता : स्थापित्तु स्थापिच्चु पदादि का स्वर व मध्यम के पूर्व में 'त' की वही ध्वनि होती, अकेले या पूर्ण व्यंजन के पहले उसकी 'ल' ध्वनि होती : उत्सव उल्सव । स्वरों के बाद 'त्' का 'ल' ध्वनि होती : पोन् + कुट पोल्कुट (पोन्कुट)

पवर्ग : कारित धातुओं का 'पकार' विकल्प में 'प' होता । केकुप्पान केल्प्पान (सुनने देना) सन्धि में तमिळ 'म' मलयाळं में 'व' हो जाता वर्न + उं वन्नु । प्रकृति का 'व' 'म' बनता है : अनुमन् मन्नन् । ये मलयाळं की विशेषताएँ हैं ।

मध्यम : मलयाळं में 'य' न बन जाता (पुर्ण नुर्ण) हिन्दी में 'य' 'ज' बनता : याति जाति पदादि में मूलद्राविड के र या ल न होते । ऐसे शब्दों में कोई स्वर मिलाकर शब्द-रूप बनाया जाता : लोकं उलकु, राजा अरचन् ।

ऊष्म तथा ष मूलद्राविड में नहीं । इसलिए अन्य भाषा के ऐसे शब्दों के उन वर्णों को छोड़ देते भाष्यं शोर्यं, सैवारम् चेवारम् । 'श' और 'ष' अपभ्रंश में 'स' को स्वीकार करता : शपथ सपथ । मलयाळं ने श और स को 'च' स्वीकार किया : मार्च वार्त्त ।

स्वरों के उच्चारण में मृदु की ध्वनि दोनों भाषाओं में मिलती है । 'ऋ' और 'लृ' किसी भी मूलभाषा में नहीं हुई होगी । वर्णों के उच्चारण में अ, इ, उ ही हम सबसे पहले सुनते हैं । इसके अनुसार ग, ड, उ के व्यापक व्यंजन भी पहले हो गये होंगे । व्यंजनों में क, च, प वर्णों का ही प्रचार पहले हुआ होगा । केरळपाणिनि ने अपने व्याकरण ग्रन्थ केरळ-पाणिनीयं में बताया है कि 'ट'वर्ग संस्कृत में नहीं था । आर्यों ने यह द्राविड़ों से स्वीकार किया[1], यहीं और एक पग आगे बढ़ना है । मूलभाषा में ट वर्ग या त वर्ग नहीं होते थे । भाषा के विकास में पहले तवर्ग फिर टवर्ग आ गये । आर्यों ने पहले तवर्ग फिर टवर्ग द्राविड़ों से प्राप्त किया । आगे चलकर व्याकरण में ऋ, लृ दो स्वर तथा ळ और ट वर्गों का विकास संस्कृत में हुआ । ऋ और लृ के लिए द्राविड़ र तथा ळ ने सहायता दी होगी ।

---

1. केरळपाणिनीयं - पीठिका - पृष्ठ 47.

भाषाओं में व और य पहले एवं र और ल पीछे आए होंगे । र और ल ड़ और ळ का विकसित रूप हो सकता है । सम्भवतः ये अन्तस्थ वायु के बहिर्गमन की विशेषता से ऊष्म वर्णों का आविर्भाव हुआ । श, ष, स वर्ण इस तरह भाषाओं में आ गए होंगे । द्राविड़ मूल - भाषा ने पहले इन्हें वर्ण के रूप में स्वीकार किया नहीं होगा ।

हिन्दी और मलयालम की आधुनिक लिपि ब्राह्मी लिपि के रूपान्तर हैं । इन लिपि की विशेषता यह है कि उनमें मिलाकर लिखने की सुविधा है । लिपि का सौन्दर्य भी इसकी विशेषता है । संयुक्ताक्षर बनाने की रीति दोनों भाषाओं में एक जैसी होती है । ये लिपियाँ देखने में सुन्दर तथा लिखने में सुविधा जनक होती हैं ।

सभी भाषाओं को - विशेषकर भारतीय भाषाओं को एक ही लिपि स्वीकृत हो तो सब भाषा - क्षेत्र में एक बड़ा सफल परिवर्तन होगा । उसके पहले भाषाओं में प्रचलित सभी ध्वनियों के लिए कुछ लिपि रूपों का होना आवश्यक है । इसके लिए लिपि - परिष्कार होना ही चाहिए ।

सन्धि :

उच्चारण की सुगमता तथा सरलता के लिए वर्णों को मिलाकर बोलने की रीति को सन्धि कहते हैं । सामान्य जनता की बोली में भी यह स्वभाव से आती है । दो या अधिक वर्ण पास आते तो कभी कभी उनमें रूपान्तर होता है । स्वर और व्यंजन के आधार पर स्वर - सन्धि तथा व्यंजनसन्धि होती है । इनके अलावा व्यंजन के साथ स्वर का एवं स्वर के साथ व्यंजन की भी सन्धि होती है । संस्कृत में विसर्गों के आधार विसर्ग सन्धि भी होती है । मलयालम में यह नहीं होता। सन्धि में कभी कभी एक वर्ण का लोप या एक वर्ण के स्थान पर दूसरे दूसरे का आदेश या बीच में एक नये वर्ण का आगम भी हो सकता है । इन विकारों के आधार पर सन्धि के कई भेद सभी भाषाओं में देखा जाता है ।

संस्कृत व्याकरण - पद्धति के अनुसार सन्धि तीन तरह की होती है : स्वरसन्धि, व्यंजन सन्धि एवं विसर्ग सन्धि । इनके कई भेद पाणिनि ने सूत्रों के द्वारा प्रमाणित किया है । 'अक : सवर्णे दीर्घ' ; 'वृद्धिरेचि' आदि सूत्रों से स्वरसन्धि के विभागों को दिखाया गया है ।

दीर्घ, वृद्धि, यण्, अयादि, ये स्वरसन्धि के विभाग होते हैं । इसी तरह व्यंजन तथा विसर्ग के भी भेद दिखाये गये हैं । पाणिनि ने स्वरसन्धि केलिए अच्सन्धि, व्यंजन सन्धि केलिए हल्सन्धि के नाम दिये गए हैं ।

हिन्दी तथा मलयालम में संस्कृत शब्दों का प्रयोग साधारण हो गया है । आवश्यकता के अनुसार दोनों भाषाएँ संस्कृत - शब्दों को स्वीकार करने से नहीं हिचकतीं । इसी कारण से दोनों भाषाओं में संस्कृत के बहुत से शब्द मिले हैं । इन शब्दों में सन्धि संबन्धी जो विकार आते हैं उन्हें समझ लेना तथा व्याकरण में उन्हें स्वीकार करना पड़ा है । अतः इनी व्याकरण ग्रन्थों ने संस्कृत अच् - हल् - विसर्ग सन्धियों को स्वीकार किया है ।

दोनों भाषाओं में अपने अपने सन्धि - कार्य होते हैं । हिन्दी में व्यंजनान्त शब्द नहीं । इसलिए स्वरों में ही अधिक - से अधिक विकार हो जाते हैं । स्वर का लोप हो जाने पर जब व्यंजन - मात्र रह जाता है तब पास के व्यंजन से उसकी सन्धि शुरू होती । अब, तब, जब, कब आदि अव्ययों के परे 'ही' आ जाने पर उन अव्ययों के अन्त्य - स्वर लुप्त हो जाते और ब् + ह मिलकर 'भ' बन जाता । फिर ई आकर अभी, तभी, जभी, कभी, शब्द बनते हैं । यह, वह, जो, कौन आदि सर्वनाम के परे 'ने' आदि विभक्ति - प्रत्यय जुड़ जाने पर इस, उस, जिस, किस आदि बन जाते हैं । उनमें 'ही' मिलाने पर इसी, उसी आदि शब्द - रूप धारण करते हैं । सन्धि में कहीं कहीं एक वर्ण का लोपाचार होता है : खरीद + दार खरीदार, 'खरीद' का अन्त्य 'द' लुप्त हो जाता है । सन्धि में ह्रस्व वर्ण की वृद्धि भी साधारण है : मूसल + धार मूसलाधार । विधि - अर्थ प्रकट करने केलिए हिन्दी में 'ए' प्रत्यय होता है जो संस्कृत के 'इय्' से आया हो । धातु का 'अ' और प्रत्यय 'ए' मिलाकर ए बन जाती है । पढ + ए पढे । दीर्घ स्वरान्त में 'ए' मिलने पर 'य''ए' बनता है सो + ए सोए । अकारान्त धातुओं से भिन्न अन्य स्वरान्त धातुओं से 'उ' मिलने पर 'ओ' हो जाता है : खा + उ खाओ । इ या ई के परे स्त्रीलिंग बहुवचन आँ मिलने पर याँ हो जाती : बुद्धि + आँ बुद्धियाँ । कोई अन्य स्वर स्त्रीलिंग शब्दों के अन्त में हो, तो सामने का आँ, एँ रूप में रहता : बहन बहनें(बहन + एँ) अ या इ, ई को छोड़कर किसी अन्य स्वर शब्द के अन्त में हो, तो 'एँ' उसी रूप में रहता : लता + एँ लताएँ । गौ + एँ गौएँ ।

शब्द के अन्त का 'ऊ' 'उ' बनता है : वधू + एं वधुएं ।

मलयालम की सन्धियाँ स्थान-भेद के अनुसार (1) पदमध्य सन्धि मरत्तिल (पेड़ पर) - मरं + इल् - बीच में 'त्त' आता है (2) पदान्त सन्धि पोन + पू पोन्पू (सोने का फूल) (3) उभय सन्धि मणियरयिल (सुन्दर कमरे में) मणियरा प्रकृति इल् प्रत्यय । सन्धि के वर्णों के आधार पर (1) स्वरसन्धि, (2) स्वरव्यंजन सन्धि (3) व्यंजन स्वर सन्धि एवं (4) व्यंजन सन्धि चार रूप दिखाये गये हैं । (1) मधु + इल्ला मधुविल्ला (दर्जा नहीं), (2) तामर + कुळं तामरक्कुळं (कमल सरोवर), (3) कण् + इल्ला कण्णिल्ला (आंखें नहीं), (4) नेल् + मणि नेन्मणि (धान का दाना) ।

सन्धि करते समय जो विकार होता है उसके अनुसार लोप, आगम, द्वित्व तथा आदेश चार तरह की सन्धियाँ होती हैं ।

(1) अर्त + अल्ला अत्तल्ला (लोप - संवृत उकार का लोप) - वह नहीं

(2) मधु + इल्ला मधुविल्ला (व आगम) - दर्जा नहीं

(3) अधिटे + पोयि अविटेप्पोयि (प का द्वित्व) - वहाँ गया

(4) एण् + नूरु एण्णूरु (न का ण आदेश) - आठ सौ

सन्धि में वर्ण - विकार ही होता है । इसलिए सन्धि - कार्य में लोप, आगम, द्वित्व तथा आदेश चार रूप स्वीकार करना सुविधा - जनक है । द्वित्व तो आगम का ही एक भेद होता है ।

(1) लोप में स्वरों का लोप होता है : वरिक + एटो वरिकेटो - आओ

(2) आगम में य या व का आगम होता, तालव्य को या और ओष्ठ्य को व के + उन्ट केयुन्ट, (साथ होता है) पो + उन्नु पोवुन्नु (जाता है) (3) द्वित्व में एक ही वर्ण का द्वित्व होता है पशु + दान पशुद्दान (गोदान) (4) आदेश में एक वर्ण लुप्त होकर उसके स्थान में एक अन्य वर्ण आता है : विण् + तलं विण्टलं (त का ट आदेश हुआ (आसमान)

समीक्षा : मलयालम द्राविड - व्याकरण की अनुयायी है । हिन्दी संस्कृत व्याकरण की । अतः सन्धि कार्यों में काफी अन्तर होता है । पर संस्कृत सन्धि दोनों में एक ही तरह प्रयुक्त है । सन्धिस्वर में भी अन्तर नहीं : अ + इ ए, अ + उ ओ, अ + औ औ दोनों भाषाओं में समान है । मलयालम में ह्रस्व ए और ओ भी होते हैं । स्वर लोप, य और व का आगम दोनों भाषाओं में समान है ।

वर्ण - विकार के आधार पर सन्धियों का भेद यानी लोप, आगम, द्वित्व तथा आदेश दोनों भाषाओं में प्रामाणिक माना जा सकता है । अन्य सभी भेद इनके अन्तर्गत रहते है अघोष क, च, ट, त, प सघोष ग, ज, ड, द, ब में ध्वनिपरिवर्तन सिद्धान्त दोनों भाषाओं में सामान्य रूप से देख सकते है ।
कंकण कंगण, अंतर अंदर आदि ध्वनि भेद दोनों में होते है ।
शब्दभेद :

वैयाकरणों ने शब्द भेदों के विभिन्न रूप दिखाये है । संस्कृत व्याकरण में शब्दों को सुबन्त और तिङन्त दो भागों में बांटा है । इनके अलावा अव्यय भी होते है । सुबन्त के अजन्त तथा हलन्त दो विभाग दिखाये गये है । विभक्ति सहित पद ही 'पद' होते है । विभक्ति रहित को प्रातिपदिक कहा जाता है । प्रत्यय रहित तिङन्त को धातु कहते है । निरुक्त में शब्दों को संज्ञा, वृत्ति, भेदक, अव्यय तथा निपात पाँच भागों में बांट दिया है । निरुक्त का यह विभाजन कई वैयाकरणों ने प्रामाणित माना है । किसी ने शब्दों को वाचक और द्योतक मानकर फिर वाचक के संज्ञा, वृत्ति, भेदक एवं द्योतक को अव्यय एवं निपात दिखाये हैं ।

हिन्दी में शब्दों की व्युत्पत्ति की दृष्टि से तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी नामक चार विभागों में बांटा जा सकता है । बिना किसी परिवर्तन के संस्कृत के जो शब्द हिन्दी में प्रयुक्त होते है उन्हें तत्सम कहते है । तद्भव वे शब्द है जो प्राकृत तथा अपभ्रंश से हिन्दी में आये है और ध्वनि संबन्धी परिवर्तन हो चुके है । हिन्दी में प्रचलित शब्द जो अन्यभाषा से संबन्धित नहीं उन्हें देशी कहते है । अरबी, फारसी, पुर्तुगाली, अंग्रेज़ी आदि बाहर की भाषाओं से लिए हुए विदेशी शब्द होते है । आधुनिक हिन्दी जिसमें नये युग का भारतीय साहित्य रचा जा रहा है, संस्कृत शब्दों को बिना किसी रूपपरिवर्तन के ग्रहण करती है । भाषा की उपयोगिता तथा अभिव्यंजना-शक्ति के साथ - साथ तत्सम-शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग होता रहता है ।

मलयाळम के शब्दों को भी तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता । संस्कृत और प्राकृत के शब्दों को बिना परिवर्तन के जब प्रयुक्त होते तो उन्हें तत्सम कहते है । ऐसे शब्द जब भाषा की ध्वनि - रीतियों के अनुसार परिवर्तित हो जाने पर तद्भव होते है । मलयाळम या अन्य द्राविड भाषाओं से ग्रहण किये गए शब्दों को देशी कह सकते

अरबी, फारसी, पोर्तुगाली, फ्रेंच, अंग्रेज़ी आदि विदेशी भाषाओं से आए हुए शब्द विदेशी होते प्राचीन काल से ही केरल तथा विदेशों से व्यापारिक संबन्ध रहने के कारण भाषा में कई विदेशी शब्द आए हैं। मलयाळम में तत्सम शब्द बहुत ही कम प्रयुक्त होते : अतः, अथवा साधारणतः स्वर्ग, पूजा, सज्जा, चिन्ता, नाना, गुरु, वायु, कवि आदि कुछ शब्द ही होते हैं। बोलचाल की भाषा में इनका प्रयोग और भी कम है। पर तद्भव शब्द बहुत अधिक हैं।

संस्कृत के आकारान्त हिन्दी में तत्सम होते, पर मलयाळम में दीर्घ ह्रस्व करके लिये भी होते जाते : (सं) सुधा (हि) सुधा (म) सुध रमा, राधा, सीता, लता आदि शब्दों में इस तरह का विकार होता है। संस्कृत के ईकारान्त, मलयाळम में 'इ' कारान्त होते नदी नदि। संस्कृत के ऋ कारान्त हिन्दी में आकारान्त होते, मलयाळम में दीर्घ अकार के साथ र् भी प्रयुक्त होते : (सं) पितृ (हि) पिता (म) पितार्व। मातृ, भ्रातृ, स्वसृ, विधातृ, दातृ शब्दों में ऐसा विकार होता है। ए और ओ के ह्रस्व तथा दीर्घ दो रूप मलयाळम में होते पर संस्कृत-हिन्दी में दीर्घ रूप ही मिलता है।

देशी शब्द दोनों भाषाओं में असंख्य होते हैं। मलयाळम के देशी शब्द उसी रूप में या लघु परिवर्तन के साथ अन्य द्राविड भाषाओं में देखे जाते हैं :- कण्, मूक्क्, कै, [illegible], [illegible] वाय्, पल्, ती, वीट्, ऊर्, नाय् आदि शब्द तमिल, कन्नड, तेलुगु, तुळु आदि भाषाओं में हम देख सकते हैं। देशी पदों का संबन्ध मलयाळम एवं तमिल में स्पष्ट-रूप से देख सकते हैं।

हिन्दी तथा मलयाळम में कई विदेशी शब्द करीब-करीब एक ही रूप में प्रयुक्त हैं : अक्ल, आमीन, कचहरी, कैफियत, जमा (वसित) जब, ताना (थाना), हजूर, हाज़िर, बदल, वकील आदि। अंग्रेज़ी के बहुत से शब्द उसी रूप में प्रयुक्त हैं : कार, बैसिकिल, फुटबाल, [illegible], टिकट, टेलिविजन, डाक्टर, नर्स, प्लाटफार्म, स्टेशन, रेल, स्कूल, मास्टर, स्टाम्प, स्टोर, सिनेमा, पेन, पेन्सिल आदि। पोर्तुगाली के मेज़, कुर्सी, अलमारी, [illegible] आदि शब्द भी दोनों भाषाओं में अल्पमात्र परिवर्तन के साथ देख सकते हैं।

स्वरूप के आधार पर संस्कृत-व्याकरण-पद्धति एवं अंग्रेज़ी-व्याकरण-पद्धति के अनुसार दोनों भाषाओं के शब्द विभाजित किये गये हैं। किसी ने शब्दों को वाचक और द्योतक दो रूप दिए हैं और किसी ने संज्ञा, वृत्ति, निपात तथा अव्यय चार रूप दिखाये हैं।

पं. कामताप्रसाद गुरु ने संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रियाविशेषण, संबंध-सूचक, समुच्चय बोधक तथा विस्मयादि बोधक आठ रूप दिये हैं। यह अंग्रेज़ी - व्याकरण- पद्धति के अनुसार किया गया है। इनका अनुसरण करते हुए हिन्दी के कई आधुनिक वैयाकरणों ने व्याकरण लिखे हैं। मलयालम के किसी प्रामाणिक व्याकरण ग्रन्थ में ऐसा विभाजन नहीं किया गया है। केरलपाणिनि ने संज्ञाओं के विभाग में भेदनाम को भी स्वीकार किया है। आधुनिक काल में लिखे हुए व्याकरणों में अंग्रेज़ी - पद्धति के अनुसार आठ विभाग स्वीकृत किये गये हैं।
समीक्षा ; दोनों भाषाओं में तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी शब्द होते हैं। हिन्दी में तद्भव और तत्सम शब्द अधिक होते हैं क्यों कि हिन्दी की निष्पत्ति संस्कृत - प्राकृत - अपभ्रंश से हुई है। मलयालम द्राविड - मूल भाषा से उत्पन्न होने से संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों की कमी होती है। आर्य भाषा संस्कृत ने केरल - भाषा से मिलकर मलयालम के विकास में बड़ी सहायता दी, पर मलयालम पर अधिकार कर न सकी। मलयालम अपनी पारिवारिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखने में सफल हुई है।

रूप के आधार पर दोनों भाषाओं ने जो पद्धति अपनायी उनमें समानता होती है दोनों भाषाओं के वैयाकरणों में किसी ने सर्वनाम को संज्ञा का भेद दिखाया है और किसी ने अलग द्योतक शब्दों को अव्यय तथा निपात दो विभागों में दोनों भाषाओं ने विभाजित किया है। दोनों भाषाओं में निपात की संख्या बहुत कम है। किसी ने भेदक को उसी नाम में और किसी ने 'विशेषण' नाम से स्वीकार किया है। लिंग - वचन - विभक्ति की बातों में स्पष्टता केलिए अलग अध्याय दिया गया है।

सर्वनाम :

किसी भी संज्ञा के बदले आनेवाले शब्द को सर्वनाम कहते हैं, हिन्दी में ग्यारह सर्वनाम होते हैं : मैं, तू, आप, यह, वह, सो, जो, कोई, कुछ, कौन और क्या। प्रयोग के अनुसार सर्वनाम के छः भेद होते हैं : पुरुषवाचक, निजवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, संबंधवाचक और प्रश्नवाचक। पुरुषवाचक के तीन भेद होते हैं उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष तथा अन्यपुरुष। 'यह' समीपस्थ केलिए और 'वह' दूरस्थ केलिए प्रयुक्त होते हैं। 'आप' हिन्दी में आदरात्मक सर्वनाम है। 'तू' छोटों केलिए 'तुम' बराबरों केलिए 'आप'

कहीं केवल प्रयुक्त होते हैं। 'आप' का प्रयोग कभी-कभी अन्यपुरुष में भी होता है। 'अपना' स्ववाचक अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'कौन' प्रश्नवाचक सर्वनाम है। 'कोई' अनिश्चयवाचक और 'क्या' एवं 'कुछ' अवाचक अन्य सर्वनाम होते हैं।

कई वैयाकरणों ने सर्वनाम को संज्ञा का एक विभाग बताया है। संज्ञा में आने वाले लिंग - वचन - विभक्ति - भेद इनमें भी आते हैं। इसलिए संज्ञा के विभाग में उनको रखना उचित ही है।

मलयालम में निम्नलिखित सर्वनाम होते हैं: एन्, निन्, अ, इ, उ, ओरु, ए, या, ए, आर्, एन्तु, चिला, पला, एल्ला, तन्, मिक्क, मात्र, अन्ना। इनमें एन् उत्तमपुरुष सर्वनाम है। निन् मध्यमपुरुष; अ, इ, उ, ओरु, निश्चय सर्वनाम, ए, या आक्षेपक ए, आर्, एन्तु, प्रश्नवाचक, चिला, पला मात्रार्थक, एल्ला निश्चितवाची, एल्ला सर्ववाची, तन् स्ववाची, मिक्क [illegible] मात्र [illegible] अन्ना [illegible] सर्वनाम होते हैं। उत्तमपुरुष सर्वनाम की प्रकृति 'एन्' है। यह 'यान्' होकर 'ञान्' बना, फिर 'ञान्' हो गया। इसका बहुवचन 'ञङ्ङळ' होता है। 'ञान्' के बहुवचन रूप में 'नाम्', 'नम्मळ्' भी प्रयुक्त होते हैं। मध्यम पुरुष सर्वनाम 'नी' बहुवचन में निङ्ङळ् हो जाता है। हिन्दी में तू के जैसे 'नी' का प्रयोग छोटों से होता है। समानों से 'निङ्ङळ' और आदर सूचक में 'ताङ्कळ' प्रयुक्त होते हैं। अङ्ङ्, अविटुन्न आदि शब्द भी इस रूप में प्रचलित होते हैं। अन्यपुरुष सर्वनाम अवन्, इवन्, ओरुवन् होते हैं। लिंग वचनानुसार इनमें विकार होते हैं। अवळ्, इवळ् और ओरुवळ् स्त्रीलिंग में तथा अवर्, इवर् बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं। प्राचीन काल में 'उ' भी सर्वनाम के रूप में प्रयुक्त होते थे। अब वह प्रचलित नहीं। पर देश - भेद से ओन्, ओळ्, ओर् आदि शब्द ओलस्सरि की भाषा में सुनाए जाते हैं। ये शायद उ सर्वनाम के विभिन्न रूप होंगे। 'तन्' स्ववाची सर्वनाम होता है। पर यह मध्यमपुरुष सर्वनाम के रूप में भी प्रयुक्त होता है। मध्यमपुरुष में इसका रूप 'तान्' हो जाता है। उत्तमपुरुष का 'ञान्' विभक्ति प्रत्यय जुड़ने पर 'एन्' हो जाता है और 'तान्' 'तन्' हो जाता है।

समीक्षा

हिन्दी और मलयालम में सर्वनामों की संख्या सीमित है। दोनों भाषाओं में पुरुषवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, प्रश्नवाचक आदि विभाग होते हैं। लिंग-प्रत्यय मलयालम की एक विशेषता है। हिन्दी में एकवचन प्रयोग के अनुसार समझ लेना पड़ता है। दोनों भाषाओं में ये सर्वनाम सार्वनामिक विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी उत्तमपुरुष सर्वनाम 'मैं' और 'हम' का प्रयोग एकवचन में प्रचलित है। ऐसा प्रयोग मलयालम में भी होता है। वहाँ 'ञान्' या 'नाम्मळ्' प्रयुक्त होते हैं। मध्यमपुरुष में भी समानता होती। हिन्दी 'तू' के स्थान पर मलयालम में 'नी', तुम के स्थान पर 'निङ्ङळ्' और 'आप' के स्थान पर ताङ्कळ्, अङ्ङु, निङ्ङळ आदि प्रयुक्त होते हैं। अन्यपुरुष बहुवचन रूप वे, ये आदरार्थक एकवचन में प्रयुक्त करने के जैसे मलयालम में अद्देहम्, इद्देहम्, अङ्ङोर आदि प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी में व, उ से जैसे वह और यह बने वैसे मलयालम में इ और अ से इवन्, अवन्, इवळ्, अवळ्, इतं, अतं बन गए। हिन्दी में जैसे ऐसा, वैसा बने वैसे ही 'इङ्ङने' और 'अङ्ङने' मलयालम में भी हुए। मलयालम में अता, इता, अविटम्, इविटम् आदि शब्द भी अ और इ से मिलते हैं। हिन्दी के कई सर्वनाम प्राकृत से आए हुए हैं मलयालम में मूलद्राविड भाषा से ये आए हैं।

उत्तमपुरुष सर्वनाम 'मैं' कर्ता-कारक को छोड़कर अन्य सभी कारकों में विकृत रूप धारण करता है। मलयालम में भी यह विकार होता है। 'ञान्' के स्थान पर 'एन्' होकर विभक्ति प्रत्यय जुड़ जाते हैं। हिन्दी में 'मैं' 'मुझ' बनता है। हिन्दी में कर्म कारक और सम्प्रदान कारक में दो-दो रूप होते हैं। संबन्ध में लिंग वचन के अनुसार तीन रूप होते हैं। हिन्दी के मध्यमपुरुष एकवचन में भी ऐसा विकार होता है। यह, वह, जो और कौन सर्वनामों के दोनों वचनों में विभक्ति-प्रत्यय के योग में ऐसे विकार होते हैं। मलयालम में ऐसी कोई बात नहीं है। पर मलयालम के कोई विभक्ति नहीं आती। अन्य विभक्तियों में सम्प्रदान तथा संबन्ध के रूप से अधिक प्रत्यय होते हैं। पर शब्दों के अधिक रूप नहीं होते। तत्काल के अनुसार भिन्न प्रत्ययों का प्रयोग होता है। जैसे अवन् अवनै(उसको), अवर् अवरै (उनको), अवन् अवन्टे(उसका), अवर् अवरुटे (उनका)। सर्वनामों की [illegible] दोनों

भाषाओं में समान होती है । 'सबको अपना - अपना काम करना है' वाक्य मलयालम में '[illegible] ।' अपना - अपना के स्थान पर '[illegible]' प्रयुक्त होता है । हिन्दी के अधिकरण के दो प्रत्यय होते है - में, पर । इस तरह हम देख सकते है कि प्रयोग में दोनों भाषाओं के सर्वनाम कई कार्यों में समान होते हैं ।
('तान' आप जैसे अन्य पुरुष में भी आता है)

नामविकार
- - - - -

अलग - अलग अर्थ सूचित करने केलिए संज्ञा तथा सर्वनाम में लिंग, वचन और कारक के कारण रूपान्तर होता है । सृष्टि की संपूर्ण वस्तुओं की दो मुख्य जातियाँ होती हैं चेतन और जड़ । चेतन वस्तुओं में पुरुष और स्त्री जाति का भेद होता है । पर जड़ पदार्थों में यह भेद नहीं होता । इसलिए संपूर्ण वस्तुओं की एकत्र तीन जातियाँ होती हैं - पुरुष , स्त्री और जड़ । इन तीन जातियों के विचार से व्याकरण में शब्दों को तीन लिंगों में बाँटा है - पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग । कई भाषाओं में तीन - तीन लिंग होते हैं । हिन्दी में दो ही लिंग होते है पुलिंग और स्त्रीलिंग । जिस संज्ञा से पुरुषत्व का बोध होता है उसे पुलिंग कहते है - लड़का, भाई । जड़ - पदार्थों को उनके कुछ विशेष गुणों के कारण सचेतन मान लिया गया है । जिन पदार्थों में कठोरता, बल, भद्दता, आदि गुण देखते है उनमें पुरुषत्व की कल्पना करके पुलिंग में मिलाये गए हैं । - पेड़, नगर आदि । जिस संज्ञा से स्त्रीत्व का बोध होता है उसे स्त्रीलिंग कहते है - लड़की, गाय । जिन जड़ - पदार्थों में नम्रता , कोमलता, सुन्दरता आदि गुण दिखाई देते हैं उनमें स्त्रीत्व की कल्पना करके स्त्रीलिंग में रखे गए हैं - लता , पुरी ।

हिन्दी में लिंग का पूर्ण निर्णय करना कठिन है । लिंग निर्णय केलिए कई नियम दिए गए है , पर उनके अपवाद भी होते है । लिंग - परिवर्तन के कई नियम दिए गए हैं । वचन : संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप में संख्या का बोध होता है उसे वचन कहते है । हिन्दी में दो वचन होते है, एकवचन और बहुवचन । हिन्दी में ऐसे बहुत से शब्द होते हैं जिनके एकवचन तथा बहुवचन रूप एक ही होता है।* पर विभक्ति सहित शब्दों में इनके अलग अलग रूप होते हैं । आकारान्त पुलिंग शब्दों के बहुवचन एकारान्त होते हैं - लड़का लड़के ।

विभक्ति सहित हो जाने पर एकवचन में 'लड़के ने' और बहुवचन में 'लड़कों ने' हो जाते हैं। ईकारान्त स्त्रीलिंग बहुवचन में 'ई' ह्रस्व करके 'याँ' मिलाकर बहुवचन बनाते हैं - लड़की लड़कियाँ। विभक्ति सहित एकवचन 'लड़की ने' और बहुवचन 'लड़कियों ने' होते हैं। इकारान्त में 'याँ' लगाई जाती - तिथि तिथियाँ। अकारान्त स्त्रीलिंग में एँ जोड़कर बहुवचन बनाते हैं - कलम कलमें। आकारान्त और औकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों में 'एँ' जोड़कर और ऊकारान्त में प्रत्यय के पहले 'ऊ' को ह्रस्व करके बहुवचन बनाते हैं - लता - लताएँ, गौ गौएँ बहू बहुएँ। विभक्ति सहित इनके रूप पूर्वोक्त के समान होते हैं। पुल्लिंग बहुवचन में भी इसी प्रकार का परिवर्तन होता है - साधुओं को, कवियों में। उर्दू शब्दों के बहुवचन बनाने के कई अन्य प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं।

कारक और विभक्ति :- कारक और विभक्ति के अर्थ अलग - अलग होते हैं। कारक का लक्षण करते हुए पाणिनि ने लिखा है - "क्रियान्वयित्वं कारकत्वं"। कर्ता, कर्म, करण आदि को कारक इसलिए कहा जाता है कि नाम - पद के क्रिया - पद के साथ अन्वय हो। संबन्ध को संस्कृत में कारक नहीं माना गया क्यों कि संबन्ध का क्रिया से कोई संबन्ध नहीं होता। आज भी यह एक विवादास्पद विषय हो रहा है। कारकों की संख्या छह मानी गई है। क्रिया का कर्ता के साथ अति निकट संबन्ध है। कर्म के साथ में निकट संबन्ध है। अन्य कारकों के साथ गौण - संबन्ध ही होता है। पाणिनि का उद्देश्य व्याकरण को संक्षिप्त रूप में उपस्थित करना था। इस दृष्टि से उन्होंने अपनी पद्धति लगाई। परवर्ती आचार्यों के साथ संक्षेपण की समस्या नहीं थी, अतः अर्थ की दृष्टि से कारक और विभक्ति का विश्लेषण करना उनका कर्तव्य था। प उन्होंने इसका प्रयास नहीं किया। इसी कारण से कारक और विभक्ति का अर्थ जटिल रहता है अब तक के सभी वैयाकरणों ने पाणिनि का कथन उसी रूप में दुहराया है।

शब्दों को विभक्त करके उनका परस्पर सम्बन्ध अपने प्रत्ययों से विभक्ति दिखा देती है। हिन्दी व्याकरण ग्रन्थों में सामान्यतः आठ विभक्तियों को दिखाया गया है। किसी ने संबोधन छोड़कर सात विभक्तियाँ दिखाई हैं। संबोधन में शब्द रूप को विकार क्रम होता है। कारकों का सामान्य रूप ऐसा दिखाया गया है -

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	बालक, बालक ने	बालक, बालकों ने
कर्म	बालक को	बालकों को
करण	बालक से	बालकों से
सम्प्रदान	बालक को	बालकों को
अपादान	बालक से	बालकों से
संबन्ध	बालक का, के, की	बालकों का, के, की
अधिकरण	बालक में, बालक पर	बालकों में, बालकों पर
संबोधन	हे बालक	हे बालको

विभक्तियों के द्वारा कारकों की अभिव्यक्ति के अलावा उनके कुछ स्वतन्त्र अर्थ भी होते हैं। कोई भी विभक्ति किसी एक कारक से ही जुड़ी नहीं रहती। कर्तृवाच्य में प्रथमा विभक्ति के द्वारा कर्ता कारक का द्योतन होता है, किन्तु कर्मवाच्य में प्रथमा विभक्ति के द्वारा ही कर्म की अभिव्यक्ति होती है। 'राम : 'रोटिकां खादति', यहाँ प्रथमा विभक्ति के द्वारा कर्ता का बोध होता है। 'रामेण रोटिका खाद्यते'। यहाँ प्रथमा विभक्ति के द्वारा कर्म का बोध होता है। इसके अलावा कहीं कहीं करण या अधिकरण के अर्थ में भी प्रथमा विभक्ति आती है। 'स्थाली पचति'। इसमें स्थाली अधिकरण के अर्थ में तथा '' कुठार छिनत्ति' में कुठार करण के अर्थ में प्रथमा विभक्ति में प्रयुक्त हुए हैं। संस्कृत में होनेवाले प्रयोगों को उसी रूप में भाषा में लाने के कारण ऐसी जटिलता हुई है। हिन्दी में सरल और सीधा प्रयोग ही होता है। इसमें संस्कृत - व्याकरण - पद्धति का अन्धा अनुकरण करने से ही इस विषय में इतनी अधिक दुरूहता और अस्पष्टता हो गई है।

मलयालम में लिंग निर्णय प्रकृति से आधारित है। चेतनता वालियों केलिए विशिष्ट मनुष्यों केलिए ही दी गई है। उनमें ही पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग का भेदभाव दिखाते हैं। पेड़ - पौधे, पत्थर आदि सब अचेतन वस्तुएँ हैं इसलिए नपुंसक हैं। यह अधिक नीतिनिष्ठ होता है। लिंग परिवर्तन के कई नियम मलयालम व्याकरणों में भी दिखाए हैं।

मलयालम में दो ही वचन होते है - एकवचन और बहुवचन । नपुंसकलिंग में बहुवचन एवं साधारण नहीं था । संज्ञा के परे किसी भी लिंग में बहुवचन प्रत्यय की आवश्यकता नहीं थी । लेकिन अब बहुवचन प्रत्यय सभी लिंगों में प्रयुक्त होते है ।

कारक - विभक्ति की जटिलता मलयालम में भी देखी जाती है । पर इन दोनों को अलग - अलग दिखाने के कारण अस्पष्टता की कमी होती है । मलयालम में सात विभक्तियाँ है । इनका रूप, अर्थ, प्रत्यय आदि दिखाए जाते है ।

	विभक्ति	अर्थ	प्रत्यय	उदाहरण	हिन्दी परिभाषा
1.	निर्देशिका	कर्ता	-	रामन्	राम
2.	प्रतिग्राहिका	कर्म	ए	कृष्णने	कृष्ण को
3.	संयोजिका	साथ	ओटु	रामनोटु	(राम से)
4.	उद्देशिका	स्वामि	क्कु या उ	अवन्नुक्कु, अवनु	(उसको)
5.	प्रयोजिका	हेतु	आल्	भाग्यत्ताल्	(भाग्य से)
6.	संबन्धिका	स्वत्व	उटे	जानकियुटे	(जानकी का)
7.	आधारिका	अधिकरण	इल्, कल्	मेत्तयिल्	(बिस्तर में)

व्यंजनान्त शब्दों में 'इन्' जोड़कर प्रत्यय जोड़ता है ।

(राजाव् + इन + ए = राजाविने (राजा को)

केरल पाणिनि ने विभक्तियों के बाद विभक्त्याभास एवं कारकों का विवरण दिया है मलयालम में एक ही विभक्ति का भिन्न कारकों में प्रयोग कम होता है । कर्तरि प्रयोग की प्रधानता मलयालम में होती है ।

समीक्षा
- - -

हिन्दी तथा मलयालम दोनों ने सात और सभी प्रयोगों को स्वीकार किया है । क्रिया का संबन्ध सबसे अधिक कर्ता पर आधारित है । कर्म में भी वह एक सीमा तक संबन्धित होता है । संस्कृत के जैसे एक ही विभक्ति का कई कारकों में प्रयुक्त होना इन दोनों भाषाओं के स्वभाव के विरुद्ध होता है । लीलातिलककार ने सात विभक्तियों को दिखाया है ।

संबोधन को जोड़ने पर उनकी संख्या आठ होती है । उन्होंने विभक्तियों को कोई विशेष नाम नहीं दिया है । प्रत्यय ऐसा दिखाया है :-
'' ऐवर, ऐ, ओटु, कु, इन, अतु, कण्, विळि, वैगा '' । महाभाष्य में इन प्रत्ययों को ही स्वीकार किया गया और विभक्ति - नाम भी दिए गए । हिन्दी में विभक्तियों और कारकों का एक ही नाम देने से जटिलता आ गई है । कर्ता, कर्म, करण आदि कारकों तथा विभक्तियों को सूचित करने के लिए प्रयुक्त किए गए हैं । संस्कृत के विभक्ति - शब्दों को स्वीकार करने पर शायद इस विषमता से विमुक्ति पा सकते हैं ।

हिन्दी के 'ने' प्रत्यय के बारे में किशोरीदास वाजपेयी का मत है कि संस्कृत के ' आत्मनेन ' तृतीया - विभक्ति - रूप से इसकी निष्पत्ति हुई है । वे बताते हैं कि 'ने' प्रत्यय से भाषा में स्पष्टता होती है । वे उदाहरण के रूप में '' राम - वचन सीता तब बोला में सीता के बाद 'ने' न होने से क्रिया की कर्म - वाच्यता स्पष्ट है । यह बिलकुल असंगत होता है । प्राचीन भाषाओं में 'ने' का अभाव था । 'ने' को छोड़ने से भाषा की कोई हानि नहीं होगी । अपितु, भाषा के अध्ययन में सरलता होगी ही ।

- - - - - -

पाँचवाँ अध्याय

संख्यावाचक :-

हिन्दी के संख्या शब्द संस्कृत से आए हुए हैं । संस्कृत - प्राकृत - हिन्दी - रूप नीचे दिये जाते हैं ।

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
एकम्	एक्क	एक
द्वौ	दो	दो
त्रीणि	तिण्णि	तीन
चत्वारि	चत्तारि	चार
पंच	पंच	पाँच

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
षट्	छ	छः
सप्त	सत्त	सात
अष्ट	अट्ठ	आठ्
नव	नव	नौ
दश	दस	दस
विंशति	वीसइ	बीस
त्रिंशत्	तीसा	तीस
चत्वारिंशत्	चत्तालिस	चालीस
पंचाशत्	पंचासा	पचास
षष्टि	सट्ठी	साठ
सप्तति	सत्तरि	सत्तर
अशीति	असीइ	अस्सी
नवति	नउअइ	नब्बे
शतम्	सय, सउ	सौ

गिनती की संख्याओं के अलग - अलग नाम हैं -

हजार - फारसी का तत्सम शब्द, सहस्र का तद्भव भी माना जा सकता । लाख - लक्ष का तद्भव है । करोड़ - कोटि से मिलता - जुलता शब्द है । अरब - अर्बुद से संबन्धित शब्द है ।

अपूर्ण संख्या शब्द :

पाद	पाअ	पाव
अर्ध	- -	आधा
अध्यर्ध	दिवड्ढा	डेढ़
अर्धतृतीय	- - -	अढ़ाई, ढाई
सार्ध	- - -	साढ़े

पौना शब्द 'पाव न' के अर्थ में होगा । तीन से लेकर पूर्ण संख्या के पहले 'साढ़े' मिलाकर साढ़े तीन, साढ़े चार आदि प्रयुक्त होते हैं ।

दहाई की संख्या सूचित करने में इकाई और दहाई के अंकों का उच्चारण बदल जाता है ।

एक - इक	बीस - ईस
दो - बा, ब	तीस - तीस
तीन - ते, तिर, ति	चालीस - तालीस
चार - चौ, चौं	पचास - वन, पन
पांच - पच, पैं	साठ - सठ
छह - छ, छि, छिया	सत्तर - हत्तर
सात - सै	अस्सी - आसी
आठ - अड़, अठ	[illegible] -
नौ - उन, इन	नब्बे - नबे

बीस से लेकर अस्सी तक प्रत्येक दहाई के नाम के पहले की संख्या सूचित करने के लिए उस दहाई के नाम के पहले 'उन' शब्द का प्रयोग करते हैं । जैसे उन्नीस, उनतीस आदि । यह शब्द संस्कृत के 'ऊन' शब्द का अपभ्रंश है । नवासी और निन्यानबे में क्रमशः नव, निन्य जोड़े जाते हैं । संस्कृत में इन संख्याओं के रूप नवाशीति और नवनवति हैं । सौ से ऊपर की संख्या बताने के लिए एकाधिक शब्दों का उपयोग किया जाता है । जैसे - एक सौ पच्चीस (125), दो सौ पचहत्तर (275) । सौ और दो सौ के बीच की संख्याएँ प्रकट करने के लिए कभी-कभी संख्या को पहले कहकर फिर बड़ी संख्या बोलते हैं । इकाई के साथ 'ओत्तर' (उत्तर) और दहाई के साथ आ जोड़ा जाता है जैसे अठोत्तर सौ (108) ।

क्रमवाचक विशेषण पूर्णांक बोधक संख्याओं से बनते हैं । पहले चार क्रमवाचक विशेषण निम्नांकित हैं : पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा । पांच से लेकर आगे के शब्दों में 'वाँ' जोड़ने से क्रमवाचक विशेषण होता है : पाँचवाँ, दसवाँ, पचासवाँ आदि । सौ से ऊप

की संख्याओं में पिछले शब्द के अन्त में वाँ लगाते है : जैसे एक सौ तीसवाँ । कभी-कभी संस्कृत क्रमवाचक विशेषणों का भी प्रयोग होता - द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ आदि । गुना शब्द लगाने से आवृत्ति वाचक विशेषण बनते है । गुना शब्द लगाने पर दो से आठ तक की संख्याओं के आदिस्वर का विकार होता है : दो - दुगुना, तीन - तिगुना, चार - चौगुना, पाँच - पचगुना, छह - छगुना, सात - सतगुना, आठ - अठगुना । कभी-कभी संस्कृत के आवृत्तिवाचक शब्द प्रयुक्त होते : द्विगुण, त्रिगुण आदि । पहाड़ों में आवृत्तिवाचक जो अपूर्ण - संख्यावाचक विशेषणों के रूपों में कुछ अन्तर होता है : दूने, तिया आदि । परत या प्रकार के अर्थ में हरा जोड़ा जाता है : इकहरा, दुहरा, तिहरा आदि ।

मलयालम के संख्यावाचक :
- - - - - - - - - - - -

मलयालम के संख्यावाचक आदि द्राविड़ से आए हुए है ।

ओर - ओन्नु	आरु - आरु
इरु - इरण्टु (रण्टु)	एलु - एष़ु
मू - मून्नु	एण् - एट्टु (एट्टु)
नाल् - नालु	ओम्पतु - तोन्पतु (ओंपतु)
ऐ - अञ्चु	पत्तु - पत्तु

तोळ् - ऊनतावाचक प्रत्यय होता है । इसे लगाते हुए तोन्पतु (ओंपतु - 9), तोण्णूरु (90), तोळ्ळायिरं (900) आदि संख्याशब्द बनाए जाते है । संस्कृत का सहस्र, कन्नड़ में सासिर और मलयालम में आयिरं (1000) हो गया है । दस से सौ तक की संख्याओं को दिखाने के लिए दहाई का शब्द पहले आता है और इकाई का बाद में : इरुपत्तोन्नु (21) मुप्पत्तिरण्टु (32) अरुपत्तञ्चु (65) आदि । सौ के बाद संख्याशब्दों के रूप में हिन्दी तथा मलयालम एक जैसी होती है । चार सौ पच्चीस के लिए मलयालम में नानूट्टि इरुपत्तञ्चु कहते है । लाख एवं कोटि के लिए संस्कृत रूप ही स्वीकार किए गए है ।

अपूर्ण संख्याओं के लिए अलग - अलग शब्द प्रयुक्त होते हैं । एक चौथाई के लिए 'काल', आधा के लिए 'अरा' एवं पौने के लिए 'मुक्काल' प्रयुक्त होते हैं । अन्य अपूर्ण संख्याओं के लिए भी अलग - अलग नाम होते हैं । पहाड़ों में रंडारु पन्त्रण्ड् (2x6 = 12), मूवेलु इरुपत्तोन्नु (3x7 = 21) आदि प्रयोग होते हैं ।

उपसर्ग, अव्यय, निपात एवं प्रत्यय :

संस्कृत में उपसर्गों को धातुओं के साथ जोड़ने से उनके अर्थ में हेर - फेर होता है । जैसे :

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहार संहार विहार परिहार वत् ।।

हिन्दी में उपसर्गयुक्त तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुप्रचलित है । ये उपसर्ग कभी - कभी ठेठ हिन्दी शब्दों में भी प्रयुक्त होते हैं । अ, अध, उन, औ, दु, नि, भर आदि हिन्दी के अपने उपसर्ग होते हैं । इनमें अधिक से अधिक संस्कृत का तद्भव होते हैं । उर्दू के बद्, ऐन, कम, गैर, दर, ना, आदि कई उपसर्ग हिन्दी में आये हैं । अंग्रेज़ी के सब का प्रयोग भी हिन्दी में होता है ।

संसार की सभी भाषाओं में अव्यय होते हैं । मन के भावों को प्रकट करनेवाले शब्द अव्यय होते हैं । न, भी, तो, ही आदि अव्यय होते । क्रियाविशेषण भी अव्यय होते हैं संस्कृत के अव्यय भी हिन्दी में चलते हैं । ए, जी, रे, री आदि संबोधन - अव्यय हिन्दी में भी प्रयुक्त होते हैं । हिन्दी का क्या, कुछ, कभी - कभी, तो, सो, ज्यों - त्यों, यों, ई, ऊ आदि हिन्दी के अपने अव्यय हैं । संस्कृत के 'मा' हिन्दी में अव्यय है । न और नहीं हिन्दी के अव्यय होते हैं । 'न' साधारण निषेध और 'नहीं' दृढ़ता का द्योतक है । समासगत 'न' के स्थान पर 'अ' या 'अन' आते हैं । हिन्दी में संस्कृत के अव्ययों का तद्रूप शब्द स्वीकार किया गया है । सदा, प्रायः, अन्यत्र, अतः प्रातः आदि ऐसे अव्यय होते हैं । भई, चाहे आदि भी अव्यय होते हैं । संस्कृत में उपसर्ग अव्ययों का ही भाग है । पर उपसर्गों का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं होता, अव्ययों का स्वतन्त्र प्रयोग होता है । अतः उपसर्गों एवं अव्ययों अलग - अलग विभाग दिखाना है । संस्कृत के आख्यातों में उपसर्ग लगते हैं, हिन्दी में ऐसी बात नहीं ।

मगधाई में संज्ञा, कृति, नियत, निपात ऐसे चार विभाग ही होते थे। आगे चलकर संज्ञा एवं कृति - रूपों से कुछ शब्द निपात के रूप में प्रयुक्त किए जाने लगे। वे ही अव्यय होते हैं। निपातों की संख्या कम है : उ (और) वो (या)। इनके प्रयोग में भी विशेषता होती है। सभी शब्दों में निपात प्रयुक्त होता है जैसे रामनु सीतनु (राम और सीता) रामनी सीतवो (राम या सीता)।

कृदंत एवं तद्धित
- - - - - - - - -

शब्दोत्पत्ति के कई साधन होते हैं। उनमें, कृदंत एवं तद्धित की प्रधानता होती है। जिस संज्ञा या विशेषण में किसी धातु का अर्थ झलकता उसे कृदंत कहते हैं। हिन्दी कृदंत शब्दों में भाववाचक संज्ञाएँ सबसे अधिक हैं। कृदंत का मतलब है सुप - प्रत्यय इनमें काल या पुरुष की प्रतीति नहीं, वचन - भेद भी नहीं है, केवल - भाव ही होता है। खाना, जाना, पढ़ना आदि कृदंत हैं। इन्हें भाववाचक संज्ञा कहते हैं। हिन्दी में संस्कृत के तत्सम - कृदंत शब्द बहुत बड़ी संख्या में गृहीत हैं।

किसी संज्ञा, विशेषण या अव्यय से शब्दान्तर बनाने की पद्धति को तद्धित कहते हैं। तद्धित प्रत्यय विविध अर्थों में आते हैं। संस्कृत का 'इक' प्रत्यय - वैदिक, प्रांतिक आदि। यह प्रत्यय संस्कृत शब्दों में ही जुड़ता है। हिन्दी में यह 'ई' होती है : देशी, शहरी आदि। संस्कृत के 'त्व' और 'ता' संस्कृत शब्दों में ही मिलते हैं। संस्कृत का 'आलु' हिन्दी में 'आलू' दीर्घित होता है। संस्कृत के 'वान्' प्रत्यय हिन्दी में 'वान' हो गया और 'न' 'ल' बनाकर पुल्लिंग जोड़ते हुए 'वाला' हो गया : गाड़ीवाला। 'ई' की ही तरह 'आ' प्रत्यय भी आता है : प्यासा, भूखा। इधर, उधर, किधर शब्दों को यह, वह और कौन से 'धर' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न माना जाएगा क्यों कि 'धर' शब्द दिशा के अर्थ में प्रचलित है। इसी तरह यहाँ, वहाँ, कहाँ आदि शब्द भी तद्धितान्त हैं। कामताप्रसाद गुरु ने तद्धित के सैकड़ों प्रत्यय दिखाए हैं जो संस्कृत, उर्दू, अरबी भाषाओं में प्रचलित हैं। इसी तरह कृदंत के भी कई प्रत्यय दिखाए गए हैं।

केरलपाणिनि के अनुसार नाम या भेदक से उत्पन्न शब्द तद्धित, धातुओं से उत्पन्न 'कृत' होते हैं । मलयालम में ये बहुत कम हैं । आवश्यकता के अनुसार संस्कृत से ले लेते हैं । प्रकृति में 'मा' मिलाकर तद्धित बनाते हैं : पुतु (नया) पुतुमा, वेलु वेण्मा (सफेदी)। संस्कृत का 'त्व' प्रत्यय मलयालम में 'त्तं' बनाया जाता है : मटन् (मूढ़) मटत्तं । 'वह होनेवाला' के अर्थ में 'अन्' या 'आन्' आता है : मटि + अन मटियन (सुस्त), मूढ + अन मूढन (मैला) । मलयालम में नामनिर्मिति संज्ञा का एक तद्धित होता है ' अन्, अळ्, तु ' प्रत्यय पैत्तिकम् या आचारिक भाव या संबन्धिका विभक्ति में जोड़कर ऐसे तद्धित बनाए जाते हैं - मटयन्, तम्पलोर्त ।
'अ' और 'इ' की देशार्थ में 'अन्तु' कालार्थ में 'अन्तु' और परिमाणार्थ में 'त्र' प्रत्यय मिलाकर तद्धित बनाते हैं । अन्तु, इन्तु, अत्र आदि ।

अल्, तल्, प्पुं, तुं, व, ती, तुं, त्तं, अ, व, अं, म, वि, वल्, तल्, अटि, मानं, टु, प्पु, वारं - ये सभी कृत् - प्रत्यय होते हैं । इन प्रत्ययों को जोड़कर कृदंत बनाते हैं । वेव + अल = वेव्वल (कामना), किट + प्पु = किटप्पु (लेटना), ताषू + म = ताष्मा (विनम्रता) आदि ।

भेदक
- - -

यास्क ने निरुक्त में जो शब्द - विभाजन किया है उनमें एक भेदक है । कई वैयाकरणों ने इसे स्वीकार किया है और किसी ने इसको विशेषण का नाम दिया है । पं. कामताप्रसाद गुरु ने इसको विशेषण का नाम दिया है और संज्ञा का एक विभाग माना है वे कहते हैं कि सर्वनाम के समान विशेषण भी एक प्रकार की संज्ञा है, क्यों कि विशेषण भी वस्तु का अप्रत्यक्ष नाम है, पर इसको अलग शब्द - भेद मानने का एक कारण है कि इसका उपयोग संज्ञा के बिना नहीं हो सकता और इससे संज्ञा का केवल धर्म सूचित होता है, काला, कहने से घोड़ा, कपड़ा, दाल आदि किसी भी वस्तु के धर्म की भावना मन में उत्पन्न हो सकती है, परन्तु उस धर्म का नाम काला नहीं है, किन्तु 'कालापन' है । विशेषण अकेला

आता है तब उससे पदार्थ का बोध होता है और उसे संज्ञा कहते है । उस समय उसमें संज्ञा के समान विकार भी होते है । सब विशेषण विकारी शब्द नही है, परन्तु विशेषणों का प्रयोग संज्ञाओं के समान हो सकता है, और उस समय इसमें रूपान्तर होता है । इसलिए विशेषण को विकारी शब्द कहना उचित है ।

विशेष्य के साथ विशेषण का प्रयोग दो प्रकार से होता है - संज्ञा के साथ और क्रिया के साथ । पहले प्रयोग को विशेष्य - विशेषण और दूसरे को विधेय - विशेषण कहते है विशेष्य - विशेषण विशेष्य के पूर्व और विधेय - विशेषण क्रिया के पहले आता है । विशेष्य - विशेषण के तीन भेद होते है - (1) सार्वनामिक विशेषण (2) गुणवाचक विशेषण (3) संख्यावाचक विशेषण ।

जिस अव्यय से क्रिया की कोई विशेषता जानी जाती है, उसे क्रिया विशेषण कहते है । क्रिया विशेषणों का वर्गीकरण, प्रयोग, रूप और अर्थ के आधार पर है । प्रयोग के अनुसार क्रिया - विशेषण साधारण, संयोजक और अनुबद्ध होते है । रूप के अनुसार क्रिया-विशेषण मूल, यौगिक और स्थानीय होते है । अनुबद्ध क्रिया - विशेषण वे है जिनका प्रयोग अवधारण केलिए किसी भी शब्द भेद के साथ हो सकता है । हिन्दी में संस्कृत और उर्दू क्रिया-विशेषण भी आते है । ये शब्द तत्सम और तद्भव दोनों प्रकार के होते है ।

पं. किशोरीलाल वाजपेयी ने भेदक का नाम स्वीकार किया है । उन्होंने भेद्य - भेदक भाव दिखाया है । वे बताते है कि जैसे विशेष्य के अनुसार विशेषण रहता है वैसे भेद्य के अनुसार भेदक रहता है । 'मीठा फल', मीठा विशेषण है परन्तु 'तेरा लड़का' इसमें तेरा भेदक है । तू अलग है और लड़का अलग । यहाँ पितृ - पुत्र संबन्ध है । तू सर्वनाम है और लड़का संज्ञा । यह तो विशेषण नहीं, भेदक होता है । संज्ञा - विशेषण और क्रिया विशेषण के भिन्न रूप दिखाए गए है । इसमें गुरु के विवरण से अधिक भिन्नता नहीं । गुरु ने विशेषण को संज्ञा का जो रूपान्तर माना है वही वाजपेयी का भेदक मान सकते है ।

मलयालम में केरलपाणिनि ने भेदक को स्वीकार किया है । वे भेदक के तीन भेद बताते है :- (1) नामविशेषण (2) क्रिया विशेषण (3) गुण विशेषण । तमिलु -

वैयाकरणों ने विशेषण को एक शब्द - भेद माना नहीं है । उनके मत में विशेषण गुण - नाम होते है । पर मलयाळम ने विशेषण को एक अलग शब्द - विभाग माना है । 'ओट्टुमेर' :- नामविशेषण 'ओट्टुनन्नु' :- गुणविशेषण, 'ओट्टु कळिच्चु' :- क्रियाविशेषण । प्रकृति और नाम समासित होकर भी प्रयुक्त होते है । अलग - अलग प्रयुक्त होते तो 'पेरेच्चम्' जैसे प्रयुक्त होते । अलग भेदकों को शुद्ध नामगण, क्रियागण में भी विभाजित कर सकते । इनके अलावा 'विभावक' भी होता है । विभावक को प्रयुक्त करने पर लिंग - भेद को भी दिखाना है । 'सुखमाय उरक्कम्' नाम विशेषणों में 'आय' और गुण - क्रियाविशेषणों में 'आयि' जोड़कर प्रयुक्त होते है । 'सुखमायि उरङ्ङि' । डा. काल्डवेल का मत है कि द्राविड भाषाओं में नाम - विशेषण नहीं । गुण नामों और पेरेच्चों को विशेषणार्थ में प्रयुक्त होने की रीति - मात्र होती है । डा. गुण्डर्ट ने भी इस मत का स्वीकार किया है । कोवुण्णि नेडुङ्ङाटि और शेषगिरि प्रभु ने अपने व्याकरणों में नामविशेषण को दिखाया है । डा. राघवन पिल्ले ने केरळपाणिनि तथा अन्य देशी मलयाळ - वैयाकरणों का मत खण्डित करके मलयाळम में नाम विशेषण का अभाव दिखाया है । केरळपाणिनि ने नामविशेषणों के छह भेद दिखाए है । (1) शुद्ध (2) विभावक (3) पारिमाणिक (4) सार्वनामिक (5) नामगण और (6) संख्या । इनके अलावा विभक्त्याभास को भी स्वीकार किया है । शुद्ध नाम - विशेषण के लिए केरळपाणिनि ने चेरु (छोटा), पेरु (बड़ा) नल् (अच्छा), चें (लाल) आदि उदाहरण दिए है । 'समर्थनाय, केमनाय' (होशियार) आदि शब्दों में 'समर्थन्, केमन्' नामों से 'आय' पेरेच्चम् मिलाकर ये शब्द बनाए गए है । इसलिए उन्हें स्वतन्त्र शब्द नहीं बताया जा सकता । पारिमाणिक विशेषण में दिए हुए ' नाऴियरि, (पाव भिली चावल) रण्टु तुटम्(दो पाव) आदि के 'नाऴि' तथा 'रण्टु' नाम ही होते है । सार्वनामिक आ, ई आदि को केरळपाणिनि ने भेदक बताया है । पर ये भी स्वतन्त्र शब्द नहीं । नामगण के उदाहरण में दिए हुए वेळुत्त(सफेद), करुत्त(काला) आदि भेदक नहीं । ये पेरेच्च होते है । विभक्त्याभास 'काट्टिले'(जंगल का), 'वेळ्ळत्तिले' (पानी के) आदि शब्द भी भेदक नहीं । ये नाम से संबन्धित है । इस तरह पाणिनि के नाम-विशेषणों का खण्डन भी हो गया है । पर वलिय(बड़ा), पऴय(पुराना)आदि शब्द स्वतन्त्र अर्थ होनेवाले पद होते है । इन्हें शुद्ध - भेदक बताया जा सकता । ओरु (एक) भी नाम विशेषण होता है । सी.एल.एन्टनी'

अनुसार मलयालम में शुद्ध, विधेयक और संख्या तीन तरह के नाम - विशेषण होते हैं । शुद्ध के लिए चेरिया(छोटा) पुतिया(नया) आदि चौदह उदाहरण दिए गए हैं । आ और ई दो विधेयक नाम विशेषण हैं । ओरु (एक) संख्या-नाम-विशेषण है ।

समीक्षा :- पूर्वोक्त बोधक विशेषण दो प्रकार से लिखे जाते हैं । (1) शब्दों में (2) अंकों में । कहीं कहीं संख्याएं बहुधा शब्दों में लिखी जाती हैं । तिथि और संवत् तो अंकों में ही लिखते हैं । हिन्दी की संख्याएं संस्कृत के तद्भव होते हैं । अंक संस्कृत के रूप ही हैं । विशेषण बनाते समय पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा विशिष्ट रूप होते हैं । पांच से लेकर सभी संख्याओं में 'वाँ' जुड़ता है । लिंग वचनानुसार आ, ए, ई का रूप-भेद होता है ।

मलयालम की संख्याएं संस्कृत का तद्भव नहीं । मूल द्राविड़ भाषा से ही इनकी निष्पत्ति हुई । मलयालम के अलग अंक भी होते हैं । विशेषण में ओरु, रंडु आदि प्रयोग होते हैं आ मिलाते हुए ओन्नाम, रंडाम एवं आगे प्रयुक्त करके ओन्नामत्ते, रंडामत्ते आदि प्रयोग भी होते हैं । अनिश्चित संख्यावाचक शब्द दो-तीन, चार-पांच जैसे प्रयोग दोनों भाषाओं में होते हैं ।

कामताप्रसाद गुरु ने अपने व्याकरण-ग्रन्थ में संस्कृत, हिन्दी, उर्दू एवं अंग्रेज़ी उपसर्गों की सूची एवं उदाहरण दिए हैं । संस्कृत में बहुत से उपसर्ग होते हैं । अति, अधि, अनु, वि, सु आदि संस्कृत उपसर्ग होते हैं । अ, अन, दु, नि आदि हिन्दी उपसर्ग होते, कम, खुश, गैर आदि उर्दू और स आदि अंग्रेज़ी उपसर्ग होते हैं । संस्कृत के उपसर्गयुक्त शब्दों को आवश्यकता के अनुसार स्वीकार किए जाते हैं । मलयालम में भी अ, वि, नि आदि उपसर्ग साधारण प्रयोग में आते हैं: पर शब्द रूप संस्कृत जैसे ही रहता है । संस्कृत के उपसर्ग-युक्त शब्द मलयालम में खूब प्रयुक्त होते हैं ।

विशेषण के तीन भेद होते हैं - नामविशेषण क्रिया विशेषण एवं भेदक विशेषण । वासुदेव जी ने भेदक विशेषण को 'प्रविशेषण' बताया है । दोनों भाषाओं में इनके प्रयोग समान होते हैं । नामविशेषण लिंग-वचनों में विशेष्य का अनुसरण करता है । विशेषण की तुलना में भी समानता है दो वस्तुओं की तुलना करने के लिए हिन्दी में 'से' का प्रयोग होता, मलयालम में 'काल्' होता है । हिन्दी में जहाँ 'सबसे' का प्रयोग होता है वहाँ मलयालम में 'एट्टवुम्' का प्रयोग किया जाता है ।

क्रिया विशेषण के प्रयोग में दोनों भाषाओं में समानता होता है । कहीं कहीं क्रिया-विशेषण दोहराने की प्रथा दोनों भाषाओं ने स्वीकार किया है: वह धीरे धीरे चला, अथवा मेल्ले-मे

समान होती है । नाम - विशेषण लिंग - वचनों में विशेष्य का अनुसरण करता है । विशेषण की तुलना में भी समानता रहती है । दो वस्तुओं की तुलना करने केलिए हिन्दी में से का प्रयोग होता, मलयालम में ' काळ् ' होता है । हिन्दी में जहाँ ' सबसे ' का प्रयोग होता है वहाँ मलयालम में ' एट्टवुं ' का प्रयोग किया जाता है ।

क्रियाविशेषण के प्रयोग में दोनों भाषाओं में समानता होती है । कहीं कहीं क्रिया - विशेषण दोहराने की प्रथा दोनों भाषाओं ने स्वीकार किया है : वह धीरे - धीरे चला , अवन मेल्ले - मेल्ले नटन्नु । क्रिया - विशेषण दोनों भाषाओं में अविकारी शब्द है । भेदक - विशेषण का प्रयोग दोनों भाषाओं में होता है ।

- - - - - x - - - - -

छठा अध्याय

- - - - - -

धातुविचार :

जैसे मनुष्य की विकास - कहानी युगों की होती है वैसे भाषाओं की विकास-कहानी भी बहुत पुरानी है । सभी भाषाओं में धातुओं का बड़ा महत्व है । भाषा का उद्भव ही

धातुओं से हुआ है । आगे चलकर काल-पुरुष-वचनों को मिलाकर ये आख्यात बन गई । संस्कृत में धातुओं को कई गणों में विभाजित किया गया है । ये परस्मैपदी, आत्मनेपदी तथा उभयपदी में विभाग गए हैं । हिन्दी और मलयालम में क्रियाओं की रचना सरल है । हिन्दी की क्रियाएँ अधिक से अधिक कृदंत हैं । उनके साथ तिङन्त भी प्रयुक्त होते हैं । "पढ़ता है" में "पढ़ता" कृदंत और "है" तिङन्त है । पुरुष प्रतीति तिङन्त से और लिंग-प्रतीति कृदंत से होती है; वचन भेद दोनों अंशों में समान रहता है । हिन्दी में वर्तमान काल का प्रत्यय "त" है । यह भूतकाल में "य" होता है । भविष्यत् में "ग" प्रत्यय होता है ।

क्रिया के निकटतम दो ही कारक होते हैं, कर्ता एवं कर्म । क्रिया का प्रभाव और फल इन्हीं पर पड़ता है । जब कर्ता के अनुसार क्रिया रूप-ग्रहण करती है, तब कर्तृ-वाच्य है और कर्म का अनुगमन करने पर कर्मवाच्य कहलाती है । कर्तृवाच्य को कर्तरि प्रयोग और कर्मवाच्य को कर्मणि प्रयोग कहते हैं । क्रिया कर्ता या कर्म का अनुसरण न करती तो भाववा होती है ।

काल के अनुसार सामान्य वर्तमान, अपूर्ण वर्तमान, पूर्ण वर्तमान, सामान्य भूत, अपूर्ण भूत, पूर्ण भूत, सामान्य भविष्यत्, अपूर्ण भविष्यत् और पूर्ण भविष्यत् अंग्रेज़ी के समान दिखाए गए हैं । अर्थ के अनुसार क्रियाओं के निश्चयार्थ, संभावनार्थ, संदेहार्थ, आज्ञार्थ और संकेतार्थ होते हैं । क्रियाओं को सकर्मक और अकर्मक में बाँटा हुआ है ।

धातुओं के प्रेरणार्थ में "आ" मिलता है - पढ़ा, उठा, बैठा आदि । "या" मिलक पढ़ाया, उठाया, बिठाया आदि रूप बनते हैं । बीच में "वा" मिलकर दूसरा प्रेरणार्थक भी बनता है - पढ़वाया, उठवाया, बिठवाया आदि ।

विशेषार्थ दिखाने के लिए कृदंतों के आगे किसी दूसरी क्रिया के जोड़ने से जो रूप बनता है उसे संयुक्त क्रिया कहते हैं - जा सकना, मार देना । क्रियार्थक संज्ञा के साधारण रूप में "पड़ना, होना, चाहिए" को जोड़ने से आवश्यकता - बोधक संयुक्त-क्रिया बनती है जब संयुक्त-क्रियाएँ विशेषण के समान प्रयुक्त होती हैं तब विशेष्य के अनुसार लिंग-वचन बदलती है । क्रियार्थक संज्ञा के विकृत-रूप से तीन प्रकार की संयुक्त क्रियाएँ बनती हैं - आरंभबोधक [लगना] अनुमति बोधक [देना] और अवकाश बोधक [पाना] ।

मलयालम में धातु के रूप-भेद प्रकृति, स्वभाव, काल, प्रकार, प्रयोग, पुरुष, लिंग, वचन के अनुसार होते हैं । "राजा मंत्री से राज्य कराते हैं ।" यहाँ राजा को प्रयोजक-कर्ता और मंत्री को प्रयोज्य-कर्ता कहते हैं । ऐसी धातुओं को प्रयोजक-प्रकृति और अन्य धातुओं को केवल-प्रकृति कहते हैं । स्वार्थ में प्रयोजक रूप होनेवाले धातुओं को कारित और अन्य धातुओं को अकारित कहते हैं । क्रिया के समय को "काल" कहते हैं । वर्तमान के लिए "उन्नु", भूत के लिए "इ" और भविष्य के लिए "उं" प्रत्यय आते हैं । धातु के अन्त में स्वर या "चिल्लु" के आने पर भूतकाल में "इ" के स्थान पर "तु" आता है । कारित धा में "तु" का द्वित्व होता है । अकारित धातुओं में "न" जोड़कर "न्नु" बनाते हैं ।

"तु" और "न्तु" के लिए तमिळ में "न्तु" रूप होते हैं । एक मात्रक क-र-टान्त धातु को भी "तु" प्रत्यय आता है, पर यह "तु" पूर्व वर्ण में मिल करके द्वित्व होता है - पुक् + तु = पुक्कु ; अट् + तु = अट्टे, विट् + तु = विट्टु (छोड़ दिया) । कारित धातुओं में प्रत्यय जोड़ने से पहले "क्कु" भी जुड़ता है - इरिक्कुन्नु (बैठता), नटक्कुन्नु (चलता) निषेध रूपों में "क्कु" विकल्प में आता है - केळा > केळ्क्का> (सुनना) । सभी कालों में रहनेवाली साधारण बातों को दिखाने के लिए मलयाळम भाविकाल को स्वीकार करती है । इसे शीलभावि कहते हैं । "पत्तुमणिक्कु तपाल् वरुम् ।" (दस बजे डाक आएगी) हिन्दी में इसका प्रयोग वर्तमानकाल में होता है - "दस बजे डाक आती है । मलयाळम में कृति को "विना" भी कहते हैं । यह तमिळ-शब्द है । इसके अनुसार पूर्णक्रिया को "मुट्टुविना" कहते हैं । अपूर्ण क्रिया को "वट्टुविना" कहते हैं । "वट्टुविना" जब नाम का विशेषण होता तो "पेरेच्चम्" और क्रिया का विशेषण होता तो "विनयेच्चम्" कहलाते हैं । इन्हें क्रमश: नामांग और क्रियांग भी कह सकते हैं । प्रकार चार तरह के होते हैं - नियोजक, विधायक, अनुज्ञायक और निर्देशक । मलयाळम में कर्तरिप्रयोग को साधारण रूप में प्रयुक्त होता है । कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग कम होते हैं । प्रयोजक, पहला प्रयोजक और दूसरा प्रयोजक मलयाळम में भी होता है । सकर्मक और अकर्मक का भेद भी मलयाळम में होता है । लिंग, पुरुष, वचन प्राचीन काल में प्रयुक्त होते थे । अब वे पूर्ण रूप से लुप्त हो गए हैं । इसके संबंध में मत-भेद होते हैं । तमिळ में लिंग-वचन-पुरुष-प्रत्यय मिलाने की प्रथा होती है पर मलयाळम में ऐसी प्रथा नहीं, तमिळ-रीति का अनुकरण करते हुए कहीं इसका प्रयोग देखकर ऐसा कहना गलत है कि मलयाळम में भी ऐसा प्रयोग हुआ था । तमिळ के इन प्रत्ययों का अभाव मलयाळम में होने का मतलब यही होता कि मलयाळम ने एक स्वतन्त्र-भाषा के रूप में प्राचीन काल से ही प्रतिष्ठा पायी थी ।

दोनों भाषाओं में नामों से धातु बनाने की प्रक्रिया होती है । मलयाळम में नामों से "इ" मिलाकर धातु बनाते हैं - ओर्म = ओर्मि > ओर्मिक्कुन्नु (याद> रखना (रखता ह स्वरान्त नामों में कारित का प्रत्यय जुड़ता है: नटि नटिक्कुन्नु किसी विकार के बिना ही कुछ नाम धातुरूप प्राप्त करते हैं : पुक > पुकयुन्नु (धुआँ होता) नामों से "पेट्" धातु समाविष्ट होकर नामधातु बनती है : पणि पणिप्पेट्टुन्नु (कठिन परिश्रम करता है) मलयाळम में भी संयुक्त-क्रियाओं का प्रयोग खूब मिलता है । इसे अनुप्रयोग कहते हैं । अनुप्रयोग अर्थ-भेद दिखा मलयाळम में सोलह अनुप्रयोग होते हैं : काट्, इट्, र, विट्, कल, कोट्, तट्, अरुळ्, इटि, वट्, पो, इट्, कष्, तीर्थिट् ("अरिविक्कु कोल्लुन्नु" "कुत्तिट्टोट्ट" (बांध बनाकर) पाण्डुतोट्ट उत्सवं नटत्तियरुन्नु (पर नाम उत्सव मनाया जाता है) आदि ।

मलयाळम में निषेध-रूप कई प्रकार के होते हैं । इल्ला, अल्ला, वेण्टा, कूटा, अरु

ओकना, बनिया, आदि कई प्रत्यय होते हैं। इन सभी प्रत्ययों में "आ" का सामान्य रूप देख सकते हैं।
समीक्षा : दोनों भाषाओं में "धातु" की प्रधानता होती है। धातुओं से कई शब्दों की निष्पत्ति हो गयी है। धातुओं की संख्या दोनों भाषाओं में सबसे अधिक होती है। हिन्दी में वर्तमान कालिक एवं भूतकालिक कृदन्त के अनुसार ही मलयाळम में पुरुषविना का प्रयोग होता है। मलयाळम में भाविकालिक कृदन्त भी होता है : वक्कान [आनेवाला काम] अंग्रेज़ी के अनुसार कालरचना दोनों भाषाओं में देख सकते हैं। अपूर्ण क्रिया, पूर्ण क्रिया, संयुक्त क्रिया ये भेद दोनों भाषाओं में होते हैं। इनके प्रयोग में समानता होती है। प्रयोजक-प्रक्रिया में भी दोनों भाषाओं में एक-रूपता देख सकते हैं। करना-कराना-करवाना इसी तरह चेय्युन्नु, चेय्यिक्कुन्नु, चेय्यिप्पिक्कुन्नु "राजा मन्त्री से राज कराते हैं" इसमें "से करण-कारक नहीं; अपादान कारक होता है। मलयाळम में भी राजावें मन्त्रियेक्कोण्ट राज भरिप्पिक्कुन्नु। यहाँ कोण्ट "आट्" प्रत्यय जैसे हेतु को दिखाता है। कर्तरि प्रयोग तथा कर्मणि प्रयोग दोनों भाषाओं में होते हैं। दोनों भाषाओं में कर्तरि-प्रयोग की प्रधानता होती है। भावे प्रयोग में क्रिया कर्तरि प्रयोग जैसे ही रहती है। कर्मणि प्रयोग तथा भावे-प्रयोग संस्कृत से आए हुए हैं। हिन्दी तथा मलयाळम ने कर्तरिप्रयोग को प्रधान रूप से स्वीकार किया है। पर कर्मणि प्रयोग दोनों भाषाओं में प्रचलित हो गया; भावे-प्रयोग बहुत कम है। कर्मणि प्रयोग में जो "से" प्रत्यय हिन्दी में आता है उसके स्थान पर मलयाळम "आल्" प्रत्यय स्वीकार करती है। हिन्दी का "से" प्रत्यय संयोजिका एवं प्रयोजिका का प्रत्यय अथवा करण या अपादान कारकों का प्रत्यय होता है। कर्मणि प्रयोग में प्रयुक्त "से" प्रत्यय "करण" का है या अपादान का ? संस्कृत में कर्मणि प्रयोग में करण कारक ही प्रयुक्त होते हैं: रामेण फलं खादितम् रामेण करण कारक या तृतीया विभक्ति का शब्द होता है। "राम से फल खाया गया" इस वाक्य में राम से तृतीया या करण कारक कहना युक्तिसम्मत नहीं है। फल खाने का प्रयोजन राम को मिलना है, इसलिए यह प्रयोजिका अथवा अपादा[न] कारक कहना युक्त है। मलयाळम में इसके स्थान पर "रामनाल्" का प्रयोग होता है। आ[ल्] [आल्] प्रयोजिका अथवा पंचमी विभक्ति का प्रत्यय है। इस दृष्टि से देखने पर हिन्दी त[था] मलयाळम के कर्मणि प्रयोग समान होते हैं।

दोनों भाषाओं में कालों की संख्या बढ़ गयी है। आदिकाल में वर्तमान, भूत, भ[विष्य] ऐसे तीन ही काल होते थे। आगे चलकर इनके कई भेद हो गए हैं। अन्य भाषाओं के संप[र्क] से विशेषकर अंग्रेज़ी के संपर्क से अनुवाद आदि कार्यों में भिन्न-कालों को स्वीकार करना पड़ा इसे भी व्याकरण का विकास कह सकते हैं।

समास:

गुरुजी ने समास के चार मुख्य भेद माने हैं: अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वन्द्व और बहुव्री[हि] जिस समास में दूसरा शब्द प्रधान होता है और जो समुदाय-शब्द क्रिया-विशेषण अव्यय होता है उसे अव्ययीभाव कहते हैं। जो समास उत्तरपदार्थप्रधान होता वह तत्पुरुष है। विग्रह में समास के अवयवों में भिन्न-भिन्न विभक्तियाँ, लगायी जाती, वे व्यधिकरण तत्पुरुष और जहाँ दोनों

शब्द है । एक ही विभक्ति आती है उन्हें समानाधिकरण तत्पुरुष कहते हैं । समानाधिकरण तत्पुरुष ही कर्मधारय होता है । व्यधिकरण तत्पुरुष के कर्म तत्पुरुष, करण तत्पुरुष, संप्रदान तत्पुरुष, अपादान तत्पुरुष, संबंध तत्पुरुष और अधिकरण तत्पुरुष- छ: भेद होते हैं । व्यधिकरण तत्पुरुष में पहली विभक्ति का लोप नहीं हो तो उसे अलुक् समास कहते हैं । जिसका दूसरा शब्द ऐसा कृदंत होता है, जिसका स्वतंत्र उपयोग नहीं हो सकता, तब उस समास को उपपद समास कहते हैं । अभाव या निषेध के अर्थ में "अ" या "अन्" आने पर न समास होते हैं। जिसके प्रथम स्थान में उपसर्ग आता है उसे संस्कृत व्याकरण प्रादिसमास कहते हैं, इसी तरह समानाधिकरण तत्पुरुष या कर्मधारय के विशेषता वाचक और उपमा-वाचक दो मुख्य भेद होते हैं। विशेषता वाचक कर्मधारय समास के विशेषण - पूर्वपद, विशेषणोत्तरपद, विशेषणोभय पद, विशेष्य पूर्वपद, अव्यय पूर्वपद, संख्या पूर्वपद, मध्यमपद लोपी, सात विभाग हैं । संख्या पूर्वपद का दूसरा नाम द्विगु और मध्यमपद लोपी का लुप्त पद समास बताए जाते हैं । उपमावाचक कर्मधारय के उपमान पूर्वपद, उपमानोत्तरपद, अवधारणा पूर्वपद और अवधारणोत्तरपद- चार भेद होते हैं । जिस समास में सब पद अथवा उनका समाहार प्रधान रहता है उसे द्वन्द्व समास कहते हैं । इसके तीन भेद होते हैं, इतरेतर-द्वंद्व, समाहार द्वन्द्व और वैकल्पिक द्वन्द्व । जिस समास में कोई भी पद प्रधान नहीं होता और जो अपने पदों से भिन्न किसी संज्ञा का विशेषण होता है उसे बहुव्रीही समास कहते हैं । इसके विग्रह पर संबंध वाचक सर्वनाम के साथ कर्ता और संबोधन कारकों को छोड़कर शेष जिन कारकों की विभक्तियाँ आती है, उसके अनुसार कर्मबहुव्रीही करण बहुव्रीही आदि छ: होते हैं । बहुव्रीही के समानाधिकरण और व्यधिकरण के दो भेद भी किए गए हैं । दोनों पदों में एक ही विभक्ति होने पर समानाधिकरण, भिन्न विभक्ति के होने पर व्याधिकरण बहुव्रीही होते हैं । पदों के स्थान या उनके अर्थ की विशेषता के आधार पर कई भेद होते हैं ।

वाजपेयी ने समासों को अव्ययी भाव, तत्पुरुष बहुव्रीही तथा द्वन्द्व बताए हैं । कर्मधारय तत्पुरुष का ही भेद और द्विगु कर्मधारय का भेद बताए गए हैं । विदेशी शब्दों के साथ भी हिन्दी शब्द समासित होते हैं । अल्लाह + आबाद = अल्लाहाबाद । तत्पुरुष समास में अंतिम पद प्रधान होता है और अव्ययीभाव में पूर्वपद । आजानुसार यदि अनुसार आदि अव्ययीभाव है, इसलिए आपको आजानुसार ही ठीक है ।

केरलपाणिनी ने समासों को 1. विभाति क्रिया के साथ, 2. नाम क्रिया के साथ 3. नामांग - नाम के साथ 4. नाम नामांग के साथ 5. नाम नाम के साथ और 6 भेदक नाम के साथ । इनकी प्रधानता के आधार पर 1. तत्पुरुष-उत्तरपदार्थप्रधान 2. बहुव्रीही अन्य पदार्थ प्रधान 3. द्वन्द्व-सर्वपदार्थ प्रधान तीन होते हैं । अव्ययीभाव तथा द्विगु मलयालम में नहीं हैं । तत्पुरुष कई प्रकार के होते हैं - विशेषिका [कर्मधारय], प्रतिज्ञापिका आदि सात, विध्यु, अतिरुधु भी इसमें आते हैं । रूपक समास भी इसका एक भेद है । मध्यमपद लुप्त होने पर मध्यमपदलोपी । कारक धातुओं से समासित होने पर कारक तत्पुरुष होता है ।

विशेषण-विशिष्ट-विशेष्य जिसका होता उसे दिखानेवाला बहुव्रीहि समास होता है। बहुव्रीहि के भी कई भेद होते हैं। उपमागर्भ, उपमानपूर्व, उपमानलुप्त आदि। विभक्ति-वचन विभक्ति का लोप न होनेवाला अलुक्-समास होता है। मलयालम में यह कम है।

समीक्षा :

शब्दोत्पत्ति की प्रक्रिया दोनों भाषाओं में एक-जैसी होती है। कृत् तद्धित प्रत्यय भिन्न होने पर भी शब्द-निर्माण-विधि भिन्न नहीं। संस्कृत के कृत् तथा तद्धित दोनों भाषाओं में प्रचलित है।

वैयाकरणों ने समासों को संस्कृत-व्याकरण-पद्धति के अनुसार ही स्वीकार किया है। अव्ययीभाव और द्विगु मलयालम में न होने पर भी संस्कृत के ऐसे समासशब्द मलयालम में आते हैं। समासों की संख्या का निर्णय करना असंभव है, लेकिन सामान्य रूप में अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वन्द्व और बहुव्रीहि होते। कर्मधारय और द्विगु तत्पुरुष के भेद होते हैं। लम्बे-लम्बे समासों का प्रयोग हिन्दी और मलयालम में वर्ज्य होता है। पर संस्कृत-पक्षपाती लोग लम्बे समास-शब्दों को कहीं कहीं प्रयुक्त करते हैं।

सिद्धान्त कौमुदी के आधार पर ही दोनों भाषाओं के वैयाकरणों ने समासों का विचार किया है। "तत्पुरुषविशेषो कर्मधारयः। तद्विशेषो द्विगुः" आदि बातों को स्वीकार किया गया है। यही नहीं -

"सुपां सुपा तिङा नाम्ना धातुनाथ तिङां तिङा।
सुबन्तेनेति विज्ञेयः समासः षड्विधो बुधैः ॥1॥

को भी स्वीकार किया गया है। समास के संबंध में दोनों भाषाओं ने संस्कृत पद्धति को ही स्वीकार किया है।

1. सिद्धान्त कौमुदी : सर्वसमासशेष प्रकरणम्

वाक्य-रचना

हिन्दी का वाक्य-गठन अत्यन्त सरल है। संस्कृत में विभक्ति लगाए बिना शब्दों का प्रयोग नहीं होता; पर यहाँ ऐसा नहीं है। राम, गोविन्द, राजा आदि प्रातिपदिक हैं। इन्हीं में "ने" "को" आदि विभक्तियाँ लगती हैं। परन्तु विभक्ति के बिना भी ये पद बन जाते हैं। "राम जाता है" में राम पद है। संस्कृत में धातु-मात्र का प्रयोग नहीं होता; "ति" आदि क्रिया-विभक्ति लगती है। हिन्दी में आ० जा० आदि धातु-शब्द हैं; पर तू जा, तू आ आदि में जा, आ पद हैं। राम लड़के को देखता है- इस वाक्य में लड़का प्रातिपदिक भी विभक्ति के साथ पद है। जड़-पदार्थ कर्म हो तो को विभक्ति नहीं लगती, चेतन में लगती है। क, र और स हिन्दी के संबंध-प्रत्यय हैं। इनमें ए विभक्ति लगकर का, रा और सा हिन्दी के संबंध-प्रत्यय रूप हो जाते हैं। बहुवचन में "आ" की जगह "ए" हो जाता है और स्त्रीलिंग में "ई"। के, रे तथा से हिन्दी की

संबंध विभक्तियाँ हैं जो भेद के अनुसार बदलती नहीं है: अपने तो चार गोरे हैं। सीता के एक पुत्र है-यहाँ संबंध-भाव विवक्षित है, भेद-भेदक भाव नहीं। राम की गोरे बरती है यहाँ भेद-भेदक भाव है। संबन्ध-भाव प्रकट करना हो तो संस्कृत और हिन्दी में संबन्ध विभक्ति का प्रयोग होता है। भेद-भेदक भाव प्रकट करने के लिए संस्कृत में यथेष्ठ प्रयोग होते हैं; पर हिन्दी में एक व्यवस्था है। तद्धित संबंध-प्रत्यय क, र, न हो आते हैं। राम का लड़का पढ़ता है, राम की लड़की पढ़ती है।

वाक्य में आकांक्षा, योग्यता और क्रम का होना आवश्यक है। वाक्य के एक पद को सुनकर दूसरे पद को सुनने की उत्कंठा आकांक्षा होती है। वाक्य का प्रत्येक पद अर्थ-बोधन में सहायक हो तो उसमें योग्यता वर्तमान है। वाक्यों में प्रयुक्त पदों या शब्द की विधिवत् स्थापना को क्रम कहते हैं। रचना की दृष्टि से वाक्य तीन प्रकार के होते सरल वाक्य, मिश्र वाक्य और संयुक्त वाक्य।

अर्थ की दृष्टि से वाक्य विधानार्थक, निषेधार्थक, आज्ञार्थक, प्रश्नार्थक, विस्मयादि बोधक, इच्छा बोधक, सन्देह सूचक और संकेतार्थक-आठ प्रकार के होते हैं। वाक्य-रचना कामताप्रसाद गुरुजी तथा अन्य कई वैयाकरणों ने अंग्रेज़ी व्याकरण पद्धति का अनुसरण किया वाक्य के पृथक्करण भी अंग्रेज़ी के अनुसार दिखाये गए हैं। हिन्दी का अपना विराम-चिह्न बहुत ही कम है। भाषा के विकास में विशेषकर गद्य के विकास में विराम-चिन्हों की बड़ी आवश्यकता पड़ी। इसलिए अंग्रेज़ी चिह्नों को ही स्वीकार किया गया है। वाजपेयी जी ने वाक्यों को साधारण और संयुक्त दो ही तरह दिखाया है।

केरलपाणिनि वाक्य के बारे में बताते हैं - "शब्दों के अविभक्त संबंध को आकांक्षा कहते हैं। शब्दों को क्रमबद्ध करके आकांक्षा की पूर्ति देनेवाले शब्द समूह को वाक्य कहते हैं वाक्य के दो भाग हैं - आख्या और आख्यात। इन दोनों में विशेषण तथा तत्संबन्धित शब्दों को मिलाते वाक्य को लंबा बना सकते। कर्ता, कर्म तथा क्रिया इस क्रम से प्रयोग करना है, पर कहीं-कहीं प्रधानता दिखाने के लिए पदों को घटना में पूर्वापरत्व बना सकते कर्ता के अनुसार क्रिया में लिंग-वचन जोड़ने की प्रथा प्राचीन काल में थी, पर अब लुप्त हो गई है। विभाजक भेदकों में लिंग-वचन प्रत्यय जुड़ते हैं। "किष्वनाय मनुष्यन्" [बूढ़ा आ "किषविधाय स्त्री" [बूढ़ी औरत] "चेरुप्पक्काराय कुट्टिकार" [जवान साथी]। नपुंसक में वचन-प्रत्यय मिलाने की रीति नहीं। "अभ्यासपराय प्रवृत्तिकळ्[अभ्यास की प्रवृत्तियाँ]

वाक्यों के अंगों को अलग-अलग दिखाने की प्रथा को वाक्य-पृथक्करण कहते हैं। भी अंग्रेज़ी पद्धति से स्वीकार किया गया है।

<u>समीक्षा</u>:- वाक्य-रचना की रीति दोनों भाषाओं में एक जैसी ही होती है। प्रधानता दिखाने के लिए शब्दों को पूर्वापर प्रयोग करने की प्रथा दोनों भाषाओं में है। कर्ता, क क्रिया- यह क्रम दोनों भाषाओं में रहता है। मलयालम में भी वाक्य, सरल वाक्य, मिश्र वाक्य तथा संयुक्त वाक्य तीन तरह के माने जाते हैं। अर्थ के अनुसार जो आठ भेद दिखाए गए हैं वे भी मलयालम में होते हैं। वाक्य संबन्धी सभी कार्य दोनों भाषाओं ने अंग्रेज़ी पद्धति के अनुसार स्वीकार किया है। विराम-चिह्नों को भी अंग्रेज़ी पद्धति के अनुसार स्वीकृत है। वाक्य-पृथक्करण की रीति अंग्रेज़ी शिक्षा के आधार पर दोनों भाषाओं ने स्व

किया है। वाजपेयी जी ने शब्दों के पूर्वापर प्रयोग के जो उदाहरण दिए हैं मलयालम में उसके अनुकूल प्रवृत्ति देखी जाती है। कहीं-कहीं शब्दों के पूर्वापरत्व पर भेद होते-जैसे हिन्दी में "माँ-बाप" मलयालम में "अच्छनम्मामार्" होता है। "नर-नारी" का प्रयोग उसी रूप में "पुरुषन्मारुम् स्त्रीकळुम्" प्रयुक्त होते। समास में यह "स्त्री - पुरुष" बन जाता है। सोना-चान्दी-लोहा उसी क्रम में ही मलयालम में प्रयुक्त होता। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वाक्य-रचना दोनों भाषाओं में समान रूप से चलती है।

प्रत्यक्षकथन एवं परोक्षकथन :

उसने कहा "मैं कल बाज़ार जाऊँगा" इसे परोक्षकथन के रूप में उसने कहा कि मैं कल बाज़ार जाऊँगा। हिन्दी में यह सीधा मार्ग है, उद्धरणि के स्थान पर "कि" का प्रयोग कर प्रत्यक्षकथन को उसी रूप में प्रयोग करते हैं। पर आजकल अंग्रेज़ी पद्धति के अनुसार उसने कहा कि वह दूसरे दिन बाज़ार जायगा ; प्रयुक्त करते हैं। मलयाळम में यह दूसरा प्रयोग ही प्रचलित है जैसे "तान् पिट्टेदिवसं बज़ारिलेक्कु पोकुमेन्नु अवन् पर‍ञ्ञु।" इन प्रयोगों को भी पूर्णरूप से अंग्रेज़ी-पद्धति नहीं कहा जा सकता। अंग्रेज़ी में क्रिया का रूप बदलता है, पर हिन्दी या मलयाळम ने उस नियम को स्वीकार नहीं किया है। हिन्दी में जो सीधा मार्ग है वह मलय में देख नहीं सकते। दूसरा रूप ही प्रचलित है।

लिपि :-

लिपि की उत्पत्ति के विषय में भी पुराने लोगों का विचार था कि ईश्वर या किसी देवता द्वारा यह कार्य संपन्न हुआ था। भारतीय पंडित ब्राह्मी लिपि को ब्रह्मा का बनाया मानते हैं। इसके लिए उनके पास सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि लिपि का कर्ता अपने अपने देवता समझते हैं। बाबिलोनिया के लोग -नेबो" को पुराने यहूदी लोग "मोज़ज़" को तथा यूनानी लोग "हेर्मेस" को मानते हैं। पुराने समय धार्मिक दृष्टि से किसी देवता का प्रतीक या चिह्न बनाया जाता था। पहचान के लिए अपनी चीज़ों पर कुछ चिह्न भी लगाए जाते थे। आज तक लिपि के संबन्ध में जो प्राचीनतम सामग्री उपलब्ध है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि चार हज़ार ई॰ पूर्व के मध्य तक लेख की किसी भी व्यवस्थित पद्धति का कहीं भी विकास नहीं हुआ था। कुछ अव्यवस्थित रूप बहुत पुराने काल से ही प्रचलित थे। लिपि के विकास में निम्नलिखित लिपियाँ प्राप्त हैं। 1॰ चित्रलिपि 2॰ सूत्रलिपि 3॰ प्रतीकात्मक लिपि 4॰ भावमूलक लिपि और 5॰ ध्वनिमूलक लिपि। इसमें सूत्रलिपि और भावमूलक लिपि का विशेष स्थान नहीं है।

संसार की प्रमुख लिपियों को दो प्रधान विभागों में बाँट सकते हैं। 1॰ वर्ण न होनेवाली 2॰ वर्ण होनेवाली। चीनी वर्ण न होनेवाली है और रोमन, नागरी आदि वर्ण होनेवाली। अरबी लिपि विश्व की एक बहुत प्राचीन लिपियों में एक है। इस लिपि का विकास मक्का, मदीना, बसरा आदि नगरों में हुआ। इसमें कुल अट्ठाईस अक्षर हैं। भारत में उर्दू और काश्मीरी ने अरबीलिपि अपनाई है। फारसवालों ने जो वृद्धि की थी उसे भी स्वीकार करके उर्दू में अक्षरों की संख्या पैंतीस हो गई।

भारतीय लिपियाँ:-

सिन्धुघाटी लिपि: भारत में लिखने की कला का ज्ञान लोगों को अत्यन्त प्राचीन काल से हुआ है। इसके प्राचीनतम नमूने सिन्धु-घाटी में मिले हैं। इसकी उत्पत्ति के विषय में तीन मत है - 1. द्राविड़ उत्पत्ति: इस मत के समर्थकों में एच.हरास तथा जॉन मार्शल प्रधान है। इस मत का समर्थन अभी तक नहीं हुआ है। 2. सुमेरी उत्पत्ति: वेडेल के अनुसार ई. पूर्व चार हजार में सुमेरी लोग यहाँ रहते थे और उन्हीं कीभाषा और लिपि यहाँ प्रचलित थी। 3. आर्य या असुर उत्पत्ति। यहाँ आर्य या असुर लोग रहते थे। उनकी लिपि यहाँ प्रचलित हुई। असुर लोग आर्यों के संबन्धी थे। इन्हीं लोगों ने इस लिपि का निर्माण किया। भारतीय लिपियों की प्राचीनता के बारे में इन्डिका से कुछ सूचना मिलती है। मेगास्तनीस ने इस ग्रन्थ में सड़कों के मील पत्थर एवं जन्मकुण्डली के बारे में लिखा है। इससे स्पष्ट है कि संख्या एवं लिपि भारत में ई. पूर्व ही प्रचलित थी। बौद्ध ग्रन्थों में भारतीय लिपियों का विवरण मिलता है। रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों के समय भारत में लिपि होती थी। उपनिषदों में भी वर्ण, मात्रा आदि विवरण होने के कारण यह माना जा सकता है कि उस समय लिपि प्रचलित थी।

पुराने शिला-लेखों और सिक्कों में दो तरह की लिपियाँ देखी जाती हैं- ब्राह्मी और खरोष्टी। खरोष्टी बाएँ से दाएँ को लिखी जाती है। - इसके कई वर्ण आर्मेइक वर्ण से मिलते-जुलते हैं। ध्वनि में भी समानता होती है। कुछ लोग इसे शुद्ध भारतीय लिपि मानते हैं। उनके अनुसार खरोष्टी पहले दाएँ से बाएँ को लिखी जाती थी। ब्राह्मी के प्रभाव में पड़कर बाएँ से दाएँ को लिखने की प्रणाली स्वीकार की गई। ह्रस्व-स्वर एवं कई अन्य चिह्न ब्राह्मी के प्रभाव से ही खरोष्टी में आए।

ब्राह्मी:

ब्राह्मी प्राचीन काल से भारत की सर्वश्रेष्ठ लिपि है। कई प्राचीन शिला-लेखों में यह लिपि देखी जाती है। इस लिपि के संबंध में दो वाद प्रधान हैं- 1. इसका संबन्ध विदेशी लिपियों से होता है 2. यह शुद्ध भारतीय लिपि है। डा. आल्फ्रेड मूलर इसे यूनानी लिपि से उत्पन्न मानते हैं। कई विद्वान इसे सेमिटिक लिपि से उत्पन्न मानते हैं। एडवेर्ड थामस का मत है कि ब्राह्मी लिपि द्राविड से उत्पन्न हुई है। आर. शामशास्त्री मत है कि देवनागरी से ब्राह्मी की उत्पत्ति हुई है। ब्राह्मी लिपि उत्तरी भारत एवं दक्षिणी भारत के रूपों में विकसित हुई। यह उत्तरी शैली और दक्षिणी शैली में भारत व विभिन्न लिपियाँ बन गईं।

मलयालम की प्राचीन लिपि वेट्टेळुत्तु और कोलेळुत्तु नाम से जानी जाती थी। काटकर लिपि का रूप देने के कारण उसे वेट्टेळुत्तु [वेट्ट = काट] कहा करते थे। लोहे की लेखनी से लिखने के कारण कोलेळुत्तु नाम पड़ा होगा। [कोल= दण्ड] द्राविड भाषाओं की लिपियाँ भी ब्राह्मी लिपि का विकसित रूप है। लिखते समय लेखिनी को बिना रोके चलाने के कारण ब्राह्मी की खड़ी पाई का रूपांतर हुआ। अन्य द्राविड भाषाओं की लिपियों से मलयालम की लिपि में इसका प्रभाव अधिक देख सकते हैं। आठवीं शताब्दी में लिपियों का परिष्कार हो गया था। इस तरह हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दी एवं मलयालम की लिपियाँ एक ही मूलरूप से [ब्राह्मी से] उत्पन्न हुई हैं।

हिन्दी एवं मलयाळम लिपियाँ :

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः		
അ	ആ	ഇ	ഈ	ഉ	ഊ	ഋ	എ	ഏ	ഐ	ഒ	ഓ	ഔ	അം	അഃ

क	ख	ग	घ	ङ				
ക	ഖ	ഗ	ഘ	ങ				
च	छ	ज	झ	ञ				
ച	ഛ	ജ	ഝ	ഞ				
ट	ठ	ड	ढ	ण				
ട	ഠ	ഡ	ഢ	ണ				
त	थ	द	ध	न				
ത	ഥ	ദ	ധ	ന				
प	फ	ब	भ	म				
പ	ഫ	ബ	ഭ	മ				
य	र	ल	व	श	ष	स	ह	ळ
യ	ര	ല	വ	ശ	ഷ	സ	ഹ	ള

हिन्दी में न और र की दो-दो ध्वनियाँ होती हैं ; मलयाळम में भी "न" की दो ध्वनियाँ होतीं, पर "र" की दो ध्वनियों के लिए अलग-अलग लिपि होती ।

मलयाळम की विशेष लिपियाँ :- റ ഴ ഩ റ്റ

सातवाँ अध्याय

उपसंहार :

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर निष्कर्षात्मक विचार यहाँ प्रस्तुत करना समीचीन है ।

आर्य संस्कृति के पहले उत्तर भारत में द्राविड - संस्कृति उपस्थित थी । महाप्रलय में द्राविड - संस्कृति का सर्वनाश हुआ । जो लोग बच सके वे तितर - बितर होकर पहाड़ों में गए और जंगली जीवन बिताने लगे । प्रलयानन्तर उत्तर भारत में आर्यों का अभिनिवेश हुआ । क्रमशः आर्य - संस्कृति उत्तर भारत में फैली । जंगली जीवन बितानेवाले द्राविडों से समय - समय पर आर्यों की मुठभेड होती रही । इस मुठभेड के परिणाम स्वरूप दोनों भाषाओं का आदान - प्रदान हुआ । द्राविड भाषा की स्वाधीनता से आर्यभाषा में ळ और ऌ का समावेश हुआ । द्राविड भाषा का टवर्ग भी संस्कृत ने स्वीकार किया । द्राविड भाषा की स्वाधीनता से प्राकृत की उत्पत्ति एवं विकास हुआ । ह्रस्व 'ए' और 'ओ' संस्कृत के तीन वचनों के स्थान पर दो वचन, विसर्ग का लोप, संयुक्ताक्षरों की कमी आदि द्राविड भाषा के प्रभाव से आए हुए हैं । पहली प्राकृत से दूसरी तथा दूसरी से तीसरी - अपभ्रंश - का विकास हुआ । इनसे उत्तर भारत की आधुनिक भाषाएं स्थापित हुईं ।

आधुनिक हिन्दी क्षेत्र में कई बोलियाँ प्रचलित थीं जैसे अवधी, ब्रज, खडीबोली, राजस्थानी आदि । संस्कृत, प्राकृत एवं देशी भाषाओं में साहित्यिक प्रवृत्तियाँ होती रहीं । उत्तर-भारत में विदेशियों का आक्रमण समय - समय पर होता रहा । फारसी एवं अरबी भाषाओं का प्रभाव इन देशी भाषाओं में हुआ । हिन्दू राजाओं के समय में संस्कृत की प्रधानता थी । मुसलमानों के शासन काल में फारसी राजभाषा बन गई । बोलचाल की भाषाओं में भी इसका असर पडा । हिन्दी क्षेत्र की बोलियों में विविधता होनेपर भी एक तरह की एकता उपस्थित थी । हिन्दी क्षेत्र में मुख्यतः तीन भाषाएं व्यवहृत थीं - हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू । इनमें उर्दू का स्थान प्रमुख था । अंग्रेजों के शासन काल में भी उर्दू की प्रधानता रही । क्रमशः अंग्रेजी भाषा का प्रचार होने लगा । विकल्प रूप में देशी भाषाओं को भी स्थान मिला । शिक्षा के क्षेत्र में देशी भाषाओं के स्थान पर उर्दू की प्रधानता दी गई थी । दक्षिण भारत के कुछ भागों में उर्दू का प्रचार हुआ ।

इन सब प्रतिकूल वातावरणों को हटाकर साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी की उन्नति हुई। स्वतन्त्र भारत की राष्ट्र - भाषा बनने की शक्ति हिन्दी को प्राप्त हुई। भारतीय संविधान में भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही गई। उसे विविध भाषा - भाषी देश की संपर्क - भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त हुई।

द्राविडों के एक विभाग ने दक्षिण में आकर अपनी प्राचीन संस्कृति को पुन: स्थापित किया। दक्षिण के चेर - चोल - पाण्ड्य साम्राज्यों की स्थापना से प्राचीन द्राविड संस्कृति की पुन: प्रतिष्ठा हुई। जैसे उत्तर भारत में संस्कृत का विकास हुआ वैसे दक्षिण में मूल - द्राविड भाषा का विकास हुआ। मूल द्राविड भाषा से कई भाषाएँ विकसित हुईं। उनमें तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम और तुलु साहित्यिक प्रवृत्तियों से प्रमुख हो गईं। इनमें तेलुगु और कन्नड क्षेत्र प्राचीन काल से ही उत्तर भारत के सम्राटों के अधीन में आए थे। इसलिए ये भाषाएँ अधिक परिवर्तित हुईं। चेर साम्राज्य का दूसरा नाम है केरल। यहाँ की भाषा है मलयालम। चेर - चोल - पाण्ड्य परस्पर लडते रहे। समय - समय पर इन साम्राज्यों की सीमाएँ बदलती रहीं। मलयालम सैकडों वर्षों तक बोलचाल की भाषा रही। तमिल ही साहित्य - भाषा के रूप में प्रचलित थी। केरल में शिक्षा का क्षेत्र युद्ध कला तक सीमित रहा। इसलिए मलयालम में प्राचीन साहित्य - रचनाएँ नहीं देखी जातीं।

प्राचीन काल से ही आर्य लोग दक्षिण में आकर रहने लगे। पर उस काल में उनकी भाषा का दक्षिण में कोई प्रभाव न पडा। आगे चलकर आर्यों की संख्या बढ गई। सामाजिक जीवन में आर्य - द्राविडों की मित्रता हो गई। आर्यों की भाषा संस्कृत ने दक्षिणी लोगों को आकर्षित किया और वे संस्कृत पढने लगे। भाषा के क्षेत्र में यह एक महान कार्य है। आर्य और द्राविड सामाजिक जीवन में एक दूसरे का अनुसरण करने लगे। इस तरह एक मिश्र - संस्कृति पैदा हुई। मणिप्रवालम इस मिश्र - संस्कृति का प्रमाण है। भाषा के क्षेत्र में यह संबन्ध महत्वपूर्ण होता है। साहित्यिक क्षेत्र में एक नयी मोड आ गई। ~~प्राचीन संस्कृत~~ के छंद, अलंकार आदि मणिप्रवालम में स्वीकार किये गए। प्राचीन साहित्य रूप 'पाट्टु' भी साहित्य में प्रचलित होता रहा।

केरल में भी संस्कृत का प्रचार हुआ । केरल के बहुत - से लोग संस्कृत पढ़ने लगे । संस्कृत में कई रचनाएँ भी आ गईं । कालान्तर में संस्कृत एवं मलयाळम मिलकर मणिप्रवाळम का रूप केरल में भी प्रचलित हुआ । यहाँ मणिप्रवाळम की बहुत - सी रचनाएँ निकलीं । पाट्टु में मणिप्रवाळम भाषा की प्रधानता हुई । संस्कृत, मणिप्रवाळम एवं 'पाट्टु' के रूप में तीन साहित्य - धाराएँ केरल भाषा को पुष्ट करती रहीं । संस्कृत के अतिखर, मृदु, घोष एवं ऊष्म मलयाळम में स्वीकृत किए गए । इस तरह मलयाळम में वर्णों की कमी की पूर्ति हो गई । तुन्चत्तेलुत्तच्छन के समय पर लिपि - परिष्कार हुआ । आधुनिक रूप में मलयाळम इस प्रकार विकसित हुई ।

भारत से व्यापारिक संबन्ध स्थापित करने केलिए योरोपियन भारत में आए । यूरोप के विभिन्न देशों के व्यापारी संघों ने इस उद्देश्य से भारत में पड़ाव डाले । अपनी - अपनी शक्ति बढ़ाने केलिए उन्होंने विभिन्न शासकों की सहायता ली । आपसी लड़ाई समय - समय पर होती रही । ईसाई धर्म का प्रचार उनका दूसरा उद्देश्य था । अपनी लक्ष्य - प्राप्ति केलिए उन्हें भारतीय भाषाओं का ज्ञान आवश्यक हुआ । कई विद्वान इस काम में लगे हुए । भाषा के अध्ययन एवं अध्यापन केलिए कई रचनाएँ प्रकाशित हुईं । भाषा पढ़ाने केलिए जो रचनाएँ लिखी गईं वे ही व्याकरण की नींव कही जा सकती हैं । विदेशी लोग आपसी झगड़ा बढ़ाते - बढ़ाते भारत के विभिन्न क्षेत्रों को अपने अधिकार में रखने और वहाँ के शासन करने लगे । इस कार्य में अंग्रेज़ अधिक सफल हुए । ऐसी परिस्थिति में देश - भाषाएँ पढ़ने की आवश्यकता बढ़ी । कई विदेशी, भाषा के पठन - पाठन में लगे रहे । पादरी लोग भी जनभाषा सीखकर धर्म प्रचार करने लगे ।

हिन्दी के प्रारंभिक व्याकरण ईस्ट इण्डिया कंपनी के समय में लिखे हुए हैं । 'हिन्दुस्तानी व्याकरण' के नाम से ये प्रकाशित हुए । ये लैटिन भाषा में लिखे हुए थे । योरोपियों को हिन्दुस्तानी का परिचय देना इनका लक्ष्य था । व्याकरण - शास्त्र के रूप में इनका विशेष स्थान नहीं है । पादरी आदम का लिखा हुआ 'हिन्दी भाषा का व्याकरण' एक महत्वपूर्ण रचना है । यह अंग्रेज़ी व्याकरण पद्धति के अनुसार लिखा हुआ है । यह 1827 में प्रकाशित हुआ । संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि शब्द विभाग दिखाए गए हैं ।

नपुंसक लिंग भी स्वीकार किया गया है । आठ कारकों का विवरण है । सामान्यतः हिन्दी के आधुनिक व्याकरण आदम के व्याकरण पर आधारित माना जा सकता है । ग्रीव्स का हिन्दी व्याकरण भी माननीय है । उन्होंने उस समय तक प्रकाशित अनेक हिन्दी ग्रन्थों से उदाहरण उद्धृत किये हैं । उन्होंने हिन्दी में अंग्रेजी के विराम चिह्नों को स्वीकार किया । भारतीय विद्वानों ने भी हिन्दी व्याकरण की रचना की । पं. श्रीलाल का 'भाषा - चन्द्रोदय' इसका प्रारंभिक प्रयास माना जा सकता है । शब्दों को वाचक एवं अपवाचक भागों में बाँटा है । संस्कृत - पद्धति के अनुसार संबन्ध कारक जोड़ा गया है । सर्वनाम को संज्ञा - प्रतिनिधि बताया गया है । यह हिन्दी भाषा का एक प्रमुख व्याकरण ग्रन्थ है । उन्नीसवीं सदी के अन्त तक विदेशी एवं भारतीय वैयाकरणों की बहुत - सी रचनाएं पायी जाती हैं ।

पं. कामताप्रसाद गुरु का 'हिन्दी व्याकरण' हिन्दी का प्रामाणिक व्याकरण है । गुरुजी ने अंग्रेजी व्याकरण पद्धति एवं संस्कृत - प्राकृत व्याकरण पद्धतियों को मिश्रित रूप में स्वीकार किया है । भाषा के विकास के अनुसार व्याकरण में भी विकास होना आवश्यक है । शब्दों के विवेचन में उन्होंने अंग्रेजी व्याकरण पद्धति को अपनाया । अपने समय तक हिन्दी भाषा में लिखित कई व्याकरण ग्रन्थों के नियमों पर विचार - विमर्श करके उन्होंने अपना मत प्रकट किया है । उस समय तक प्रकाशित कई प्रधान रचनाओं से उदाहरण भी उद्धृत किये गए हैं । उपसर्ग, कृदंत एवं तद्धित की चर्चा में संस्कृत, हिन्दी, उर्दू एवं विदेशीय भाषाओं के शब्दों को भी दिखाया गया है । कारकों की चर्चा काफी लम्बी है । अव्ययों की लंबी सूची देकर उनके प्रयोगों पर प्रकाश डाला गया है । इन कार्यों में उन्होंने संस्कृत व्याकरण पद्धति को स्वीकार किया है । समास का वर्णन भी इसके अनुसार है । पर पद - परिचय, वाक्य - रचना, वाक्य - विग्रह एवं विराम - चिह्न अंग्रेजी व्याकरण पद्धति के अनुसार स्वीकार किये गए हैं । सर्वथा यह हिन्दी का एक प्रामाणिक व्याकरण ग्रन्थ है ।

पं. किशोरीदास वाजपेयी का लिखा हुआ 'हिन्दी शब्दानुशासन' भारतीय परंपरा के अनुकूल व्याकरण ग्रन्थ है । वाजपेयी ने संस्कृत व्याकरण पद्धति के अनुसार ही इस ग्रन्थ की रचना की है । संधि प्रकरण में हिन्दी की विशेष संधियों पर प्रकाश डाला गया है ।

अनुस्वार और विसर्ग को उन्होंने अयोगवाह बताया है । शब्दों का विभाजन 'यास्क' के अनुसार किया गया है । इसे भी एक प्रामाणिक व्याकरण ग्रन्थ माना जा सकता है ।

इन दोनों रचनाओं के बाद हिन्दी में जो व्याकरणिक रचनाएँ हुई हैं उनमें स्थान स्थान पर हिन्दी व्याकरण एवं हिन्दी शब्दानुशासन के अनुकरण देखे जा सकते हैं । भाषा के विकास के आधार पर व्याकरण लिखते समय विकसित रूपों को स्वीकार करना आवश्यक है । इन नयी रचनाओं में किसी को प्रामाणिक नहीं बताया जा सकता ।

मैसूर की लड़ाई के बाद मलबार अंग्रेजों के अधीन में आया । अंग्रेजों को मलयाळम पढ़ने की आवश्यकता हुई । भाषा पठन - पाठन में विदेशियों का ध्यान गया । 'तोलकापियम' मूलद्राविड़ भाषा का प्राचीन व्याकरण ग्रन्थ है । 'लीलातिलकं' तक मलयाळम में कोई व्याकरण ग्रन्थ नहीं रचा गया था । लीलातिलकं मणिप्रवाळम का लक्षण ग्रन्थ है । इसलिए उसे पूर्ण रूप से मलयाळम व्याकरण ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता । ड्रमंड का 'मलबार भाषा व्याकरण' 1799 में प्रकाशित हुआ । अंग्रेजों को मलयाळम पढ़ाना ही इसका उद्देश्य था । उन्होंने मलबार भाषा के सभी शब्दों को दीर्घांत एवं अ और विसंत में विभाजित किया है । कारकों को कर्ता, संप्रदान, कर्म, संबोधन और प्रयोजक के चार विभाग दिखाए गए हैं । इनके कारक चिह्न भी दिखाए गए हैं । संधि के कुछ उदाहरण ही दिये गए हैं, नियम नहीं बताये गये हैं । यह एक विकसित व्याकरण ग्रन्थ नहीं, तो भी इस क्षेत्र के पहले ग्रन्थ के रूप में इसकी प्रधानता होती है । अन्य कई यीरोपियों ने भी इस तरह के ग्रन्थ लिखे हैं । डा. गुण्डर्ट का मलयाळ भाषा व्याकरण एक विकसित एवं प्रामाणिक रचना है । अपने समय तक के कई मलयाळम ग्रन्थों का अध्ययन करके उन्होंने उदाहरणों का उद्धरण किया है । तमिऴ व्याकरण ग्रन्थों से सांकेतिक शब्दों को स्वीकार किया गया है । अक्षर, पद और वाक्य - तीन विभागों में मलयाळ भाषा व्याकरण की चर्चा हुई है । चर्चा में अंग्रेजी और मलयाळम दोनों भाषाओं का उपयोग किया गया है । 'क्रियाधिकार' काफी लंबी है ।

मलयाळम के भारतीय वैयाकरणों में ए.आर.राजराजवर्मा सबसे प्रधान होते हैं । इनका 'केरळपाणिनियं' मलयाळम का प्रामाणिक व्याकरण ग्रन्थ है । मलयाळम भाषा की उत्पत्ति

एवं विभिन्न दशाओं पर लेखक ने वैज्ञानिक रूप से प्रकाश डाला है । उन्होंने तमिल व्याकरण पद्धति एवं संस्कृत व्याकरण पद्धति दोनों को स्वीकार किया है । मलयालम आदि-द्राविड भाषा का विकसित रूप होने से उसका अटूट संबन्ध होता है । संस्कृत के मेल से उसका भी संबन्ध हो गया है । लेखक ने दिखाया है कि मलयालम तमिल से विकसित हुई भाषा है, पर उसका विकास सैकड़ों वर्षों के पहले ही हुआ है । इसे दिखाने केलिए उन्होंने मलयालम की विशेषताओं पर प्रकाश डाला है । मलयालम की क्रियाओं में पुरुष - लिंग - वचन - प्रत्ययों का लोप उस भाषा का विकास माना गया है । शब्दों को वाचक और द्योतक दो विभागों में बांटा गया है । वाचक को संज्ञा, कृति और भेदक तथा द्योतक को अव्यय और निपात में विभक्त किया गया है । नियमों को कारिकाओं में बताकर उनकी व्याख्या की गई है । हर एक नियम के काफी उदाहरण भी दिए गए हैं ।

केरलपाणिनि के उदाहरण बहुत प्राचीन होने और उनमें से बहुत शब्द एवं प्रयोग लुप्त हो जाने के कारण समझना मुश्किल हो गया है । मलयालम भी अब केरल से फैल कर दूर-दूर तक व्याप्त हो गई है । विदेशों में मलयालम भाषा के प्रति सद्भावना पैदा हुई है । बहुत - से विदेशी मलयालम पढ़ने के इच्छुक हैं । इस कार्य केलिए उपयुक्त कुछ रचनाएं भी प्रकाशित हुई हैं । भाषा के अभावों को दूरकर उसमें सरलता एवं मधुरता का समावेश कराना आवश्यक है ।

हिन्दी को भारत के बाहर भी ऊँचा स्थान प्राप्त होता रहता है । विश्व के कई विश्वविद्यालयों में हिन्दी का अध्ययन और अध्यापन हो रहा है । इस परिस्थिति में हिन्दी को सरल बनाना आवश्यक है ।

हिन्दी एवं मलयालम में कई विशेष - ध्वनियाँ होती हैं । इन विशेष ध्वनियों के लिए अलग - अलग लिपियों की आवश्यकता है । हिन्दी में र और ऱ, ल और ळ, न और ऩ केलिए एक एक ही लिपि प्रयुक्त होती है । मलयालम में भी न और ऩ केलिए एक ही लिपि होती है । मलयालम में ऩ केलिए विशेष लिपि होती थी । लिपि परिष्कार में संस्कृत के आधार पर वह छोड़ा गया । मलयालम की विशेष ध्वनियों को हिन्दी में लिखना कठिन होता है ।

उसी तरह हिन्दी की विशेष ध्वनियों को मलयालम में लिखना भी कठिन होता है । अन्य भाषा - भाषियों की भाषा के अध्ययन में ये बड़ी बाधाएं होती हैं । इन बाधाओं को दूर करना बहुत ही आवश्यक है । सभी भाषाओं में होनेवाली ध्वनियों को व्यक्त करने की लिपियाँ दोनों भाषाओं में होनी चाहिए ।

हिन्दी के पठन - पाठन में, विशेषकर अहिन्दी प्रदेश में 'ने' प्रत्यय की बड़ी बाधा होती है । जबकि, ब्रजभाषा एवं पूर्वी हिन्दी में इसका प्रयोग नहीं होता । 1870 में प्रकाशित 'शब्द - प्रकाशिका' में हिन्दी का विकास रूप देखा जाता है । वाजपेयी के अनुसार हिन्दी में 'ने' प्रत्यय का आगम संस्कृत की तृतीया विभक्ति से हुआ है । संस्कृत का यह प्रयोग कर्मवाच्य होता है, लेकिन हिन्दी में यह कर्मवाच्य नहीं है । इसके प्रयोग में दो कठिनाइयाँ सामने आती हैं । एक तो सकर्मक - अकर्मक भेद और दूसरा लिंग निर्णय है । गुरुजी ने हिन्दी व्याकरण में 'बोल' क्रिया को सकर्मक माना है, पर ला, बोल, भूल अकर्मक माने जाते हैं । बोलचाल की भाषा में 'ने' का प्रयोग नियमित नहीं देखा जाता । इस नियम को भाषा से निकालने से सरलता आ जाएगी ।

हिन्दी में दो ही लिंग होते हैं । अचेतन वस्तुओं में पुंस्त्व या स्त्रीत्व का आरोप, कई नियमों के होते हुए भी हिन्दीतर प्रांतों के लोग इसमें कुछ अभ्यस्त नहीं हो पाते । इस जटिलता को भी दूर करना आवश्यक है ।

कारक और विभक्ति के प्रयोग में भी जटिलता होती है । शब्दों के स्थान से ही हिन्दी और मलयालम भाषाओं में अर्थ साफ हो जाता है । संस्कृत के जैसे अन्वय करके अर्थ निर्णय करने की ज़रूरत दोनों भाषाओं में नहीं होती । इस पर भी ध्यान देना आवश्यक है ।

हिन्दी एवं मलयालम व्याकरण ग्रन्थों में अधिकतः काव्यशास्त्र एवं भाषा - विज्ञान को जोड़ दिया गया है । प्राचीन काल में काव्य - शास्त्र स्वतन्त्र रूप में विकसित नहीं था । इसलिए उसे भी व्याकरण का एक भाग मानकर व्याकरण में जोड़ा गया था । पर काव्य - शास्त्र एक स्वतन्त्र शास्त्र हो गया है । कई भाषाओं में इसके कितने ही ग्रन्थ प्रकाशित किए गए हैं । अब व्याकरण के साथ काव्य - शास्त्र को मिलाना नहीं चाहिए ।

बीसवीं सदी के आरंभ से ही भाषा - विज्ञान ने एक अलग शास्त्र का रूप धारण किया है। इसके संबन्ध में देश - विदेशों में कई शोध केन्द्रों की स्थापना हुई है। अब तो भाषा - विज्ञान एक अलग विषय के रूप में पढाया जाता है। इसलिए व्याकरण में इसे जोडने की आवश्यकता नहीं। हिन्दी एवं मलयालम के कई व्याकरण ग्रन्थों में भाषा - विज्ञान को प्रधानता दी गई है। काव्य - शास्त्र एवं भाषा - विज्ञान को छोडकर शुद्ध व्याकरण ग्रन्थों की आवश्यकता दोनों भाषाओं में होती है। भाषा के विकास के साथ व्याकरण का भी विकास आवश्यक है। कई नए व्याकरण ग्रन्थ प्रकाशित हो रहे हैं, पर उनमें प्रामाणिकता का अभाव है।

संपर्कभाषा एवं राजभाषा के रूप में हिन्दी को प्रतिष्ठा पायी है। इस प्रतिष्ठा को सुदृढ एवं सार्वत्रिक बनाने केलिए हिन्दी को सुसंपन्न बनना चाहिए। भाषा की संपत्ति उसके शब्द समूह होते हैं। हिन्दी ने देशी और विदेशी शब्दों को स्वीकार करने में जो उदारता दिखायी है वह सर्वथा श्लाघनीय है। इस भाव को अधिक दृढता से अपनाना चाहिए। संस्कृत के तत्सम शब्दों एवं उपसर्ग-प्रत्यय से बने हुए नये शब्दों को अपनाने में ज़रा भी संकोच नहीं करना चाहिए। देशीय भाषाओं से भी आवश्यकतानुसार शब्दों को स्वीकार करना है। ऐसे करने से हिन्दी एक सार्वदेशीय - संस्कृति का केन्द्र हो जायगी। ऐसी अवस्था में ही हिन्दी, संपर्कभाषा का काम पूर्ण सफलता के साथ कर सकेगी। हिन्दी ही सभी भारतीय भाषाओं का केन्द्र बने जिसमें सारी भारतीय संस्कृति का समावेश हो जाये।

राजभाषा के रूप में हिन्दी को उच्चशिक्षा का माध्यम होना है। इस महान कार्यकेलिए हिन्दी को संपुष्ट करना हमारा सबसे प्रधान कर्तव्य है। ज्ञान विज्ञान की सभी शाखाओं के पठन एवं पाठन का माध्यम हिन्दी ही होनी है। इसकेलिए आवश्यक विस्तृत एवं व्यापक शक्ति हिन्दी को मिलनी चाहिए। लोगों के सहयोग से ही यह हो सकता। उस दशा में हिन्दी एक सार्वलौकिक संस्कृति से समाविष्ट हो जायगी। भारत का सर्वधर्म समभाव हम हिन्दी में देख सकेंगे। 'सारी सडकें रोम को' जैसी अवस्था हिन्दी के संबन्ध में होनी चाहिए। हिन्दी न केवल राष्ट्रीय अपितु एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन सके।

हिन्दी का नया व्याकरण इन सभी बातों को समाविष्ट करने में समर्थ होना चाहिए। ऐसे एक व्याकरण से ही हिन्दी की प्रतिष्ठा सुदृढ रहेगी। यही हमारा प्रथम एवं प्रधान लक्ष्य हो

मलयाळम के नये व्याकरण में भी हमारी दृष्टि व्यापक होनी है । केवल केरल - देशीय भाषा न मानकर एक विकासशील भाषा के रूप में उसे देखना है । भाषा की सरलता एवं मधुरता दिखाने केलिए नया व्याकरण समर्थ हो । भाषा का विकास मनुष्य का विकास है, भिन्न - भाषा - भाषियों को एकत्रित करके उनमें सम्भावना पैदा करना ही भाषा का लक्ष्य हो और व्याकरण इसका सहायक हो ।

- - - - x - - - -

हिन्दी एवं मलयालम में प्रचलित समानार्थक मुहावरे, लोकोक्तियाँ एवं बातें

- - - - x - - - -

हिन्दी	मलयालम
आँखों का तारा	कण्मणि
आँखों में धूल झोंकना	कण्णिल् पोटियिटुक
आँखें मूँदना	कण्णटयुक
आग में घी डालना	तीयिल् नेय्योऴिक्कुक
आँसू पी कर रहना	कण्णीर् कुटिच्चु कऴियुक
आँखों का काँटा	कण्णिले करट्
आँसू पोंछना	कण्णीर् ओप्पुक
कमर कसना	अर मुरुक्कुक
कोल्हू का बैल	चक्किनु पूट्टिय काळ
खून खौलना	चोर तिळक्कुक
खट्टी डकार	पुळिच्चु तेट्टुक
दाँत पीसना	पल्लिरुम्मुक
दाहिना हाथ	वलं कै
कान पकड़ना	चेवि पिटिक्कुक
तितर बितर होना	चिन्नि चितरुक
दुधारी तलवार	इरुवशवुं मूर्च्चयुळ्ळ वाळ्
दुनाली बन्दूक	इरट्टक्कुऴल् तोक्कु
नाम कमाना	पेरेटुक्कुक
जूती चाटना	चेरिप्पु नक्कुक
पार करना	कर पट्टुक
पीला पड़ना	विळर्क्कुक
पीछे हटना	पिन्मारुक
पूँछ पकड़ना	वालिल् तूङ्ङुक

हिन्दी	मलयालम
मुँह मोड़ना	मुखं तिरिक्कुक
मक्खी मारना	[illegible]
माथा फिरा आना	[illegible]
माफ़ी मांगना	माप्पु चोदिक्कुक
बाल बांकना	रोमत्तिनु केट्टुत्तट्टुक
हाथ फैलाना	कै नीट्टुक
मुँह में पानी भरना	वायिल् वेळ्ळं ऊरुक
आँखों में काला राखा	कुरुटन माट्टिल कोण्डान तारावो
अपनी अपनी डफली अपनी अपनी धुनी	तान्तान् चेयतत् तान्तान् अनुभविक्कुं
ऊँट के मुँह में जीरा (1)	आनवायिल् अम्पाष्ड़ङ्ङा
एक हाथ से ताली नहीं बजती	ओरु कैकोण्डुओट्टियाल् शब्दमुण्डाकि
कलेजा ठंडा होना	मनस्सु कुळिर्क्कुक
कानों कान खबर न होना	चेविक्कु चेवि अरियाते
जो बोता है सो काटता है	तान्तान् विताच्चतु तान्तान् कोय्युं
दीवार के भी कान होते है	चुवरिनुं चेवियुण्ट्
पूत अपने सबको प्यारे	काक्ककुं तन्कुञ्ञु पोन्कुञ्ञु (गी)
भीगी बिल्ली बनना	[illegible]
मुँह हृदय का आईना	मुखं मनस्सिन्टे कण्णाडि
नाक पर कालिख लगाना	पेरिनु कळंकं वरुत्तुक
अपने पैर पर खड़ा करना	स्वन्तं कालिल् निल्क्कुक
परलोक सिधार करना	परलोकं प्रापिक्कुक
हड्डी तोड़ काम करना	एल्लु मुरिये पणियेडुक्कुक
पसीने से तर आना	वियर्त्तु कुळिक्कुक
हवा का रुख पहचानना	कात्तिन्टे गतियारियुक
उँगली पर नचाना	ताळत्तिनु तुळ्ळिक्कुक
एक पंथ दो काज	ओरु वेडिक्कु रण्टु पक्षि
साँप भी मरे न लाठी टूटे	पाम्पु चावणं वडि पोट्टुकयुमरुतु

---

1. ऊँट हाथी घुसा और जीरा अम्पाष्ड़ङ्ङा (एक छोटा फल)

धातुएँ

संस्कृत	हिन्दी	मलयालं
खल्	खिलना	कळिक्कुक
उठ्	लौटना	ओटिक्कुक
उलट्	उलटना	उलुक्कुक
कुट्ट	कूटना	कोत्तुक
क्रीड्	खेलना	कळिक्कुक
कृ	कूकना	कूकुक
खाद्	खाखाना	कारुक
गुह्	गोद	कुझिक्कुक
ग्रथ्	गूथना	कोर्कुक
घुर्	गुर्याना	कुरक्कुक
गृह्	ग्रहण करना	अरियुक
चुंब्	चूमना	चुंबुक
यु	जुगना	चयलुक
ली	लय होना	अलियुक
रिष्	रगडना	उरक्कुक
यज्	यजना	एकुक
वद्	बताना	ओतुक
ह्री	(अवहेलन)	हसिक्कुक
ज्वल्	खिलना	उलयुक
क्री	खतम	कड़ियुक
दा	देना	ता
तिज्	तेज़ करना	तेक्कुक

- - - - x - - - -

सहायक ग्रंथ एवं पत्र-पत्रिकाओं की सूची

ग्रंथ

हिन्दी :

1· डा· आनन्द चौधरी	हिन्दी व्याकरण का इतिहास, बीहार हिन्दी - ग्रंथ - अकेडेमी, 1972
2· मास्यु वेक्युर	हिन्दी के तीन प्रारंभिक व्याकरण, सेंटपाल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976
3· पंडित· कामताप्रसाद गुरु	हिन्दी व्याकरण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सोलहवाँ संस्करण 1975
4· पंडित· किशोरीलाल वाजपेयी	हिन्दी शब्दानुशासन, नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी, 1957
5· डा· मुरलीधर श्रीवास्तव	हिन्दी के योरोपियन विद्वान, बीहार हिन्दी ग्रंथ अकेडेमी 1973
6· डा· धीरेन्द्रवर्मा	ब्रजभाषा व्याकरण, इलहाबाद 1958
7· डा· दिनेश	अपभ्रंश भाषा का व्याकरण और साहित्य 19
8· डा· धीरेन्द्रवर्मा	हिन्दी भाषा का इतिहास, इलहाबाद 1953
9· पंडित· किशोरीदास वाजपेयी	हिन्दी शब्दमीमांसा, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1968
10· डा· भोलानाथ तीवारी	भाषाविज्ञान, किताबमहल 1951
11· श्री· एस·वी·श्रीरामशर्मा	हिन्दी और तेलुगु का तुलनात्मक व्याकरण, आन्ध्रा साहित्य अकेडेमी 1966
12· श्री· रामदेव	व्याकरण प्रदीप, हिन्दी भवन, दसवाँ संस्करण, 1962
13· आर्य्ये और शर्मा	आधुनिक हिन्दी व्याकरण, हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास, 1980
14· पिशल· आर	प्राकृत का व्याकरण [हेमचन्द्र जोशी का अनुवाद] 1958
15· डा· दीप्ति शर्मा	व्याकरणिक कोटियों का विश्लेषणात्मक अध्यय

16•	भारतीय विद्याभवन	अपभ्रंश का व्याकरण, वाराणसी, 1961
17•	लोकभारती प्रकाशन	पाली-प्राकृत-अपभ्रंश व्याकरणों का तुलनात्मक अध्ययन 1969
18•	डा॰ वासुदेवनन्दन प्रसाद	आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना
19•	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी साहित्य का इतिहास नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
20•	डा॰ नगेन्द्र	हिन्दी भाषा का इतिहास नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
21•	मलयाळं डा॰ के॰एन॰ एषुत्तच्छन	मलयाळं व्याकरण का इतिहास केरल विश्वविद्यालय 1975
22•	लीलातिलकं	व्याख्याता: इळंकुळं कुञ्ञन पिळ्ळे एन॰बी॰एस कोट्टयं 1962
23•	डा॰ गोदवर्मा	केरलभाषा विज्ञानीयं, तिरुवनन्तपुरं 1971
24•	इळंकुळं कुञ्ञन पिळ्ळे	मलयाळ-भाषा का विकास परिणाम, एन॰बी॰एस 1956
25•	श्री॰ नारायण पणिक्कर	केरल साहित्य का इतिहास तिरुवनन्तपुरं 1951
26•	पंडित॰ पाच्चुमूत्तत्	केरल भाषा व्याकरण, तिरुवनन्तपुरं 1876
27•	श्री॰ कोवुण्णि नेडुंगाडी	केरल कौमुदी, तीसरा संस्करण कालिकट 1930
28•	श्री॰ शेषगिरि प्रभु	व्याकरण मित्रम्, दूसरा संस्करण एरणाकुलं ; 1928
29•	ए॰आर॰ राजराजवर्मा	केरलपाणिनीयं, तिरुवनन्तपुरं 1920
30•	हिस्टरी असोसियेशन	केरल चरित्रम, एरणाकुलं भाग 1, 1973 भाग 2, 1974•

31•	द्राविड़-भाषा-व्याकरण [डा॰एस॰के॰नायर से अनूदित]	भाषा इन्स्टिट्यूट, केरलराज्य भाग 1, 1973 भाग 2, 1976
32•	डा॰ के॰एं॰ जार्ज	मलयाळ व्याकरण और रीडर एन॰बी॰एस 1971
33•	जार्ज मात्तन	मलयाण्मयुटे व्याकरण, एन॰बी॰एस 1962
34•	डा॰ गुण्डर्ट	मलयाळभाषा व्याकरण, एन॰बी॰एस॰ 1962
35•	तोलकाप्पियं	एन-बी-एस, कोट्टयं, 1961
36•	द्राविड़-भाषा-शास्त्र पठनंगल्	अण्णामलै विश्वविद्यालय, 1978
37•	ए॰एल॰ आन्टनी	भाषा पठनंगल्, एन॰बी॰एस कोट्टयं 1969
38•	एल॰ए॰ रविवर्मा	आर्य-द्राविड़ भाषकळुटे परस्परबन्धम् साहित्य अकेडमी, केरल, द्वितीय संस्करण।
39•	महाकवि उळ्ळूर	केरल-साहित्य-चरित्रं, भाग 1, तिरुवनन्तपुरं, 1953

संस्कृत एवं अंग्रेज़ी

40•	माक्डनाल	वेदिक ग्रामर, ओक्सफोर्ड युनिवेर्सिटी प्रेस 1958
41•	माक्डनाल	ए वेदिक रीडर, आक्सफोर्ड युनिवेर्सिटी प्रेस, 1957
42•	पाणिनि	अष्टाध्यायि, मोतिलाल बनारसीदास, वाराणसी•
43•	भट्टोजि दीक्षित	सिद्धान्तकौमुदी, मद्रास, 1929
44•	डा॰ कुंजन राजा	संस्कृत साहित्य का सर्वे, बंबई 1962
45•	यास्क-निरुक्त	एन ऐतिहासिक सर्वे, कलकत्ता 1958

46. श्री मुकुन्द शर्मा — निरुक्तलघुवृत्ति, बंबई 1918 (लघुवि)

47. एन.एस. विल्सन — संस्कृत-भाषा-व्याकरण की पीठिका 1961

48. रवरन्ट- काल्डवाल रोबर्ट — द्राविड़भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण, मद्रास 1956

49. पंडित. श्री. जगन्नाथ शास्त्री — प्रौढमनोरमा, चौखंबा प्रकाशन, वाराणसी, 1934

50. पतंजलि — महाभाष्य, चौखंबा प्रकाशन

51. नारायण भट्ट — प्रक्रिया सर्वस्व, ट्रावनकोर,विश्वविद्यालय 1948

52. एल. वेंकटसुब्रह्मण्य अय्यर — प्रक्रिया सर्वस्व का विमर्शात्मक अध्ययन, केरल विश्वविद्यालय, 1972

53. ओटो जेस्परसन — लांग्वेज, बुकसेंटर, मद्रास

54. टि.एस. तारापुरवाला — एलमेंटस आफ सयन्स आफ लांग्वेज, कलकत्ता विश्व विद्यालय 1951

पत्र-पत्रिकाएँ

साहित्यलोकं — केरलसाहित्य अकेडमी, त्रिच्चूर

इण्डियन लिंग्विस्टिक जेरनल — डक्कान कालेज, पूना

भाषा-त्रैमासिक — हिन्दी डयरक्टरेट, न्यू दिल्ली

दक्षिणभारत- त्रैमासिक — द.भा. हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

मलयालसाहित्य सर्वे — केरल साहित्य अकेडमी, त्रिच्चूर

सरस्वती- त्रैमासिक — इलाहाबाद

सम्मेलन पत्रिका- त्रैमासिक — साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

मातृभूमि-मलयाळं साप्ताहिक — मातृभूमि प्रकाशन, कालिकट